प्रकार की जाती है? हे बेटा! वार्त्ताके प्रबन्ध रहनेहीसे लोग सुखी हो सकते हैं, शूर और ज्ञानी पांच मनुष्य पुरवासी-पालन, दुर्ग-पालन, वणिक पालन, कृषिका देखना भालना और दुष्टोंका शासन इन पांच कार्यों में नियुक्त रहकर एकमतिसे तुम्हारे जनपदोंके मङ्गलका प्रबन्ध करते तो हैं? राज्यरक्षाके लिये ग्राम नगरकी समान और प्रान्त भाग ग्रामकी समान बने हैं कि नहीं? नित्य समाचार आदि भेजनेसे उन सब विषयोंका भार तुम पर सम्बद्ध है कि नहीं! चोर तुम्हारे पुरोंको छलकर सम और ऊंची नीची सब ठौरोंमें लूट मचावें तो सैनिक लोग उनको पकड़ियाते तो हैं? तुम स्त्रियोंको ढाढ़स दे उनकी रक्षा तो करते हो? उनकी बातोंका विश्वास अथवा उनसे कोई गुप्त बात तो नहीं कह देते? हे महाराज! किसी विपतकी आती हुई सुन और उसकी चिन्ता कर अन्तःपुरमें स्रक चन्दनादि प्यारी वस्तु लगाके सो तो नहीं रहते? रात्रिके दूसरे और तीसरे भागमें सुखसे सोकर शेष अंशमें उठकर धर्म्मार्थकी चिन्ता तो करते हो! हे पाण्डुपुत्र? उचित समयमें उठके बन ठनकर समयको जानकर मन्त्रियोंके साथ दर्शन चाहनेवाले जनोंको नित्य भेंट तो करने देते हो? हे शत्रुमथन! लालाम्बर पहिरे गहनोंसे सजे जन अस्त्र लिये रखवारीके निमित्त तुम्हारी दायें और खड़े तो रहते हैं! क्या दण्डयोग्य क्या पूजायोग्य, क्या प्रिय, क्या अप्रिय सबोंकी जांच कर यमराजकी भांति ठीक व्यवहार तो करते हो? हे पृथ्वीनाथ! नियम और औषधसे शारीरिक पीड़ा और वृद्धके उपदेशसे मानसिक पीड़ासे बचते हो कि नहीं? निदान पूर्व रूपादि अष्टाङ्ग चिकित्सामें ज्ञानी और मित्रता तथा प्रेमयुक्त वैद्य सदा तुम्हारे शरीरकी रक्षामें लगे तो रहते हैं? हे प्रजापालक? ऐसा तो कभी नहीं होता, कि बादी,प्रतिवादियोंके आगे पर अभिमान वा लोभ मोहसे उनके कार्य्यमें उचित ध्यान नहीं देते? विश्वास वा प्रेमसे जो तुम्हारी शरण लेते हैं तुम लोभके मारे उनकी वृत्ति तो नहीं उड़ाते? तुम्हारे पुरवासी वा राज्यवासी जन विपक्षियोंसे क्रीत होकर दुर्बलशत्रु एकमतसे तुमसे कोई विरुद्ध व्यवहार तो नहीं करते? हे युधिष्ठिर! तुम्हारे बलसे तथा प्रबल तन्त्र वा मन्त्र और बल दानोंसे पिसे तो रहते हैं? बड़े बड़े भूपाल तुम्हारे प्रेमी तो बने हैं? तुम्हारा आदर पाय वे तुम्हारे मङ्गलके लिये प्राण तक दे देनेको कमर कसते हैं कि नहीं? तुम सर्व्व विद्याओंमें गुणके अनुसार ब्राह्मण और साधुओंको पूजते तो हो? क्योंकि वैसी पूजा तुम्हारा मङ्गल करनेवाली है। पुरुषाओंके किये वेदमूलक धर्म्म कर्म्ममें तुम्हारी भक्ति तो बनी है? वे जैसा करते थे, तुमभी वैसा करनेका प्रयत्न कर उस काममें हाथ तो डालते हो? गुणशाली ब्राह्मण तुम्हारे सामने नित्य स्वादिष्ट और गुणकारी सामग्री भोजन करते और दक्षिणा पाते तो हैं? तुम जितेन्द्रिय होकर एक मनसे वाजपेय और पुण्डरीक आदि यज्ञोंको पूरा करनेका प्रयत्न तो करते हो? वृद्ध, ज्ञाति गुरु, देवता और तपस्वियोंको तथा कल्याणदायी चैत्यवृक्ष और ब्राह्मणोंको नमस्कार तो करते हो? हे अनघ! तुम किसीको शोक वा क्रोध तो नहीं उपजाते हो? पुरोहित आदि मङ्गल करनेवाले मनुष्य तुम्हारे पास रहकर स्वस्त्ययन तो करते हैं? हे आयुष्मन्! मैंने आयु और यश बढ़ानेवाली और धर्म्मार्थ काम दिखाती हुई जैसी बुद्धि और क्रियाकी बात कही, तुम्हारी बुद्धि और क्रिया तो वैसी है? जो ऐसी बुद्धिसे चलते हैं, उनका राज्य कदापि नहीं सूझता और वह राजा सम्पूर्ण धरतीको जयकर बड़े सुखी होते हैं। हे नरश्रेष्ठ! मूर्खोंसे हिलमिल करते

हुए अनजान मन्त्री लोग लोभके वशमें होय किसी शुद्धचित्त दोषसे रहित, श्रेष्ठ जन पर झूठ मूठ चोरीका कलङ्क लगाय सब लूट पूटके उनको हनते तो नहीं? और समझ बूझ कर किसी सचमुच चोरी किये दुष्ट चोरको चुराये माल सहित पकड़ करके उसे मालके लोभसे छोड़ तो नहीं देते? हे भारत! तुम्हारे मन्त्रीवर्ग घूसके लोभमें पड़के धनी दरिद्रोंमें उभड़े झगड़ोंका अनुचित विचार तो नहीं करते? नास्तिकता, असत्य, क्रोध, अनवधानता, दीर्घ-सूत्रता ज्ञानियोंसे न मिलना, आलस्य, चित्तकी चञ्चलता, एकके साथ विषयकी चिन्ता, अर्थ न जाननेवाले लोगोंसे युक्ति करना; समझे बूझे कार्य्यका प्रारम्भ न करना, मन्त्रणा न रखना, मङ्गल कार्य्यमें हाथ न डालना और बिन समझे बूझे हर कार्य्यमें उठ खड़े होना, राजाओंके यह चौदह दोष त्याग तो देते हो? जड़ दृढ़ होने परभी राजगण इन दोषोंसे बहुधा बिगड़ जाते हैं। हे महाराज! तुम्हारा वेदपठन, धन, स्त्री लाभ और शास्त्र ज्ञान, यह सब सफल तो हुए हैं?

युधिष्ठिरने पूछा कि वेद, धन, स्त्री और शास्त्र-ज्ञान क्योंकर सफल होते हैं? श्रीनारदजी बोले, कि अग्निहोत्रादि कर्म्म करनेहीसे वेद सफल होते हैं; दान और भोग करनेहीसे धन सफल होता है; कामवृत्तिके भरने और पुत्र उपजानेहीसे स्त्री लाभ सफल होता है और शीलता तथा सदाचार प्राप्त करनेहीसे शास्त्रज्ञान सफल होता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महातपस्वी नारद मुनिने फिर धार्म्मिकवर युधिष्ठिरसे कहा, कि महाराज! लाभकी आशासे दूर-देशसे आये हुए वणिकोंसे कर-लेनेवाले राज-कर्म्मचारी लोग उचित कर तो लेते हैं? यह सब वणिक तुम्हारे नगर और राज्यमें सम्मानित होय और ठगे न जाय बिक्रीकी सामग्री ला तो सकते हैं? तुम धर्म्मार्थ दिखानेवाले अर्थके जानकार वृद्धोंके धर्म्मार्थ युक्त वचन सदा सुनते तो हो? नवान्न उपजनेके कालमें नवोदकके हेतु, पुत्रके संस्कारके लिये और शुद्ध धर्म्मके निमित्त तथा पितरोंके नामसे द्विजोंको घृत मधु तो दी जाती है? महाराज! तुम सब समयमें सब प्रकारके शिल्पियोंको चार महीनेके अनधिक कालके भले प्रकार ठहराए हुए वेतन और बनानेकी सामग्री तो देते हो? शिल्पियोंका किया कार्य्य तो जान लेते हो? उनका सत्कार तो करते हो? हे प्रभो भरतश्रेष्ठ! तुम संक्षेपमें सिद्धान्तयुक्त सब प्रकारके वाक्य विशेष करके हाथी, घोड़े और रथादिको परीक्षाके सब उपाय ग्रहण तो करते हो? हे भरत-नन्दन! धनुर्वेद सूत्र और नगर-हितकारी यन्त्रोंकी शिक्षाके सब ग्रन्थ तुम्हारे भवनमें पढ़े तो जाते हैं? हे अनघ! मन्त्रसहित सब प्रकार शास्त्र, ब्रह्मदण्ड अर्थात् आभिचारिक विद्या और विष देनेके सब उपाय, तुम यह सब शत्रुनाशी विषय तो जानते हो? तुम अग्नि सर्पादिके हिंसक जन्तु और रोग-राक्षसोंसे उपजे भयसे अपनी प्रजाको बचाते तो हो? हे धर्म्मज्ञ! अन्धे, गूंगे लूले, देह फूटे, बिन बन्धु और सन्यासियोंको उनके पिताकी भांति बनके पालते तो हो? निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, ढिलाई और दीर्घसूत्रता, करनेवाले इन छः दोषोंको दूर तो किया है?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिर देवरूपी ब्राह्मणसत्तम नारदजीकी यह सब बात सुनकर प्रसन्न मनसे उनको प्रणामकर और दोनो पावोंमें लगकर बोले, कि आपने प्रश्नोंके मिसमें जो सब उपदेश दिये, मैं सब कार्य्य उनके अनुसार किया करूंगा, क्योंकि

आपकी कृपासे मेरी बुद्धि बहुत बढ़ी। राजा युधिष्ठिरने यह कहनेके पीछे इसके अनुसारही कार्य्य किया था और समुद्रके छोरतक सारी धरतीको जीत सके थे। श्रीनारदजी बोले, कि जो राजा इस रीतिसे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी रक्षामें सन्नद्ध रहते हैं, वह परम सुख लूटकर अन्तमें इन्द्रलोकको जाते हैं।

पांच अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि ब्रह्मर्षि नारदके कह चुकने पर धार्म्मिकवर युधिष्ठिर उनको भली भांति पूजके, उनकी आज्ञा पाय आद्योपान्त उनके सब प्रश्नोंके उत्तर दे, बोले कि भगवन! आपने जिस योग्य रूपसे निरूपित धर्म्म-सिद्धान्तकी बात कही, वह न्यायके अनुसारही हुआ है, मैं शक्तिके अनुसार और उचित रूपसे उस विधिको काममें लाता हूं। इसमें सन्देह नहीं, कि पूर्व्वकालमें राजोंने जो सब कार्य्य किये थे, वह न्यायकी रीतिसे संग्रहीतार्थ हेतुमत और अर्थयुक्त हैं। हे प्रभो! हम उनके उस सुपथसे चलना तो चाहते हैं, पर वे जितेन्द्रिय पुरुष जैसे चले थे हमसे वैसा बन नहीं पड़ता। श्रीवैशम्पायनजी बोले कि अति तेजस्वी धार्म्मिकवर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने नारदको पूछी हुई बातोंका आदरपूर्व्वक वह उत्तर देके कुछकाल पीछे उन बड़े तेजोवन्त, सर्व्वलोकोंमें जानेवाले दमशील देवर्षि नारदको थकावट मिटते और प्रसन्न मनसे बैठे देखकर और आपभी उनके निकट बैठके ठीक अवसर जान सभामें विराजमान राजोंके सामने पूछा, कि हे ब्रह्मन! पहिले ब्रह्माजीने अनेक अगणित लोक रचे हैं, आप मनकी भांति वेगसे उनको निहारकर सदा सब ठौरमें फिरा करते हैं, सो कहें, कि आपने कहीं ऐसी सभा देखी, कि नहीं जो मेरी इस सभाके समान अथवा इससे भी श्रेष्ठ हो? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मराजका यह वचन सुनकर नारद मुनि हंसकर मीठी बातोंसे बोले, कि हे बेटा भारत! तुम्हारी इस मणिकी बनी सभाके समान ऐसी सभा मनुष्य-लोकमें न तो कभी देखी और न सुनी; पर जब तुम सुना चाहते हो, तब तुमसे यमराजकी, धीमान वरुणकी; और कुवेर तथा ब्रह्माजीकी निर्द्दोष दिव्य सभाओंकी कथा कहूंगा। उन सभाओंने दिव्य और अदिव्य अभिप्रायों अर्थात् सब लोकोंकी बनावटोंसे बनायी जाकर अनेक रूप धरे हैं। देवगण, पितृगण, गणदेवतागण संयतआत्मा याज्ञिकगण और देवरूपी, यज्ञ करनेवाले, दक्षिणायुक्त, शान्तस्वभावी मुनिगण उन सबोंको सेवा करते हैं। श्रीनारदजीके ऐसा कहने पर महामति युधिष्ठिर भाइयों और द्विजवरोंके साथ कर जोड़कर बोले, कि हे ब्रह्मन्! हम सुना चाहते हैं; आप उन सभाओंकी कथा कहें। कौन कौन सभामें कौन कौनसी सामग्री है, लम्बाई चौड़ाईमें कौन सभा कितनी बड़ी हैं, ब्रह्माजीकी सभामें कौन कौन उनकी उपासना करते हैं; देवराज इन्द्र, सूर्य्यकुमार यमराज, वरुण और कुवेर, इनकी सभामें कौन कौन उनकी उपासना करते हैं, यह सब सुननेको हमें बड़ा कौतूहल उभड़ा है, सो हे ब्रह्मर्षि! आप यह सब हमसे ठीक ठीक कहें। पाण्डुपुत्रके यह पूछने पर श्रीनारदजी बोले, कि महाराज! मैं सब सभाओंकी कथा कहता हूं, क्रमसे सुनो।

छठां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कुरुवंशि! इन्द्रजीकी सभा बहुत उजाला-भरी है। उन्होंने अपने पुण्य फलसे उसको लाभ किया है और वह अर्कसमान उजाली दिव्य सभा उन्होंने स्वयं बनायी है। वह आकाशमें विराजनेवाली

काम गामी सभा लम्बाईमें डेढ़ सौ योजन, चौड़ाईमें सौ योजन और ऊंचाईमें पांच योजन फैली है; बुढ़ापा-शोक थकावट-मिटावनी शङ्कासगावनी, शान्तिदायिनी, मङ्गल-उपजानी सुन्दर-आसन-धारिणी दिव्य वृक्षोंसे सुहावनी सो बड़ी मनहरिणी है, उस सभामें देवनाथ इन्द्र केयूर लिये, किरीट धरे, निर्म्मल अम्बर तथा सुन्दर माला पहिरे, अनजाने स्वरूप धरे, अपनी पत्नी शची, शोभा, सम्पत्ति, श्री, द्युति तथा कीर्त्तिके सहित परमोत्कृष्ट आसन पर विराजते हैं; महाराज! गृहमेधी सब मरुद्गण उस सभामें महात्मा इन्द्रकी सदा उपासना करते हैं। सिद्धगण, देवर्षिगण, देवगण, और सुवर्ण-माला पहिरे, आकाश धरे एकत्रित मरुद्गण दिव्यरूप बने साथियोंके साथ शत्रुदमन महानुभव देवराजको उपासना करते हैं। हे पार्थ! अमल निष्पाप अग्नि-समान उजाले, तेजके चाले सोम याजे बुढ़ापा शोक तजे देवर्षिगण और पराशर पर्व्वत, सावर्णि, गालव, शङ्ख, लिखित, गौरशिरा, दुर्व्वासा, क्रोधन, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रपाणि, सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुकि, उद्दालक, श्वेत-केतु, ताण्ड्य भाण्डायनि, हविष्मान, गरिष्ठ, राजा हरिश्चन्द्र, हृद्य, उदरशाण्डिल्य, पारा-शर्य्य कृषीवल, वातस्कन्ध, विशाख, विधाता, काल करालदन्त, त्वष्टा, विश्वकर्म्मा, तुम्बुरु, सहदेव, सुनीथ, महातपा वाल्मीकि, सत्य-वादी शमीक, सत्यसङ्कर प्रचेता, मेधातिथि, वामदेव, पुलह,पुलस्त, क्रतु, मरुत, मरीचि, महातपा स्थाणु, काक्षीवान, गौतम, तार्क्ष्य, वैश्वानर कालक, ह्वीय, आत्राव्य, हिरण्मय, सम्वर्त्त, देवहव्य, वीर्य्यवन्त विश्वकसेन, कण्व, कात्यायन, गार्ग और कौशिक, यह सब मुनि ऋषि और गन्धर्व्व और बिनयोनिसे उपजे, योनिसे उपजे, वायुभक्षी, हुतभक्षी आदि सब प्रकारके जीवही इस सभामें सर्व्वलोकनाथ वज्रधारी इन्द्रको उपासना करते हैं। हे पाण्डुनन्दन! स्वर्गके जल तथा सब ओषधि और श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, धर्म्म अर्थ काम, विद्युत, जलधर बादलदल, वायुकुल स्तनयित्नु-गण, प्राचीदिक, यज्ञनिवहारनेवाले सताइस अग्नि, अग्नीषोम, इन्द्राग्नी, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वदेवगण, सब साध्यगण, बृह-स्पति, शुक्राचार्य्य, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमन, तरुण, सकल यज्ञ, सब दक्षिणा, ग्रहगण, स्तोभमन्त्र और यज्ञवाही मन्त्र सब उस सभामें विराजते हैं। हे महाराज! वहां मनहरणी अप्सरा और गन्धर्व्व भांति भांतिके नाच, गीत, बाजा, हंसी, स्तुतिपाठ मङ्गल कर्म्म और विक्रम प्रगट कर बलवृत्रनाशी सर्व्वगुणराशी देव-नाथ इन्द्रका मन बहलाते हैं। अग्नि समान प्रकाशमान माला पहिने गहने धारण किये ब्रह्मर्षि तथा देवर्षि और बहुतेरे दूसरे पुरुष बहुविध बिमानों पर उस सभामें आया आया करते हैं। बृहस्पति और शुक्र वहां नित्य विराजते हैं। हे महाराज! यह और दूसरे अगणित यतव्रत महात्मा और ब्रह्मव्रत भृगु तथा सप्तर्षिगण चन्द्रमा सदृश बिमानों पर साक्षात सोमकी भांति प्रियदर्शन बनके उक्त सभामें जाते आते हैं। हे महाभुज! मैंने इन्द्रकी उस पुष्करमालिनी नामक सभा ऐसी देखी है, अब यमराजकी सभाकी कथा सुनो।

सात अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, कि हे युधिष्ठिर! यम-राजके लिये विश्वकर्म्माने जो सभा रची है मैं उसकी कथा कहना प्रारम्भ करता हूं, ध्यान करो। हे पाण्डुनन्दन! वह उजाली काम-रूपी सभा लम्बाई चौड़ाईमें सौ योजनसे भी अधिक फैली है। वह सूर्य्य समान प्रकाशयुक्त प्रगट होती है और नतो बहुत ठण्डी और न

बहुत गर्म्म होनेके कारण मनको बड़ा आनन्द पहुंचाती है। उस सभामें बुढ़ापा, शोक, भूख, प्यास, अप्रिय, दीनता, थकावट, विरोध कुछभी नहीं है। क्या देवता, क्या मनुष्य सबको चाह भरनेकी भांति भांतिकी सामग्री वहां बनी बनायी धरी हैं। चबाने, चूसने, चाटने, पीने सब प्रकारके स्वादिष्ट भोजनकी सामग्रीका वहां ढेर लगा है, हे शत्रुमथन! वहांकी फूलहारकी मनचुरावनी गन्धसे चारों दिशा प्रमुदित हो रही हैं; वृक्ष मनमाने फल देते हैं; और मीठे ठण्डे और गर्म्म जल रखे हैं। उस सभामें पवित्र राजर्षि और अविशुद्ध ब्रह्मर्षिगण प्रसन्नमनसे सूर्य्यनन्दन यमराजकी उपासना करते हैं। हे महाराज! ययाति, नहुष, पुरु, मान्धाता, सोमक, नृग, राजर्षि त्रसदस्यु, कृतवीर्य्य, श्रुतश्रवा, अरिष्टनेमी, सिद्ध, कृतवेग, कृति, निमि, प्रतर्द्दन, शिवि, मत्स्य पृथुलाक्ष, बृहद्रथ, वार्त्त, मरुत्त, कुशिक, साङ्काश्य, साङ्कृति, ध्रुव, चतुरश्व, सदश्वोर्म्मि, कार्त्तवीर्य्य, भरत, सुरथ, सुनीथ, निशठ, नल, दिवोदास, सुमना, अम्बरीष, भगीरथ व्यश्व, सदश्व, वध्र्यश्व, पृथुवेग, पृथुश्रवा, पृषदश्व, वसुमना, बलवान क्षुप, वृषद्र, वृषसेन, पुरुकुत्स ध्वजी, रथी आर्ष्टिषेण, दिलीप, महात्मा उशीनर, औशीनर, पुण्डरीक, शर्य्याति, शरभ, शुचि, अङ्गारिष्ट, वेण दुष्मन्त सृञ्जय, जय, भाङ्गासुर, सुनीथ, निषद, वहीनर, करन्धम, वाल्हिक सुद्युम्न, बलवन्त, मधु, ऐल, मरुत्त कपोतरोमा, तृणक, सहदेव, अर्ज्जुन; व्यश्व, साश्व, कृताश्व, शशविन्दु, दशरथपुत्र राम और लक्ष्मण, प्रतर्द्दन, अलर्क, कक्षसेन, गय, गौराश्व, जामदग्न्य राम, नाभाग, भूरिद्युम्न, महाश्व, पृथाश्व, जनक, वैन्य, वारिषेण, पुरुजित जनमेजय, ब्रह्मदत्त, त्रिगर्त्त, उपरि-चर, इन्द्र, भीमजानु, गौरपृष्ठ, नय अनय, पद्म, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, प्रसेनजित, अरिष्टनेमी, सुद्युम्न, पृथुलाश्व, अष्टक, मत्स्यवंशी सौ नरेश, नीपवंशी सौ राजा, हयवंशी सौ भूपाल, एक सौ धृतराष्ट्र, अस्सी जनमेजय, सौ ब्रह्मदत्त, ईरियोंके एक सौ, दो सौसे अधिक भीष्म, सौ भीम, प्रतिविन्ध्य, सौ नाग, सौ हय, सौ पलाश, सौ काश कुशादि, महाराज शान्तनु, तुम्हारे पिता पाण्डु; उशङ्गव; शतरथ, देवराज, जयद्रथ; मन्त्रियोंके सहित बुद्धिमान राजर्षि वृषदर्भ और वे सहस्रों शशविन्दु जिन्होंने बहुत दक्षिणा दे देकर अगणित बड़े बड़े अश्वमेध यज्ञ किये थे, यह सब कीर्त्तिशाली बड़े शास्त्र ज्ञानयुक्त पवित्र राजर्षि उस सभामें वैवस्वतकी उपासनामें लगे हैं। और भी अगस्त्य; मतङ्ग, काल मृत्यु, यागशीलगण, अग्निस्वात्त, फेनप, उष्मप, स्वधायुक्त वर्हिषद, और दूसरे मूर्त्तिमान पितृगण, कालचक्र, साक्षात भगवान अग्नि, अविद्या कर्म्मयुक्त दक्षिणायनमें मरे मनुष्य, समय ठहरानेवाले यमराजके नौकर चाकर और शिंशप पलाश काशकुशादि स्वरूप लेकर उस सभामें यमराजकी उपासना कर रहे हैं।' हे नरनाथ! पितरनाथके इन सब और दूसरे अगणित सभासदोंके नाम वा कर्म्मोंका वर्णन करना शक्तिके बाहर है। वह काम-गामिनी सुन्दर सभा किसी प्रकार संकीर्ण नहीं है। उस सभामें किसीके जानेको मनाही नहीं है; विश्वकर्म्माने बहुत दिनों तक तप करके उसे बनाया है। हे भरतनन्दन! वह सभा अपने तेजसे जलती और दमकती है। कठोर तप किये हुए शान्तस्वभावी, सत्यवादी व्रतधारी, सुन्दर देहवाले पुण्यकर्म्मसे पवित्र बने, सन्यासी अमल चीर पहिरे सुन्दर केयूर धरे बांहयां माला लटकाये, उज्वल कुण्डल लगाये, उस सभामें जाते हैं। वे सब अच्छे पुण्यकर्म्म और सुन्दर लिबाससे सुहाते हैं, महात्मा गन्धर्व्व और बहुतेरी अप्सरा नाच गान हंसी बाजेसे उस

सभाकी सब ठौरको भर रही हैं, सर्व्वत पवित्र गन्ध और पुण्यध्वनि उड़ रही हैं, और मनहरणी माला इधर उधर बिखरी पड़ी हैं। उस सभामें सहस्रों धार्म्मिक दिव्यरूपी मनस्वी प्रजानाथ महात्मा यम महाराजकी उपासना करते हैं। महाराज! यमकी वह सभा ऐसी गुणवती है। अब वरुणकी पुष्करतीर्थ मालिनी सभाकी कथा कहता हूं।

आठ अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, कि हे युधिष्ठिर! वरुणकी अति तेजवाली दिव्य सभा मापमें यमकी सभाके समान है। उसकी प्राचीर और तोरण शुभ्रवरण हैं। विश्वकर्म्माजीने जलके भीतर वह सभा रची है। उनकी चारों ओर फल-फूल धरे रत्नके दिव्य और मञ्जरी-जाल जड़े गुल्म, नीले पीले काले स्यामले धौले लाल वरणोंके सुन्दर चदवां समान बनके सुहाते हैं। सैकड़ों सहस्रों परम सुन्दर कलेवर लिये मीठी धुन उड़ाती अनदेखी वरणकी चिड़ियां इधर उधर उड़ती फिरती हैं। उस सभाका स्पर्श बड़ा सुखदायी है, वहां न तो बहुत शीत न बहुत शीघ्र ग्रीष्म होता है। उस वरुणपाली, वरणमें धौली, मनहरणी सभाकी सब ठौरमें दिव्य आसन और दिव्य भवन बने हैं। वरुणजी दिव्य चीर और दिव्य रत्न आभूषणोंसे बन ठन वरुणानीके सङ्ग उस सभामें एकत्र विराजते हैं, माला लटकाये दिव्य-चन्दन मले दिव्य-गन्ध लगाये आदित्यगण वहां जलनाथ वरुणकी उपासना करते हैं। हे पृथीनाथ! उस सभामें वासुकि तक्षक ऐरावण, कृष्ण, लोहित, पद्म, चित्र, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक, मणिमान, कुण्डधार कर्कोटक धनञ्जय, परीणाम, कुण्डक, बलवान प्रह्लाद, मूषिकाद और जनमेजय यह सब पताकी, मण्डली तथा फणाधारी नाग और दूसरे अगणित सर्प बिन थके चित्तसे वरुणजीकी उपासनामें लगे हैं। हे धरतीनाथ! विरोचननन्दन बलि पृथ्वीविजयी नरकनाथ प्रह्लाद विप्रचित्ति, कालकञ्जादि दानव, सुहनु, दुर्म्मुख, शङ्ख, सुनामा, सुमनिस्वन, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, स्वरूप, विरूप, महाशिरा, दशग्रीव, बाली, मेघवासा, दशावर, टिट्टिभ, विटभूत, संह्लाद, इन्द्रतापनादि दैत्य दानव दिव्य लिबाससे सुहाय, माला लटकाय किरीट चमकाय सुन्दर कुण्डलादि दिव्य गहनोंसे जगमगाय उस सभामें धर्म्मपाश-धारी श्रीवरुणजीकी उपासना करते हैं। उन सब सूर दानवोंने मृत्युके भयसे हाथ धो डाला और तपसे सिद्ध हो, यह वर प्राप्त किया है। हे महाराज! चार समुद्र, गङ्गानदी, कालिन्दी, विदिशा वेण्वा, वेगवती, नर्म्मदा, विपाशा, शतद्रु, चन्द्रभागा, सरस्वती, इरावती, वितस्ता, सिन्धु, देवनदी, गोदावरी, कृष्णवेणा, कावेरी, क्षिप्रा, विशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्येष्ठिला, महानद शोन, चर्म्मण्वती, महानदी, पर्णाशा, सरयू, वारवत्या, लाङ्गली करतोया, अत्रेयी, लौहित्य महानदी, लघन्ती, गोमती सन्ध्या और त्रिस्रोतसी लोकोंमें प्रख्यात यह सब और दूसरे अच्छे अच्छे तीर्थ सोते सरोवर कूप तड़ाग और ताल अपना अपना स्वरूप लेके महात्मा वरुणकी उपासना कर रहे हैं, फिरभी पृथ्वी, सब दिशा, पर्व्वत और सब जलचर जीव जलनाथकी उपासनामें लगे रहते हैं, गाजे बाजेसे गन्धर्व्व और अप्सरा वरुणजीकी स्तव करती हुई उस सभामें विराजती हैं, जितने पर्व्वत रत्नकी खानि और सुन्दर करके प्रसिद्ध हैं वे भी मीठी मीठी बातें करते हुए वहां टिके हैं। वरुणके मन्त्री सुनाभ बेटे पोतोंसे घेरे जाय गोनामक पुष्करतीर्थके साथ जलनाथकी सेवा करते हैं, इस प्रकार सब जन शरीरके साथ वरुणकी उपासना करते हैं, हे भरतवंश! मैंने घूमते

हुए वरुणजीकी वह सुन्दर सभा देखी थी, अब कुवेरको सभाकी कथा कहता हूं सुनो।

नवां अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, महाराज! कुवेरजीकी सभा लम्बाईमें सौ योजन और चौड़ाईमें सत्तर योजन फैली है। कुवेरजीने तपके प्रभावसे स्वयं वह सभा बनायी है। कैलाशशिखरके समान वह सभा ऐसी शुभ्र चमक रखती है, कि उसके सामने चन्द्रमाकी प्रभाभी भागती है। गुह्यकोंसे वह लिवायी जानेसे जान पड़ता है, कि मानो आकाशसे चिपटी हुई शोभायमान है। वह दिव्य गन्धभरी मनोहरी विचित्र सभा बहुविध अच्छे अच्छे रत्नोंसे खची जाय और सुनीले दिव्य वरणोंसे मानों बिजली दलसे रंगाय धवल वादलके पहाड़ का स्वरूप पाय तैरती हुई प्रतीत होती है। उज्वल कुण्डलधारी श्रीमान राजा वैश्रवण विचित्र वसन आभूषण पहिरे सहस्रों नारिओंसे घिरे उस सभामें दिव्य पाद पीठ लगे दिव्य चादरासे ढंपे सूर्य्य समान उजाले परम आसन पर बैठते हैं। हृदय प्रमोदन शीतल पवन, उदार मन्दार वन हिलोड़कर और नन्दन कानन कल्हार बन और अलका नामक सरोवरकी मधु वहन कर यक्षनाथ कुवेरकी सेवा करता है। महाराज उस सभाके सभासद देव और गन्धर्व अप्सराओंसे घेरे जाय दिव्य तानके साथ गान करते हैं। मिश्रकेशी, रम्भा चित्रसेना, शुचिस्मिता चारुनेत्रा, घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्व्वशी, इरा, वर्गा, सौरभेयी समीची, बुद्बुदा और लता यह सब नाचने बजानेमें तेज सहस्रों गन्धर्व और अप्सरावृन्द उस सभामें धननाथकी उपासना करते हैं। गन्धर्व्व और अप्सराओंके सुन्दर नृत्य गीत और बाजोंसे सभा सदा गूंजती हुई बड़ी सुहावनी बनी है। किन्नर और नरनाम दूसरे कुछ गन्धर्व्व और मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्ड, महावली प्रद्योत कुस्तुम्बुरु, पिशाच, गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण, ताम्रौष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गल शोणितोद, प्रवालक, वृक्ष वष्पनिकेत और चीरवासा, यह सब और दूसरे सहस्रों यक्ष वहां उपस्थित रहते हैं। हे भरतनन्दन भगवती लक्ष्मीजी सदा उस सभामें विराज रही हैं। कुवेरनन्दन नल, कूवर, मैं और मेरे समान बहुत दूसरे और ब्रह्मर्षि, देवर्षि सब उस सभामें रहते हैं। मांसखोर राक्षसादि और अति पराक्रमी दूसरे गन्धर्व्व उस सभामें धनदाता महात्मा यक्षनाथकी उपासना करते हैं। हे राजशार्दूल! महावली शूलप्रहारी उग्रचाप-धारी पशु हितकारी उमा विहारी, इन्द्र संहारी भगवान महादेव त्र्यम्बक विकट, कुवड़े लालनेत्र चढ़े, ध्वनि घोर मेद मांसखोर बहुअस्त्र लिये पवनके आगे चलनेवाले सहस्रों भयावने सहचर भूतनिकर संग लिये अपर्याजित देवी भगवती सहित उस सभामें अपने सखा धनेशके निकट सदा विराजते हैं। विश्वावसु, हाहा, हुहु तुम्बुरु, पर्व्वत शैलूष, जान, प्रधान चित्रसेन, चित्ररथादि सैकड़ों गन्धर्व्वनाथ और दूसरे सहस्रों गन्धर्व्व अपना लिवास पहिन प्रसन्न मन होय धननायकी उपासना करते हैं। ऋतुओंके संग विद्याधरनाथ चक्रधर्म्मा और सैकड़ों किन्नर धनेश कुवेरजीकी सेवा करते हैं। किं-पुरुषपति द्रुम और राक्षसाधिप महेन्द्र और गन्धमादन, यक्ष, गन्धर्व्व और राक्षसोंके साथ धनेशकी उपासनामें लगे रहते हैं। राक्षसनाथ धार्म्मिकवर विभीषणभी प्रभावीभाई कुवेरकी सेवा करते हैं। हिमालय, पारिपात्र, विन्ध्य, कैलाश, मन्दर, मलय, दद्दर, महेन्द्र, गन्धमादन,

इन्द्रनील, सुनाभ, उदयाचल और अस्ताचल,यह सब और दूसरे अगणित पर्व्वत अपना अपना स्वरूप धर मेरुको सामने रख महात्मा कुवेरकी उपासना करते हैं। भगवान नन्दीश्वर, महाकाल शङ्कुसे कर्ण और मुखवाले सब दिव्य सहचरी काष्ठ कुटीमुख, दन्ती, अति तपोवती विजया और बहुत नईनयुक्त महावली श्वेतवृष वहां उपस्थित रहते हैं। इनके सिवाये दूसरे राक्षस और पिशाचभी कुवेरजीकी उपासना करते हैं, हे भारत! कुवेरजी सहचर सहित त्रिलोकपावन भगवान देव देव उमाकान्त महादेवजीके निकट सदा जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनकी आज्ञासे उनके समीप बैठते थे। एक समय महादेवजीने उनसे मित्रता की और उस कालसे उनकी सभामें नित्य विराजते हैं।

हे महाराज! सब रत्नके सार शङ्ख और पद्म सब प्रकारकी निधि बटोर बटोर धनेश कुवेरकी उपासना करते हैं। धननाथ कुवेरकी उस आकाश चरती सभाको मैंने इसमानही मन-हरणी देखा है; अब पितामह ब्रह्माजीकी सभाकी कथा कहता हूं, सुनो।

दश अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले,कि हे भरतनन्दन! ब्रह्मा-जीकी उस सभाकी कथा प्रारम्भ करता हूं कि जिसका रूप ऐसा है कि कहे नहीं कहा जाता, अब सुनो। महाराज! पूर्व्वकाल, सत्य-युगमें भगवान आदित्यजो स्वयम्भू ब्रह्माकी सभा निहार मानव लोकके देखनेको इच्छा करके स्वर्गसे उतर मानवी रूप लेकर स्वेच्छासे भूलोकमें फिर रहे थे। उसकाल सुभको देख, ब्रह्माजीके मानससे बनी अकथनीय अन जांच रूप ठनी, अपने प्रभावसे सर्व्वभूत मन-हरणी दिव्य सभाकी कथा यथावत कही थी, हे पाण्डवप्रवर! मैंने उन सभाकी अनन्त गुणोंकी खान सुन, देखनेकी इच्छासे आदित्यजीसे यह कहा कि "हे किरणनाथ! मैं दादाजीकी शुभ सभा देखा चाहता हूं, अतएव हे नाथ! जैसी तपस्या,जैसा कर्म्म अथवा जिस किसी योग्य औषधसे चाहे जिस प्रकार हो, वह पापविनाशी शुभराशी सभा मैं देख सकूं, सो कहिये।" सहस्र किरणधारी दिननाथ मेरी यह बात सुन बोले, कि तुम एक चित्त हो, सहस्र, वर्ष मैं पूरा होता हुआ ब्रह्मव्रत करो। इसके पश्चात् मैंने हिमाचल पर वह महाव्रत प्रारम्भ किया। अन्तमें वह अथकित पाप रहित वीर्य्य सहित आदित्य सुभको ब्रह्माजीकी सभामें लेगये। हे भगवान नरनाथ! उस सभाका स्वरूप शक्तिके वाहर है, क्योंकि पल पल पर वह अकथ अलग स्वरूप लेती है। हे भरत-नन्दन! उस सभाका माप वा जोड़ किसीसे जांचा नहीं गया। वास्तवमें ऐसी शोभा पहिले कभी मेरे देखनेमें नहीं आयी थी। उस सभामें बैठनेसे क्षुधा प्यास थकावट कुछ भी नहीं रहती और शीत ग्रीष्म किसीसे पीड़ा नहीं पहुंचती वरण सदा अपूर्व्व सुख मिलता है। जान पड़ता है, कि वह सभा, नानारूप धारी जलती मणियोंकी बनी है। स्तम्भो पर खड़ी नहीं है, कभी उसका नाश नहीं, वह सदा बनी रहेगी, वह आपही अपनेको प्रकाशती हुई स्वर्गकी सभा अनजांचन प्रभासे सुहायी, नानाविध जलते दिव्य भावोंसे, सूर्य्य, चन्द्रमा और अग्निसे ऊपर होगयी है, और मानो दिननाथको लजाती हुई प्रकाशित हो रही है। हे महाराज! वह सर्व्व लोकोंके पितामह भगवान ब्रह्माजी स्वयं दैवो मायासे अकेले सब लोक रच करके उस सभामें सदा विराजमान हैं। दक्ष, प्रचेता, पुलह मरीचि, कश्यप, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्द्दम आदि प्रजापति, और अथर्व्ववेदी आङ्गीरस मरीचिपायी, बाल

खिल्यगण, महातेजा अगस्त, वीर्य्यवन्त मार्क-ण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, सम्वर्त्त, च्यवन, महा-भाग दुर्व्वासा, धार्म्मिकवर ऋष्यशृङ्ग, महातपा योगाचार्य्य, भगवान सनत्कुमार, असित, देवल, तत्त्ववेत्ता, जैगीषव्य, ऋषभ; अजितशत्रु, और महावीर्य्यमणि, यह सब उस सभामें ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं, और अष्टाङ्ग सहित आयु-र्व्वेद नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, गभस्तिमान सूर्य्य, वायुवृन्द, सब यज्ञ, सङ्कल्प, प्राण, मन, आकाश, वायु, तेज, जल, धरती, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, प्रकृति, विकार और रचनेवाले दूसरे पदार्थ, सब अपना अपना स्वरूप लेकर ब्रह्मा-जीकी उपासनामें सदा दत्तचित्त हैं, वे सब बड़े व्रतशील और महात्मा हैं। इनके सिवाय धर्म्म, अर्थ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, इत्यादि दूसरे बहुविध पदार्थ भी उस सभामें उपस्थित रहते हैं। गन्धर्व्व और अप्सराओंके विंशति-गण और हंस, हाहा, हुहु आदि दूसरे सात प्रधान गन्धर्व्व, सब लोकपाल, शुक्र, बृह-स्पति, बुध, मङ्गल, शनैश्चर राहु आदि ग्रह, मन्त्र, रथन्तर, साम, हरिमाण और वसुमान नाना कर्म्म विशेष, अग्नीषोम, इन्द्राग्नी आदि दो नामसे उदाहृत इन्द्र सहित देवगण, मरुद्गण, विश्वकर्म्मा, अष्टावसु, पितृगण, सब हवि, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद अथर्ववेद, सब शास्त्र, इतिहास, सब उपवेद, वेदाङ्ग, ग्रह, यज्ञ, सोम, सम्पूर्ण देवता, दुर्ग-तरणी, गायत्री, सात प्रकारकी वाणी, मेधा, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, स्तुति शास्त्र, सामगान, भांति भांतिकी गाथा, युक्ति सहित भाष्य, बहुविध नाटक, काव्य, कथा, कहानी और कारिका यह सब और दूसरे पवित्र, गुरु पूजनेहारेभी वहां रहते हैं। हे भारत! क्षण, लव मुहूर्त्त, दिवा, रात्रि, अर्द्धमास, मास, छः ऋतु, पांच प्रकारके वर्ष, युग; चार प्रकारके अहोरात्र और वह नित्य अक्षय दिव्य कालचक्र वहां सदा विराजते हैं। हे युधिष्ठिर! अदिति; दिति, दनु, सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभि, सरमा, गौतमी, प्राधा, कद्रु रुद्राणी श्री, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी आदि देवमाता और पृथ्वी, गङ्गा, ह्री, स्वाहा, कीर्त्ति, सुरादेवी, शची, पुष्टि, अरुन्धती सम्वर्त्ति, आशा, नियति, सृष्टि और रति यह सब और दूसरी देवी प्रजानाथ ब्रह्माजीकी उपासना करती हैं। हे भरतनन्दन! आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, विश्वदेवगण, दोनों अश्विनीकुमार और मनके समान वेगवान पितृगण यहभी प्रजापतिकी उपासना करते हैं। हे पुरुष प्रवर! पितरोंके सात गण हैं; तिनमें चारके स्वरूप हैं और तीन बिना शरी-रके हैं। हे महाराज! महाभाग वैराजादि अग्निष्वात्ता और गार्हपत्यादि लोकोंमें प्रसिद्ध यह सब पितृगण स्वर्गमें फिरते हैं, और सम्पादि, एकशृङ्गादि, चतुर्व्वेदादि, और काल आदि यह सब पितृगण ब्राह्मणादि चारवर्णोंमें पूजे जाते हैं; यह लोग पहिले तृप्त होय पीछे सोमको तृप्त करते हैं। हे महाराज! वे सब पितृगण उस सभामें ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं। हे नरनाथ! राक्षसगण, पिशाच-गण, दानवगण, गुह्यकगण, नागगण, सुपर्णगण, सब पशुगण और स्थावर जङ्गम दूसरे महा-भूतवृन्दभी प्रसन्न मनसे अति तेजस्वी पिता-महकी उपासना करते हैं। देवराज इन्द्र, वरुण कुवेर, यमराज और उमासहित उमा-कान्त, सब सदा वहां जाते हैं। हे महाराज कार्त्तिकेय, नारायणजी सब देवर्षि, बालिखिल्य ऋषि और विनयोनिसे उपजे और योनिसे उपजे सब जीव उस सभामें उपासना करते हैं। हे नरनाथ! इस त्रिलोक भरमें स्थावर वा जङ्गम जितने पदार्थ दीख पड़ते हैं, उन सबों को मैंने वहां देखा है। हे पाण्डव! उस सभामें अठासी सहस्र ऊर्द्धरेता ऋषि और

पचास सहस्र सन्तानवान ऋषि मेरे देखनेमें आये। सब स्वर्गवासी लोग स्वेच्छासे ब्रह्माजीका वहां दर्शन, साष्टाङ्ग प्रणामादि करते हुए निज निज स्थानोंमें लौटते हैं, हे नरनाथ! सर्व्व भूतोंपर दयावान, अपार धीमान अति तेजोवान, विश्वात्मा सर्व्वलोक-पिता स्वयम्भु ब्रह्मा उस सभामें आये देवता, द्विज, दैत्य, नाग, यक्ष, काश्यप, गन्धर्व और अप्सरादि महाभाग पाहुनोंको यथोचित आदरकर मीठे सम्भाषण, सम्मान, अर्थ और भोगकी सामग्री दे दे प्रसन्न करते हैं। वह सुहावनी सभा आने और जानेवाले लोगोंसे सदा भरी रहती है। ब्रह्मर्षियोंसे पूजी जाती सर्व्व तेजोवती, थकावटको भगाती वह दिव्य सभा ब्रह्माजीके निज तेजसे जलती परम शोभासे भरी है। हे राजशार्दूल! तुम्हारी यह सभा जिस प्रकार मनुष्य-लोकमें दुर्लभ है, सर्व्व-लोक दुर्लभ उस ब्रह्म-सभाको मैंने वैसीही देखा है। हे भारत! देवलोकमें पहिले यह सब सभा मुझसे देखी गयी, अब मनुष्यलोक भरमें तुम्हारी यह सभा सबसे बढ़ियां जान पड़ती हैं।

ग्यारह अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कथा-कहने-वालोंमें श्रेष्ठ देवर्षे! आपने मुझसे जैसा कहा, उससे वैवस्वत यमकी सभामें प्रायः सब राजोंके नाम सुन पड़े। वरुणकी सभामें अगणित नाग, दैत्यवर, नदी, और सागरोंके नाम लिये गये। धनेश कुवेरकी सभामें गुह्यक, गन्धर्व और अप्सरा तथा भगवान वृषभवाहन महादेवके नाम कहे गये। पितामह ब्रह्माकी सभामें महर्षि, समस्त देव और शास्त्रादिका रहना कहा गया और महात्मा इन्द्रकी सभामें देवगण, बहुविध महर्षि और एक एकके नाम सहित सब गन्धर्व्व कहे गये। पर हे महामुने! उस सभामें आपने, राजोंमें केवल राजर्षि हरिश्चन्द्रकी बात कही। सो हे संयत-आत्मन्! महायशा राजा हरिश्चन्द्रने ऐसी कौनसी भारी तपस्या वा ऐसा क्या बड़ा कर्म्म किया था, कि अकेले वही इन्द्रके सदृश बने हैं? हे विप्रवर! त्रिलोकमें स्थित बड़े भाग्यवान मेरे पिता पाण्डुके साथ आपकी किस प्रकार भेंट हुई! और उन्होंने आपसे क्या कहा? हे भगवन्। आपसे यह सब कथा सुननेको मुझमें बड़ा कौतूहल उमड़ रहा है, सो आप कृपा प्रगटकर वह सब मुझको कह सुनावें।

श्रीनारदजी बोले, कि हे महाराज! तुमने धीमान हरिश्चन्द्रके माहात्म्यके विषयमें जो कुछ पूछा, मैं तुमसे वह सम्पूर्ण कहता हूं। वह बलवन्त भूप सब पृथ्वीनाथोंके सम्राट थे। उनके शासनसे सबही भूपालोंने सिर नवाया था। हे लोकनाथ! उन्होंने रथपर चढ़ शस्त्रके प्रतापसे सातद्वीप जय किये थे। महाराज! उन्होंने पहाड़, वन और कानन सहित सम्पूर्ण धरतीमण्डलको जीत कर राजसूय नामक महायज्ञ किया था। सब भूप उनकी आज्ञासे धनादि बटोरकर उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको बांटनेके कार्य्यमें नियुक्त हुए। उस यज्ञकालमें याचकोंने जो कुछ मांगा था, नरनाथ हरिश्चन्द्रने प्रीतिपूर्व्वक उनको उससे पांचगुणा अधिक धन दान दिया था। और पूर्ण आहुतिका काल आने पर उन्होंने नाना-दिशा तथा देशोंसे आये ब्राह्मणोंको उनके मनमाने भांति भांतिके भक्ष्य, भोज्य और बहुविध धनसे प्रसन्न किया। ब्राह्मण लोगभी रत्नोंसे तर्पित और सन्तुष्ट होके सर्व्वत्र यह कहते फिरे थे, कि राजा हरिश्चन्द्र सब भूपोंसे तेजवन्त और यशस्वी हुए हैं। हे महाराज! इस लिये हरिश्चन्द्र उन सहस्रों राजाओंसे भले प्रकार विराजते हैं। उन प्रतापी नरेशने उस महायज्ञको पूरा कर साम्राज्यमें अभि-

पिता होके बड़ी शोभा प्राप्त की थी। हे भरत-नन्दन! दूसरे जो तप महायज्ञ राजसूय करते हैं, ये भी इन्द्रके साथ आनन्द लूटते हैं। जो लोग युद्धमें पीठ न दिखाके नष्ट होते हैं, वेभी इन्द्रजीके सभासद बनके उनसे आनन्द पा सकते हैं। और जो लोग कठोर तप कर देह छोड़ते हैं, वेभी इन्द्रधाममें जाय अनन्त सम्पत पाय नित्यकालतक बिराजते हैं। हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे पिता कौरवनन्दन पाण्डुनेभी राजा हरिश्चन्द्रका सौभाग्य देखकर अचरज मान तुमसे कुछ कह भेजा है। हे नरनाथ! वह मुझको मर्त्यलोकमें आते देखकर प्रणाम करके बोले, "आप युधिष्ठिरको मेरी ओरसे कहना, कि तुम्हारे सब भाई तुम्हारे वशमें हैं, सो तुम सम्पूर्ण धरती जय करनेको समर्थ हो, इस लिये महायज्ञ राजसूय करो। तुम मेरे पुत्र हो, सो तुम्हारे उस महायज्ञके पूरा करनेसे मैं भी राजा हरिश्चन्द्रके सदृश महेन्द्रका सभासद बनकर उनके साथ बहुवर्ष आनन्द लूटूंगा।"

हे भारत! मैंने तुम्हारे पिताकी प्रार्थना इस प्रकारसे मान ली, कि यदि मैं पृथ्वीमें जाऊं, तो राजा युधिष्ठिरसे अवश्यही तुम्हारी इच्छा कहूंगा। सो हे पुरुषवर! अपने पिता पाण्डुकी चाह मिटानेका प्रयत्न करो। उस महायज्ञके करनेसे तुमभी पुरुषाओंके साथ इन्द्रके सभासद बनोगे। हे महाराज! ऐसा कहा है, कि उस महायज्ञके प्रारम्भ करनेसे बड़ी बाधायें आ पड़ती हैं, यज्ञनाशी ब्रह्म राक्षस सदा उसका दोष ढूंढ़ते हैं। उस यज्ञके कालमें क्षत्रिय-विनाशी भयावने युद्ध उमड़ते हैं, यहां तक, कि उससे सब भूमण्डलके नाश हो जानेकी सम्भावना होती है, वास्तवमें उसमें कुछभी दोष आ पड़नेसे सर्व्वनाश आ पहुंचता है। अतएव हे राजेन्द्र! यह सब विषय सोच विचारके जो शुभ जान पड़े, वही करो। ब्राह्मणादि चारो वर्णों की रक्षाके विषयमें सदा ध्यान लगाये कमर कसे रहो। सबको सङ्गति दो, अनन्तकाल आनन्द लूटो, और ब्राह्मणोंको धन देकर प्रसन्न करते रहो। हे नरनाथ! तुमने जो कुछ पूछा, वह विस्तार पूर्व्वक कह सुनाया। अब तुम्हारी आज्ञासे मैं द्वारकामें जाऊंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! श्रीनारदजी पृथाकुमारोंको यह कहके अपने साथी ऋषियोंके साथ चले गये। श्रीनारदके जाने पर धरतीनाथ युधिष्ठिर भाइयोंके साथ राजसूय यज्ञकी परामर्श करने लगे।

सभाक्रिया प्रकरण और बारह अध्याय समाप्त।

मन्त्रणा प्रकरण।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतनन्दन! श्रीनारदजीकी वह बात सुनके राजा युधिष्ठिरने लम्बी सांस ली। राजसूय यज्ञकी चिन्ता करते हुए उनको और किसी बातका सुख न रहा। महात्मा राजर्षियोंकी महिमा, तथा पुण्य कर्म्मोके अनुष्ठानसे अच्छे लोकोंकी प्राप्ति, यज्ञ किये हुए राजा हरिश्चन्द्रकी प्रज्वलित प्रतिमा इत्यादि सुनके तथा विचारके उन्होंने महायज्ञ राजसूयका प्रबन्ध करना चाहा। अनन्तर राजा युधिष्ठिर सभासदोंको पूजके और पलटमें उनसे पूजे जाकर यज्ञहोके लिये परामर्श करने लगे। यज्ञ करनेकी बात बार बार सोचने पर उनका मन उसीमें आकृष्ट हुआ। अद्भुत तेजोवीर्य्यविशिष्ट सकल धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर धर्म्मका ध्यान कर सोचने लगे, कि क्योंकर प्रजाका मङ्गल होगा। वह प्रजाओं पर कृपा दिखाय विना विशेष सबका मङ्गल करने लगे। और कोप द्वेष छोड़के ऐसी आज्ञा प्रचार करी, कि "जिसे जो देना चाहिये दिया करो।"

इससे सर्व्वत्रसे केवल यह शब्द सुनाई देने लगा, कि साधु धर्म्म, साधु धर्म्म! सदा ऐसे पुण्य कर्म्मोंके करनेसे प्रजा उन्हें अपने पिताकी भांति जान विश्वास करने लगी। कोईभी उनका द्वेष करनेवाला नहीं रहा; इससे उनका नाम अजातशत्रु हुआ। राजाके सबको परिवार-समान जानने, भीमके पालने धनञ्जय-के शत्रुका नाश करने धीमान सहदेवके धर्म्मा-नुसार शासन करने और नकुलके सर्व्व प्रकारसे स्वाभाविक विनय जतानेसे जनपदसे झगड़ा कूटा और भयका क्षय हुआ, सब अपने अपने धर्म्ममें सदा अन्धे बने रहे; मनमानी वृष्टिकी सृष्टि होने लगी, सो सब जनपद सम्पदसे एक-बारही बढ़ने लगे। धार्म्मिकवर युधिष्ठिरके राज्यकालमें सदा उनके सुकर्म्मके प्रभावसे वृद्धि-जीवियोंकी जीविका यज्ञयोग्य सामग्री पशु पालन, खेती और वाणिज्य इन सबोंकी बड़ी उन्नति हुई। छलसे प्रजाका धन गड़पना बलसे लूटना, व्याधिसे कष्ट पाना, अग्निसे जलना और अकालमें मरना, इनमेंसे एक काभी रहना सुनाही नहीं गया। लुटेरे और ठगोंने राजासे वा एक दूसरेसे कभी बुरा-व्यवहार किया अथवा राजाके प्यारेजनोंने कोई अनुचित कर्म्म किया, ऐसा भी नहीं सुना गया; करदाता राजा लोग सन्धिविग्रहादिके कालमें सम्राटके प्रियकार्य्य तथा उपासना करने और नाना जातिके वणिक अपने कामके लिये राजस्व देनेको सदा आते थे; इससे देशकी बड़ी श्रीवृद्धि हुई। केवल राजा और वणि-कोंहीसे नहीं, वरन स्वेच्छापूर्व्वक भोगनेवाले लोभादिरहित रजोगुणी जनोंसेभी देशकी वृद्धि हुई थी। वास्तवमें युधिष्ठिर सब स्थानोंमें जाते, सब गुणों से सुहाते, सब सहते और सब ठौर प्रकाशमान होते थे। महाराज! उस साम्राज्य भोगनेवाले प्रकाशमान यशोवन्तने जो जो ठौर अधिकार की थी, वहांवाले ब्राह्मणसे लेकर गोपतक सब प्रजा उनको पितामातासे भी अधिक चाहती थी।

वाग्मिश्रेष्ठ युधिष्ठिरने भाइयों और मन्त्रि-योंको बुलाकर उनसे बारम्बार राजसूय यज्ञकी बात पूछी। तब वे एकत्रित मन्त्रीवृन्द उनके वचनका अर्थ समझ बूझकर अति बुद्धि-मान, यज्ञकामी युधिष्ठिरसे यह अर्थभरे वचन बोले, कि हे कुरुकुमार! जिस यज्ञमें अभिषिक्त होनेसे नरेशोंको वरुणजीके गुण अर्थात् सर्व्वाधिकारता, शीतलता, तृप्ति, साधनादिकी प्राप्ति होती है, स्वभावहीसे प्रजारञ्जक होने परभी वे लोग सम्राटके योग्य उन सब प्रसिद्ध गुणोंकी प्रार्थना करते हैं। आपभी उन गुणोंको प्राप्त करनेके योग्य पात्र हैं, सो आपके मित्रवर्ग इस कालको राजसूयके लिये प्रशस्त समझ रहे हैं। शंसितव्रतवाले ऋत्विगण जिसमें अग्नि धरनेके लिये सामवेदके मन्त्रोंको पढ़ कर छः स्थण्डिल रचते हैं, क्षात्रियसम्पद अर्थात् भुज-बलादिसे उस यज्ञके करनेका काल आपके अधीन हुआ है। राजसूययज्ञ हो जाने पर अभिषिक्त होकर राजा अग्नि-होत्रादि सब यज्ञका फल पाते हैं, सो वह सर्व्वजित कहे जाते हैं। हे महाभुज, महाराज! आपको सामर्थ्य है, हम सब आपके वशमें हैं, सो तुरन्तही आप महायज्ञ राजसूय पूरा कर सकेंगे; सो इस विषयमें अधिक विचारका प्रयोजन नहीं; बिना विचार उस महायज्ञके करने में ध्यान दें। मित्रोंने अलग अलग और एकत्रित होके इस प्रकार कहा।

हे महाराज! शत्रुमथन पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने उनका वह धर्म्मयुक्त प्रगल्भ अभीष्ट और वरिष्ठ वचन सुनके मनहीमनमें उसको मान लिया। मित्रोंकी वह बात सुन और अपनी सामर्थ्यको जान राजसूय यज्ञके विषयमें उन्होंने बार बार आन्दोलन किया। धीमान और मन्त्रके जानकार धर्म्मप्राण राजा युधि-

ष्ठिर मनही मनमें विलक्षण आन्दोलन कर आनगगा, महात्मा ऋत्विकगण धौम्य पुरोहित और व्यासादि ऋषिगणसे फिर परामर्श कर बोले, सम्राटयोग्य महायज्ञ राजसूयके लिये मेरी जो यह चाह उमड़ी है, केवल श्रद्धा और बातहीसे क्योंकर वह सफल हो सकती है ?

और द्वैपायनजी बोले, कि हे प्रसन्ननयन ! वे धर्मनाथ युधिष्ठिरसे इस प्रकार पूछे जाय उनसे यह बोले, कि महाराज ! आप राजसूय यज्ञके योग्य पात्र हैं, सो सहजहीमें उसे कर लेंगे । ऋत्विक और ऋषियोंके नरनाथसे यह कहने पर, उनके मन्त्री और भाइयोंने उस बात का बड़ा आदर किया । बड़े बुद्धिमान जितात्मा पृथानन्दन युधिष्ठिर अपनी सामर्थ्य तथा देश, काल और आयव्ययकी आलोचना कर लोगोंकी हितेच्छासे बारम्बार मनही मनमें उस विषयकी चिन्ता करने लगे । वास्तवमें भली प्रकार बुद्धिसे विचार कर कार्य्य करनेही के कारण बुद्धिमान जन नहीं टूटते हैं । वह विचारकर, कि केवल अपनेही निश्चयसे यज्ञ आरम्भ करना उचित नहीं है, धर्मनाथ युधिष्ठिरने यत्नसे कार्य्यका भार अपने ऊपरसे उठाय उसका उपाय निश्चय करनेके लिये जनार्द्दन श्रीकृष्णहीको सर्व्व लोकोंसे श्रेष्ठ जानके उन अनजाचन महिमावान जन्मरहित हो करके नरयोनिमें स्वेच्छासे जन्म लिये महाभुज हरिको मनही मनमें स्मरण किया । उनके देवता समान कार्य्योंकी पूरी आलोचना कर युधिष्ठिरने यह तक किया, कि कोईभी वस्तु उनकी अनजानी नहीं है, उनके कर्म्मसे न सिद्ध होनेवाला कोई कार्य्यही नहीं है और उनके असह्य कोई विषयभी नहीं है । ऐसा विचारकर उन्होंने श्रीकृष्णको स्मरण किया । पृथापुत्र युधिष्ठिरने इस प्रकार निश्चय-बुद्धि कर गुरुजनोंके योग्य अशेष समाचारके साथ लोकोंके गुरु श्रीकृष्णके पास तुरन्त दूत भेजा । वह दूत द्रुत चलनेवाले रथ पर चढ़के यादवकुलमें पहुंचकर द्वारकावासी श्रीकृष्णके पास गया । आगे श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र दर्शन चाहनेवाले युधिष्ठिरकी भेंटके लिये उस इन्द्र-सेनके साथ इन्द्रप्रस्थको पधारे । शीघ्र कार्य्य करनेवाले जनार्द्दन द्रुतगामी रथ पर चढ़के बहुविध देश पीछे छोड़कर इन्द्रप्रस्थमें स्थित युधिष्ठिरके निकट आ पहुंचे । गृहमें उपस्थित होने पर उन्होंने फूफीपुत्र धर्मराज और भीमसे पिताके समान समादर पाय पीछे प्रसन्न मनसे फूफीसे भेंट किया, आगे नकुल और सहदेवसे गुरुकी भांति पूजे जाय प्रसन्नतासे प्रमुदित मित्र अर्ज्जुनसे प्रसन्नमन होके आनन्द करने लगे । अनन्तर धर्मनाथ युधिष्ठिर भली ठौरमें थकावट मिटाये, निरोग देखलिये, अवसर पाये अच्युतके पास जाय अपना प्रयोजन जताय बोले, कि हे कृष्ण ! मैंने राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा की है, पर केवल इच्छाही रहनेसे वह विषय पूरा नहीं होता, जिस उपायसे वह पूरा हो सकता है, वह भली भांति तुम जानते हो । जिनसे सब सम्भव हो सकता है, जो सर्व्वत्र पूजे जाते हैं, जो सब भूमण्डलके ईश्वर हैं, वही राजसूय यज्ञ लाभ कर सकते हैं । मेरे मित्रवर्गने एकत्र होके मुझसे यह महायज्ञ करनेको कहा है, पर हे कृष्ण ! उसकी कर्त्तव्यताके विषयमें तुम्हारी बातही प्रमाण है, क्योंकि कोई कोई जन मित्रतावश किसी कार्य्यका दोष कह नहीं सकते, कोई कोई स्वार्थवश केवल प्रभुका प्रिय विषयही कहा करते हैं, और कोई कोई वही प्रिय करके ठहराय लेते हैं जो अपने लिये प्रिय जानते हैं ; कार्य्य पूरा करनेके विषयमें लोकोंमें ऐसीही कहावत प्रायही दीख पड़ती है । हे कृष्ण ! तुम काम क्रोधके वशमें नहीं हो, सो उस प्रकारके स्वार्थादि दोषके भी वशमें नहीं हो ;

अतएव लोकमें जो अच्छा हितकारी है वही सत्य कहो।

तेरह अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, कि हे महाराज! आप सब गुणोंमेंही श्रेष्ठ हैं, सो सब प्रकारही आपको राजसूय यज्ञ करनेका अधिकार है। यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, तौभी मैं आपसे कुछ कहा चाहता हूं। जामदग्न्य परशुरामने जिस क्षत्रिकुलका नाश किया था, उनसे यह लोग जो अब क्षत्रियके नामसे पुकारे जाते हैं, निकृष्ट हैं। हे धरतीनाथ! निदेशके पात्र उन क्षत्रियोंने जैसा कौलिक नियम किया है, वह आपका जाना नहीं है। प्रसिद्ध राजोंकी परम्परा और पृथ्वी परसे दूसरे अस्वतन्त्र क्षत्रिगण अपनेको ऐल और इक्ष्वाकु वंशको सन्तान करके परिचय देते हैं। हे भरतनन्दन! ऐल और इक्ष्वाकुके सौ कुल हैं ययाति और भोजके वंश अति गुणवन्त और बहुत फैले हैं, अब उनसे पृथ्वी चारों ओर छा गयी है। सब क्षत्रिय उन राजोंकी सौभाग्यलक्ष्मीको पूजा करते हैं; पर हे महाराज! हालमें जरासन्धने उन नरनाथवंशियोंको सौभाग्य पाय पृथ्वीनाथ बन तेजसे सब पर चढ़ सबो पर बड़ाई लाभ की है और धरतीके बीच भाग, मथुरा आदिमें प्रवेश करना अपने लिये सहज जानके हमने आपसका भेद लानेकी कल्पना की है। महाराज! जो राजा सबोंके प्रभु हैं, जो सम्पूर्ण धरतीके एक अधिकारी बने हैं, वही युक्तिके अनुसार साम्राज्य लाभके अधिकारी हैं। हे पृथ्वीनाथ! प्रतापी शिशुपालने सब्बे प्रकारसे जरासन्धका अवलम्ब कर उसके सेनापतिका पद लिया है। अति पराक्रमी मायायोद्धा करूषराथ वक्र, जरासन्धके निकट शिष्यकी भांति उपस्थित रहता है। दूसरे, अति वीर्य्यवन्त हंस और डिम्भक दोनोंने उस अतिबली जरासन्धको शरण ली है। दन्तवक्र करूष और मेघवाहन, यह भी उसके वशमें होगये हैं। महाराज! लोकोंमें जो अद्भुत मणि प्रसिद्ध है, उस दिव्य मणिको सिर पर लेनेवाला जो नरनाथ मुरु और नरकका शासन करते और पश्चिम देशमें वरुण समान अधिकार फैलाये रहते हैं, आपके पिताके सखा वह अतिबली यवननाथ वृद्ध राजा भगदत्त बचन और कर्म्मद्वारा जरासन्धके आगे सिर नवाते हैं, पर मनही मनसे आपकी ओर भी पिताके समान भक्ति रखके स्नेहयुक्त हैं। हे पुरुषवर! जो पश्चिम और दक्षिण प्रान्तोंके राजा हैं, वह कुन्तीवंशके बढ़ानेवाले शूर शत्रुनाशी आपके मामा अकेलेही स्नेहवश आपकी ओर झूले हैं। हे पुरुषवर! जो कुमति चेदिदेशमें प्रख्यात है, इस लोकमें जो अपनेको पुरुषोत्तम करके मानता है, मोहसे शंख चक्रादि मेरे चिन्होंको सदा लिये रहता है, और लोकोंमें जो वासुदेव नामसे बड़ा प्रसिद्ध हुआ है, वङ्ग पुण्ड्र और किरातराज्योंके नाथ उस बली पौण्ड्रक राजाने भी जरासन्धकी शरण ली है। पहिले मैंने उसको मारा नहीं, इससे ही वह राजा मगधके वशमें होगया है; महाराज! जो पृथ्वीके चौथे भागभागी और इन्द्रके सखा हैं, जिन्होंने विद्याबलसे पाण्ड्य और क्रथ कौशिकोंको जय किया है; जिनके भाई अकृति परशुरामके समान वीर थे, वह शत्रुनाशी बली राजा भीष्मक, भोजक और जरासन्धके वशमें आगये हैं। हम उनके कुटुम्ब हैं, सो प्रिय तथा आज्ञाधीन रहके सदा उनका प्रिय कार्य्य करते हैं, तिस परभी वह हमारे प्रेमी न बने रहकर अप्रिय कार्य्यमें दत्तचित्त रहते हैं। हे महाराज! वह अपना बल और कुलकी मर्य्यादा न जानके जरासन्धके प्रज्वलित यशको देखकर उसके वशमें होगये हैं। हे प्रभो! उत्तर दिशाके भोजोंके अठारह

कुल और शूरसेन, भद्रकार, बोधशाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुन्ती, कलिन्द और सहचर तथा सहोदरोंके साथ शाल्वायन राजगण उस जरासन्धहीके भयसे पश्चिम दिशाको भाग गये हैं, दक्षिण पाञ्चाल और पूर्व्व कोशलके राजोंने कुन्तीदेशको शरण ली है। मत्स्य और सन्नसपाद देशी राजगण भय खाय उत्तर दिशाको तज दक्षिण दिशाको गये हैं और सब पाञ्चाल जरासन्धके भयसे भीत होके निज राज्यको छोड़ कर सब ओर भागे हैं।

कुछकाल बीते भया मूर्ख कंसने यादवोंको सताय बृहद्रथपुत्र जरासन्धकी कन्याओंसे विवाह किया था। वे कन्या सहदेवकी कनिष्ठा बहिन हैं; उनके नाम अस्ति और प्राप्ति हैं। जरासन्धसे सम्बन्ध हो जाने पर व्यर्थचित्त कंसने उस बलसे ज्ञातियोंको हराकर बड़ाई लाभ की थी। हे महाराज! ऐसे व्यवहारसे उसकी बड़ी कुनीति प्रकाश हुई थी। उस दुरात्माके भोजवंशी वृद्ध राजोंको बहुत सताने पर उन्होंने ज्ञाति त्यागनेकी इच्छासे हमपर आशा प्रगट की थी। उस समय मैंने अक्रूरसे आहुककन्या सुतनुको दानकर बलदेवजीसे मिलके प्रसिद्ध कंसको मारा था; सो हमसे एक प्रकार ज्ञातिका कार्य्य उद्धार हुआ। हे महाराज! इस आये हुए भयके दूर होने पर जब जरासन्ध युद्धके लिये उपस्थित हुआ, तब हमने अठारह कनिष्ठ राज-वंशोंसे यह परामर्श निश्चय की, कि हम शत्रुनाशी बड़े बड़े अस्त्रोंसे तीन सौ वर्ष बिन रुके लड़ें भी तो उसका बलक्षय नहीं कर सकेंगे; क्योंकि वह अमर समान तेज रखनेवाला महाबली है। हंस और डिम्भक नामक जो दो पुरुष उसके सहाय हैं, वे अस्त्रसे मारे जानेके योग्य नहीं हैं। वे दोनों वीर और जरासन्ध इन तीनोंके मिलनेसे जान पड़ता है, त्रिलोकी में कोई भी वीर उनके सामने खड़ा नहीं हो सकता। हे सुधीवर! यह मत केवल हमाराही नहीं वरन सब धरतीनाथोंका ऐसाही निश्चय हुआ था।

हंस नामक प्रख्यात एक बड़ा नरनाथ था। जरासन्धके साथ हमारी उन सतरह लड़ाइयोंमें बलरामजीने उस हंसको मारा था। हे भरतनन्दन! डिम्भकने किसीसे हंसके नाश होनेका समाचार पाय यह निश्चय कर, कि हंसके बिना जीवन व्यर्थ है, यमुनाजीके जलमें डूबके प्राण छोड़ा। हे शत्रुकुल जय करनेवाले! हंसभी लोगोंके मुखसे डिम्भकका वह हाल सुनके यमुनाजीमें डूबा। हे भरतश्रेष्ठ! राजा जरासन्ध डिम्भककी मृत्युका समाचार सुनकर उदास मनसे घरकी ओर चला। जरासन्धके लौटने पर हम आनन्दित मनसे फिर मथुरामें बसने लगे। आगे जब पद्मपलासनयना कंशपत्नी पतिकी मृत्युका दुःख मान अपने पिता जरासन्धको यह कहके वारवार उभाड़ने लगी, कि मेरे पतिनाशीका नाश कीजिये, तब हमने उस पहिली परामर्शको स्मरण कर उदास होकर भागना चाहा। महाराज! उस जरासन्धके भयसे हम यह परामर्श कर, कि कि अनन्त ऐश्वर्य्यको आपसमें बांटके प्रत्येक मनुष्य तुल्य भार लेके पुत्र, पौत्र, ज्ञाति और बान्धवोंके साथ भागें, आगे सब मिलके पश्चिम दिशाको भाग गये। हे महाराज! उस पश्चिम खण्डमें रैवत पहाड़की चोटियोंसे सुहावनी कुशस्थली नाम्नी एक परम मनहरणी पुरीमें जा बसे और वहांके दुर्गका भले प्रकार संस्कार किया। वह दुर्ग ऐसा बना है, कि देवोंके भी जानेके योग्य नहीं है, वहांसे स्त्रियां भी सहजहीमें लड़ सकती हैं, वृष्णिवंशी महारथियोंका तो कुछ पूछनाही नहीं। हे शत्रुनाशि! अब हम विनाभय वास करते हैं। माधवोंके उस गिरिवरके संस्थानादिको आलोचना तथा इस रुमझसे कि हम मगध नाथके हाथके बाहर आ

गये हैं, बड़ा हर्ष हुआ है। इस प्रकार जरासन्धके अनिष्ट करनेसे सब प्रकार दिक होके हमने सामर्थ रहने परभी प्रयोजनसे गोमन्त पर्व्वत को अवलम्ब किया है। वह पर्व्वत तीन योजन विस्तृत हैं, एक योजन के बीचमें उस पर एक एक सैन्यव्यूह बना है, और हर योजनके अन्तर पर सौ सौ द्वार बने हैं; वीरोंका विक्रमही उसमें तोरणकी भांति भरा है, और युद्धमें कठोर अठारह क्षत्रिय-वंशी उसकी रखवारी करते हैं। हे महाराज! हमारे कुलमें अठारह सहस्र भाई वर्त्तमान हैं। आहुकके सौ पुत्र हैं, उनमेंसे हरेक देवताके समान है। भाइयोंके साथ चारुदेष्ण चक्रदेव, सात्यकि, मैं, बलदेवजी और मेरे समान योद्धे शाम्ब हम यह सात अति-रथी हैं। इनके अतिरिक्त जितने महारथी हैं, उनको बात भी कहता हूं, सुनिये। कृतवर्म्मा, अनाधृष्टि, समीक, समितिञ्जय, कङ्क, शङ्कु, और कुन्ती यह सात महारथी हैं। और भी अन्धक भोजके दो पुत्र तथा स्वयं वह वृद्ध भूप, यह महावीर्य्यवन्त वज्रसमान देहधारी दश महारथी मध्यदेशके स्मरण करते हुए वृष्णियोंसे वसते हैं। हे भरतसत्तम! आप नित्यकाल तक साम्राज्य भोगनेके योग्य हैं; सो क्षत्रियोंमें अपनेको सम्राट करके प्रसिद्ध करें। पर मुझे जान पड़ता है, कि अति पराक्रमी जरासन्धके जीते रहते आप कदापि महायज्ञ राजसूय पूरा नहीं कर सकेंगे, क्योंकि सिंह जिस प्रकार महाहस्तियोंको पकड़कर गिरिराजकी कन्दरामें बन्धुआ बनाता है, वैसेही उस जरासन्धने राजोंको पराजय कर गिरिदुर्गमें पकड़ रखा है। हे शत्रुमथन! राजोंके द्वारा यज्ञ करनेकी इच्छासे उस जरासन्धने अति कठोर तप करके उमाकान्त महादेवजीकी उपासना कर सबही भूपालोंको हराया है, और उनके द्वारा उक्त प्रणसेभी मुक्त होगया है, उसने भूपालोंकी सेनाओंके साथ बार बार पराजय करके अपने पुरमें लिवाकर बड़ा नाम लाभ किया है। महाराज! उस कालमें हमभी उसके भयसे मथुरा तज द्वारावती पुरीमें भागे थे। अतएव हे कुरुनन्दन! यदि आप यज्ञ किया चाहें, तो उन राजोंको छुड़ाने और जरासन्धको वधनेकी चेष्टा करें। ऐसा न करने से बड़ी भीड़ भड़ाकेसे उस यज्ञको प्रारम्भ कर पूरा नहीं कर सकेंगे। हे मतिमान्! राजसूय महायज्ञ पूरा करना चाहें, तो मेरी समझमें ऐसा करनाही उचित जान पड़ता है, अब आपकी समझमें जैसा हो करें। वर्तमान दशामें स्वयं कार्य्य कारणको विचारकर जो उचित जान पड़े, वही करें।

चौदह अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कि हे कृष्ण! तुम अति बुद्धिमान हो; तुम जैसा कहोगे, वैसा कहना किसीसे बन नहीं पड़ेगा; पृथ्वी भरमें तुम्ही एक शङ्का मिटानेवाले हो। देखो, हर राज्य होमें अपने अपने प्रियकार्य्य करनेवाले राजा लोग विद्यमान हैं, पर कोई साम्राज्य लाभ नहीं कर सका। वास्तवमें सम्राट शब्द बड़ा दुर्लभ है। जो पराये बलवीर्य्यको बड़ाई जानता है, वह कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता है; शत्रुसे युद्धमें मिलकर जो प्रशंसित होते हैं, वही पूजनीय हैं; हे यदुकुलतिलक! बहुत रत्नोंसे भरे बड़े भारी भूमण्डलकी भांति मनुष्यको चित्तवृत्ति बहुत विस्तृत, भांति भांतिकी, और अनेक अच्छे अच्छे विषयोंसे भरी है। पृथ्वीके देशोंमें घूम फिर मनुष्य जैसे जानकारी लाभ करता है, वैसेही बुद्धिकी परम उन्नति पाय अपना मङ्गल भली भांति जान ले सकता है, हे जनार्द्दन! मैं शान्तिको श्रेय करनेवाली जानता हूं। शान्ति अवलम्ब करनेसे मेरा मङ्गल हो सकेगा। राजसूययज्ञ

प्रारम्भ करके अन्त फलको पाना कठिन जान पड़ता है। हमारे कुलमें जन्म लिये सब मनस्वी पुरुष यह समझते हैं, कि किसी न किसी समय उनमेंसे कोई बड़ाई लाभ कर सकता है, पर हे महाभाग! दुरात्मा जरासन्धके कड़ेपनसे हमभी बहुत भय खागये थे, विशेष जिसके भयसे तुमभी भीत हुए हो, हम तुम्हारेही भुजबलके आसरेमें रह कर अपनेको क्योंकर उससे बली समझ सकते हैं? हे महामुनि! यह सोच करकेही, कि तुम, राम, भीम और अर्जुन इन चारोंमेंसे कोई उसे वधनेको समर्थ होगा वा नहीं, मैं बार बार उदास हो रहा हूं। अथवा मैं अधिक क्या कहूं, सब कर्म्ममें तुम्ही मेरा प्रमाण हो; तुम जो कहोगे, मैं कभी उसकी विरुद्धता नहीं कर सकूंगा। अनन्तर वक्तावर भीमसेन यह सब बातें सुनकर बोले, कि जो राजा एक बारही उद्योगसे मुह मोड़ते हैं, और जो दुर्बल और बिना उपाय होय बलीसे भगड़नेको दौड़ते हैं, वे दोनों वल्मीककी भांति चितको खा डालते हैं। दुर्बल गण यदि आलस्य छोड़कर उचित नियमसे बलियोंसे लड़ें तो वह जय पाके अपना अभीष्ट सिद्धकर सकते हैं। हे महाराज! कृष्ण नीतिमें अच्छे हैं, मेरा विलक्षण बल है और धनञ्जयभी शत्रुको जय कर सकते हैं, सो जैसे तीन प्रकारके अग्निसे यज्ञ पूरा होता है, वैसेही हम भी जरासन्धको वधेंगे। श्रीकृष्णजी बोले, कि अबोध जन परिणामको बातको न समझ करकेही कार्य्यमें हाथ डालता है, विज्ञ जन स्वार्थी अनजाने बालकशत्रुको भी कभी क्षमा नहीं करते। महाराज! हमने सुना है, कि पहिले साधुओंके दिनोंमें यौवनाश्व, भगीरथ, कार्त्तवीर्य्य, भरत और मरुत्त यह पांच पृथ्वीनाथ सब वशीभूत जनोंका विचार कर क्रमसे करके कर लेनेसे असम्मत, पोलना, तपोवीर्य्य, बल और सम्पद इन पांच गुणोंमेंसे एकके सहारे सम्राट बने हैं, पर आप सर्व्व गुणवन्त होके साम्राज्य लाभकी इच्छा करते हैं; सो धर्म्म, अर्थ और न्याययुक्त मन्त्रणाके अनुसार आपको उचित है, कि बृहद्रथके पुत्र जरासन्धको नष्ट करें। हे भरतश्रेष्ठ! आप यह भली भांति समझके देखें, कि सौ राजवंशियोंमें एकभी जरासन्धको रोक नहीं सकता। सो वह बलहीसे साम्राज्यको भोग रहा है, रत्नवान राजगण रत्न देकर उसकी उपासना करते हैं, इस परभी वह प्रसन्न न होकर मूर्खतासे कुनीति लिये वशीभूत राजों पर चढ़ जाता है। ऐसा एकभी मनुष्य दीख नहीं पड़ता, जिससे वह प्रधान पुरुष राजस्वका अंश नहीं लेता। इस प्रकार जरासन्धने प्रायः सौ राजोंको अधीन बनाया है। हे भरतनन्दन! आपसे दुर्बल भूप क्यों कर उससे शत्रुता करेगा? पशुनाथके गृहमें रहनेवाले पशुओंकी भांति बंधे और बलि चढ़ानेके लिये निश्चय किये राजाके जीवनमें कौनसी प्रीति रह सकती है? अस्त्रसे मारे जाने पर जब क्षत्रियलोग सत्कारके पात्र बनते हैं, तब अवश्यही हम युद्धमें एक होकर जरासन्धको रोकेंगे। हे महाराज! सौमें छियासी भूप जरासन्धसे लिवाये जाय बलि चढ़ाये जानेको निश्चय किये गये हैं, केवल चौदहही शेष बचे हैं, उनके हाथ लगतेही वह बड़ा कुत्सित कार्य्य पूरा हो जायगा। सो इस लीलामें जो विघ्न डाल सकेंगे, वही प्रदीप्त यश पा सकेंगे और जो उसको जीत सकेंगे वह निश्चयही साम्राज्य भोगेंगे।

पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कि हे कृष्ण! मैं साम्राज्य पानेकी इच्छासे अति स्वार्थी बन केवल साहस पर निर्भरकर क्योंकर तुम्हें जरासन्धके वधके

लिये भेजूंगा? हे जनार्द्दन! मैं भीमार्ज्जुनको अपनी दो आंखें और तुमको मन करके जानता हूं, सो नयन मनसे हाथ धोय क्योंकर जीऊंगा? यमराजभी जरासन्धको भीम पराक्रमी अपार सेनाओंको पारकर परास्त नहीं कर सकते, सो उस दशामें तुम्हारा विक्रम प्रकाश करना कैसा होगा? वरन इस विषयमें हाथ डालनेसे बड़ा अनर्थ आ पड़नेकी सम्भावना है, सो मेरी समझमें प्रस्तावित यज्ञका प्रारम्भ करना उचित नहीं है। जनार्द्दन! इस विषयमें मैं अकेला जो विचारता हूं, सुनो। राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा से मुह मोड़नेहीको मैं श्रेय समझता हूं; मेरा चित्त हालमें बड़ा व्याकुल हो रहा है; मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि राजसूय यज्ञ पूरा करना सामर्थके बाहर है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अर्ज्जुन अपनी सामर्थसे धनुषश्रेष्ठ गाण्डीव, दोनों अक्षय तून रथ, ध्वज और मनहरणी सभा यह सब वस्तु पानेके कारण साहस कर युधिष्ठिरसे बोले, कि महाराज! चाप, अस्त्र, बाण, वीर्य्य, सहाय, भूमि, यश और सेना यह मनलुभावने दुर्लभ पदार्थ मैंने लाभ किये हैं। देखें, साधु समाज तथा भले प्रतिष्ठित विद्वान जन कुलमर्य्यादाकी प्रशंसा करते हैं, पर मेरी समझमें वह भी बलके सदृश नहीं है; वीर्य्यहीपर मेरी चाह दौड़ती है। वीर्य्यवन्तवंशमें जन्म लेकर जिसका वीर्य्य नहीं रहता, वह बड़ा तुच्छ है। वीर्य्यहीन कुलमें जन्म लिये वीर्य्यवन्त नर उससे श्रेष्ठ होते हैं। हे महाराज! जो शत्रुकी जयकर बढ़ते हैं, वह सब प्रकारसे क्षत्रिय कहे जाते हैं। क्योंकि मनुष्य कुल-मर्य्यादादि सब गुणोंसे रहित होकरके केवल वीर्य्यवन्त होवे, तो शत्रुको जयकर सकता है, और सब गुण रहने परभी वीर्य्य बिना कोई कार्य्य नहीं कर सकता। पराक्रमके सामने सब गुण, गुणीभूत हैं, अर्थात अप्रधान भावसे रहते हैं। बहुत विचार करना पुरुषकार और दैव यह तीन जयके विरोधी हैं; सो बहुत बलवन्त होने परभी बहुत विचार करनेसे कोई जय पानेके योग्य नहीं हो सकता, वरन बलवन्त होने परभी उस कारण शत्रुके हाथमें मरता है। दुर्ब्बलको जैसी होनता घेरती है, वैसे सबलको मोह पकड़ता है; सो जय चाहनेवालोंको वह बड़ा अनर्थकारी मोह और दीनता त्यागना उचित है। यज्ञके लिये जरासन्धको बधकर राजाओंको छुड़ा सकें, तो हमारे लिये इससे बढ़कर अच्छा कार्य्य क्या हो सकेगा? विशेष इस-विषयमें मुह मोड़के बैठे रहनेसे लोग हमको निश्चय गुणरहित जानेंगे। अतएव हे महाराज! हमारे शंकाके अयोग्य गुणोंके रहते भी आप क्यों निर्गुण समझ रहे हैं? पहिलेसे शान्तिकी इच्छाकर मुनि बननेसे पीछे काषाय चीर जैसे सुलभ होता है, वैसेही पहिले प्रबल शत्रुको जय करनेसे हमको बिना चेष्टा साम्राज्य मिल जायगा; सो हम अवश्यही लड़ाईके लिये कमर कसेंगे।

सोलह अध्याय समाप्त।

बासुदेवजी बोले, कि भरतवंशमें जन्म लिये, विशेष कुन्तीके गर्भसे उपजे जनका जैसा मन होना चाहिये अर्ज्जुनने वह प्रकटित किया। देखिये, हम नहीं जानते, कि कब रात्रिको, वा दिनको मृत्यु होगी और भी कभी यह नहीं सुना, कि न लड़नेसे मृत्यु नहीं होती; सो विधिदर्शित नियमानुसार शत्रु पर चढ़नेहीसे हृदयको आनन्द पहुंचता है और क्षत्रियके लिये वही उचित है। उपाय रहित अर्थात उस अच्छे नियम के संयोगसे कि जिसके देवतादिभी विरुद्ध नहीं हैं, कार्य्य आरम्भ किया जावे, तो अवश्यही पूरा होता है और साम दानादि उपाय वर्ज्जित कुनियमोंके संयोगमें निश्चय विनाश होता है; उक्त प्रकारकी सुनियम

से युद्धमें भिड़ जानेसे भी एक पक्षकी उन्नति होनी सम्भव है, क्योंकि दोनों ओरकी तुल्यता प्रायः नहीं होती। यद्यपि तुल्यताभी हो, तौभी जयके विषयमें सन्देह रहता है, क्योंकि जय वा पराजय दोनों पक्षोंहीकी नहीं हो सकती है। सो हम नियम अवलम्बकर शत्रुके सामने खड़े होजायं, तो वृक्ष उखाड़नेवाली नदीके वेगकी भांति अवश्यही उसको नष्ट कर सकेंगे। अपनी चूक छिपानेका प्रयत्न कर परायी चूक देखके चढ़ जानेसे क्यों हमारा मनोरथ सफल नहीं होगा? पण्डितोंकी यही नीति है, कि व्यूढसेना कदापि अति बली शत्रुसे न लड़े, इसमें मैं भी असम्मत नहीं हूं, पर गुप्तभावसे शत्रुके घरमें घुस कर उसकी देहको पकड़ कर अभीष्ट सिद्ध करले सकें, तो हम कभी निन्दित नहीं होंगे। पुरुषवर जरासन्ध भूतोंकी अन्तरात्माके समान अकेला नित्य सौभाग्य भोग रहा है, सो हमारा यही अभिप्राय है,कि वह नष्ट होवे। हम ज्ञातियोंकी रक्षाके लिये यह चाहते हैं, कि चाहे उसको हनें अथवा उससे मारे जाकर स्वर्गको जायं।

युधिष्ठिर बोले, कि हे कृष्ण! जरासन्ध कौन है? उसका बल वीर्य्य कितना है, शलभके समान जरासन्ध अग्नि समान तुमको छू कर क्यों नहीं जलमरा? श्रीकृष्णजी बोले, महाराज! जरासन्धका जितना वीर्य्य और पराक्रम है और उसके अनेक वार हमारा अनिष्ट करने परभी हमने जिस कारण उसका बदला नहीं लिया, वह सब कहता हूं सुनिये। मगधदेशमें तीन अक्षौहिणी सेनासे उभले, युद्धके अहंकारसे फूले, रूपवाले, श्रीमान, वीर्य्यवान अतिविक्रम भरे, यज्ञके चिन्ह सदा देहमें धरे, दूसरे इन्द्रसदृश बृहद्रथ नामक एक बली राजा थे। उनका तेज सूर्य्यसमान, क्रोध यमसमान क्षमा पृथ्वीसदृश और वीरता कुवेर की भांति थी। हे भरतनन्दन! सूर्य्यके किरण जैसे सब ठौरको छा लेती हैं, वैसे उनके कुल परम्पराके गुणसे धरती भरी थी। उन अति वीर्य्यवन्त भूपने परम रूप सम्पदवती काशीराजकी यमजकन्याओंसे विवाह किया था। उन पुरुषवरने पत्नियोंसे निरालेमें यह नियम किया था, कि तुम दोनोंमें मैं तुल्य प्रेमी बना रहूंगा, कभी अल्प वा अधिक प्रेम नहीं प्रकट करूंगा। हे महाराज! गजराज जैसे दो हथनियोंसे मिल कर सुखसे काल काटता है, वह राजा उन अपने सदृश प्रेमवती पत्नियोंसे वैसेही काल गंवाते थे और दोनोंके बीच रहके गङ्गा और यमुनाके बीचमें मूर्त्तिमान सागर समान सुहाते थे। उस प्रकार विषयका रस चीखते हुए क्रमसे उन राजाकी यौवनदशा कट गयी, पर एकभी वंशधर पुत्र नहीं उपजा। भूप पुत्रकी कामनासे बहुविध हवन यज्ञ और मङ्गलकर्म्म कर कर थकने परभी कुल बढ़ावना पुत्र नहीं पासके। अनन्तर एक समय यह सुनके कि गौतम-वंशी महात्मा काक्षीवानके पुत्र महानुभव चण्डकौशिक तपस्या पूरी करके मनमाने आते हुए एक वृक्षकी जड़ पर बैठे हैं, राजा बृहद्रथने पत्नियोंके साथ उनके सम्मुख जाय मुनियोंको देने योग्य बहुत अच्छे अच्छे पदार्थ देकर उनको प्रसन्न किया। सत्य-प्रेमी, और सत्य कहनेहार ऋषिवर चण्डकौशिक उनसे बोले, कि हे सुव्रतधारी महाराज! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ, अब मनमाना बर मांगो। बृहद्रथ तब दोनों पत्नियोंके सहित उनको प्रणाम कर पुत्रसुख न देखनेके दुःखसे नयनोंमें आंसू भरे गदगद होकर यह वचन बोले, कि मैं बड़ा अभागा हूं! आजतक पुत्रधन नहीं पासका; सो राज्य, धन बिन प्रयोजन जानके सब छोड़ छाड़ तपोवनको जानेकी इच्छा की है, अतएव इस दशामें मुझको वरका क्या प्रयोजन है?

राजाकी यह बात सुनके मुनि इन्द्रियोंको संयत कर उस आमके वृक्षकी छांहमें बैठके ध्यान करने लगे। वह इस प्रकार बैठे थे, कि उनकी गोदमें शुकादिसे न काटा कूटा एक आम गिरा। महाप्राज्ञ मुनिवर चण्ड-कौशिक उस अद्भुत फलको लेकर सोचते हुए उसे पुत्रलाभके लिये कारण स्वरूप राजाको दे दिया और बोले, कि हे नरनाथ! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हुआ, अब लौटकर अपने स्थान-को जाओ।

हे भरतश्रेष्ठ! नृपवर बड़े बुद्धिमान बृह-द्रथ मुनिकी यह बात सुनके उनके दोनों पावोंमें सिर लोटाय अपने गृहको पधारे और पूर्वकी प्रतिज्ञाको स्मरण कर दोनों पत्नियोंको वह एक फल दिया। उन्होंने भी आपसमें बांटकर उस एक फलको खाया। होने वाले अर्थके फलनेकी निश्चयता और मुनिकी सत्यवादिताके हेतु उन दो रानियोंको फल भोजनके कारण गर्भ हुआ। नृप बृहद्रथ उनको गर्भवती देखकर बड़े आनन्दित हुए। हे महाप्राज्ञ भूप! अनन्तर दश महीने पूरे होने पर उन दो राजरानियोंने दो खण्ड शरीर प्रसव किये और उनमेंसे हरेकके एक आंख, एक हाथ, एक पांव, आधा मुख, आधा पेट और आधा लिङ्ग देखकर वे दोनों भयसे थरथराने लगीं। दोनों अबला बहिनने उस समय अति उदास होके आपसमें परामर्श कर उन दोनों जीती देहके खण्डोंको अति दुःखसे फेंक दिया। उनकी दो धात्रियोंने उन दो सुन्दर गर्भोंको भली प्रकार ढांपकर अन्तःपुरसे निकलके किसी एक चौराहे पर लेजाकर फेंक दिया। हे नरवर! मांसरक्त खानेवाली जरा नाम्नी एक राक्षसीने उन फेंके हुए देह-खण्डोंको ले लिया। उस राक्षसीने तब विधिबल आजा-नेके कारण उसने सहजहीमें लेजानेकी इच्छासे उन दोनों देह-खण्डोंको एक किया। हे पुरुषवर! उन दो आधी देहोंके एक दूसरेसे मिलते ही, एकही स्वरूप धरके एक वीर कुमार बना। हे महाराज! अनन्तर राक्षसी आश्चर्ययुक्त आंखोंसे अनुसार बच्चेको उठानेकी चेष्टा करने परभी उठा नहीं सकी। वह बालक हाथोंसे मूका बांधके, मुंह पर रखकर मुंहको फुलाय जलभरे घने बादलके समान गहरे शब्दसे रोने लगा। हे शत्रुमथन नरव्याघ्र! उस शब्दसे पुरवासी भय खाय राजाके साथ एकायक निकले और वहां आशा छोड़ी हुई, मलिन मुख वाली, दूधभरे स्तन धरी राजरानियांभी पुत्र पानेकी आशासे एकायक दौड़ चलीं। तब राक्षसी उन दो रानियोंको उस दशामें, राजाको सन्तान चाहते और उस बच्चेको बड़ा बलिष्ठ देखके सोचने लगी, कि मैं इस राजाके अधिकारमें बसती हूं। यह परम धार्म्मिक और महात्मा हैं, विशेष पुत्र लाभके लिये बड़ी इच्छा रखते हैं, सो इनके इस बालक पुत्रको नष्ट करना मुझको किसी प्रकार नहीं चाहिये। यह सोचके वह निशाचरी मानवी शरीर धरके मेघमाला जैसे सूर्य्यको छाय लेती है, वैसे उस कुमारको लेकर राजासे बोली, कि हे बृहद्रथ! यह पुत्र तुम्हारा है। मुनिवरके प्रभावसे तुम्हारी पत्नियोंसे उपजा है, अब मैं दिये देती हूं, इसे धात्रियोंने इसे त्याग दिया था, मैंने इसे बचाया है।

श्रीकृष्णजी बोले, हे भरतवंशश्रेष्ठ! अनन्तर काशीराजकी उन सुहावनी दोनों कन्याओंने उस बालकको पाय स्तनसे दूधकी धारसे उसीक्षण उसे नहलाया। इसके पश्चात् राजाने सब हाल जानके प्रसन्नमनसे उस सुवर्ण-वरणी मानवी रूपधारिणी राक्षसीसे पूछा, कि हे कमलगर्भ समान शुभावती! मुझे पुत्र देनेवाली, तुम कौन हो? हे कल्याणी! तुम स्वेच्छासे विचरनेवाली कोई देवी

जान पड़ती हो; सो अपना ठीक ठीक हाल कहो।

सत्रहवां अध्याय समाप्त।

राक्षसी बोली; कि हे महाराज! मेरा नाम जरा है, मैंने राक्षसों-कुलमें जन्म लिया है। स्वेच्छासे रूप ले सकती हूं। मैं नित्य हर मनुष्यके घरमें घूमा करती हूं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने सृष्टिके पहिले गृहदेवी नामसे दिव्य रूपिणी बनाय दानवोंके विनाशके लिये रख दिया है। जो मनुष्य पुत्रवती और नये यौवनसे मदमाती मेरी प्रतिमा अपने घरकी दीवार पर लिख रखता है, उसका निःसन्देह मङ्गल होता है, जो नहीं रखता वह नष्ट होता है। हे प्रभो! पुत्रोंसे भरी मेरी छवि तुम्हारे घरकी दीवारमें लिखी है और तुम्हारे घरमें बसकर मैं गन्ध पुष्प धूप, भोजनादिकी नाना सामग्रियोंसे सदा भले प्रकार पूजी जाती हूं, सो सदा तुम्हारे उपकारके बदलेमें कोई उपकार किया चाहती थी। हे धार्मिकवर! आज तुम्हारे पुत्रकी दो भागोंमें बंटी देहको देखकर दैव संयोगसे ज्योंही उसे मैंने एकत्रित किया त्योंही वह एक कुमार बना। महाराज! तुम्हारे भाग्यहीसे यह लीला हुई है; मैं इसमें केवल उपलक्ष्य हूं। मैं सुमेरुको भी खा जा सकती हूं, तुम्हारे इस बच्चेको तो कुछ बात ही नहीं; केवल इसीसे कि तुम्हारे घरमें सदा पूजी जाती हूं, सन्तोषपूर्वक इसे तुमको लौटा देती हूं।

श्रीकृष्णजी बोले, राक्षसी इस बालकको कहके वहांसे अन्तर्हित होगयी। राजा बृहद्रथ अपने कुमारको गोदमें लेके घरमें जाय उसके सब जातकर्म करके और मगध-राज्य भरमें राक्षसीके नामसे महोत्सव करनेकी आज्ञा दे दी; और ब्रह्मा समान उन पितामहने यह निश्चय करके कि 'जरा राक्षसीने इसको सन्धित किया अर्थात् मिलाया है; सो इसका नाम जरासन्ध हो।' ऐसा निश्चय करके उस बालकका नामकरण किया। मगधनाथका वह बड़ा तेजोवान् पुत्र प्रशस्त आकार धारण कर और बलवान् होकर आहुति प्राप्त अग्निके समान बढ़ने लगा; सो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान पिता माताका आनन्द देने लगा।

अठारहवां अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले; कि कुछकाल बीतने पर महात्मा चण्डकौशिक फिर मगध देशमें आगये। राजा बृहद्रथने उनके आनेपर बड़ा प्रसन्न होकर मन्त्री, पुरोहित और दो रानियों तथा पुत्रके सहित निकलके पाद्य, अर्घ्य आचमनीय आदिसे उनकी पूजा की। हे भरतनन्दन! उस भूपालने राज्य-सहित उस पुत्रको उन्हें सौंप दिया। भगवान् चण्डकौशिक राजा मगधकी वह पूजा लेकर प्रसन्न मनसे उनसे बोले, कि हे महाराज! मैं दिव्यज्ञानसे सब बात जान चुका हूं। तुम्हारा यह पुत्र भविष्यमें जो अवस्था प्राप्त करेगा, इसका जैसा रूप, सत्त्व, बल और पराक्रम होगा, वह सुनो कि तुम्हारा यह पुत्र ऐश्वर्यमें बढ़के और विक्रमसे निःसन्देह सब कुछ सम्पद पावेगा। गरुड़के पङ्खकी दूसरे पक्षी जैसे उसकी चालकी बराबरी नहीं कर सकते, वैसे कोई राजा इसके समान वीर्यवान नहीं हो सकेगा, जो इसकी विरुद्धता करेंगे, वे निश्चय ही नष्ट [illegible] भगवान्! [illegible] यह समस्त राजाओंके ऊपर [illegible] होगा। सूर्य जैसे सब वस्तुओंके [illegible] करता है, [illegible] चमकाता [illegible]

कर मृत्युसे भेंटते हैं, वैसे बहुत बल वाहन-वाले राजगण इसकी हरानेमें आप नष्ट होंगे। वर्षाकालमें नदनदियोंके नाथ समुद्र जैसे उछ-लती जलभरी नदियोंको पकड़ लेता है वैसे यह राजोंको उन्नत श्रीको स्वयं ले लेगा। सब प्रकार शस्य-धरो वहती पृथ्वी जैसे शुभ तथा अशुभ सबको धरती है, वैसे महाबली जरासन्ध चारो वर्णोंका धरनेवाला होगा। शरीरधारी जैसे सर्व्व भूतोंको आत्मभूत वायुके वशमें रहते हैं, वैसे सब नरनाथ इसकी आज्ञाके अधीन बनेंगे। अधिक क्या कहूं, सब लोकोंमें अति बलवान यह मागध-प्रधान जरासन्ध त्रिपुर हनन, संसार-हरण महादेव रुद्रका दर्शन करेगा।

हे शत्रु नाशि! मुनिने ऐसा कहते हो कहते मानो अपना कोई कार्य्य स्मरण कर नरनाथ बृहद्रथको विदा कर दिया। मगध-नाथ भी नगरमें जाय ज्ञाति कुटुम्बोंको साथ लेय जरासन्धको मगधराज्यमें बैठाय बड़े प्रसन्न हुए। जरासन्धके राज्य पर बैठने पर राजा वृहद्रथ दो रानियोंके साथ वनको पधारे। हे प्रजानाथ! पिता तथा दोनों माताओंके वनमें जाने पर जरासन्ध अपने वीर्य्यके प्रभावसे सब नरनाथोंको वशमें लाया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नरनाथ बृहद्रथ तपोवनमें बहुत दिन तपकर दोनों पत्नियोंके संग स्वर्गको सिधारे। नवीन राजा जरासन्ध कौशिकके वचनानुसार सब वर पाकर राज्य पालने लगा। हे भरतनन्दन! उस कालमें जरासन्धके स्वजन भूनाथ कंसके वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णसे मारे जाने पर उनके साथ जरासन्धको शत्रुता उभड़ी। बलवन्त मगधनाथने उस शत्रुतासे गिरिव्रजसे एक बड़ो भारो गदा निनानबे वार घुमाके मथुरामें टिके आश्चर्य्य कर्म्म करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके नामसे फेंकी। वह सुहावनी गदा निनानब्बे योजनको दूरी पर मथुराके निकट गिरी। पुरवासियोंने भले प्रकार देखके गदा गिरनेका वृत्तान्त श्रीकृष्णचन्द्रसे कह सुनाया। मथुराके निकट जिस ठौरमें वह गदा गिरी थी, वह गदाव-सान नामसे प्रख्यात हुई। महाराज! हंस और डिम्भक नाम दो पुरुष जरासन्धके सहाय थे, वे शस्त्रसे मारे जानेके अयोग्य, मन्त्रणामें बड़े बुद्धिमान और नीति-शास्त्रमें पण्डित थे। उन अति बलवन्त दोनों वीरोंको कथा मैंने पहिले आपसे कहो है, कि हंस, डिम्भक और स्वयं जरासन्ध इन तीनोंके मिल-नेसे ऐसा जान पड़ता है, कि त्रिलोक भी उनके समान नहीं हो सकता था। कुक्कर, अन्धक और वृष्णिवंशियोंने पराक्रमी होने परभी केवल इस कारणसे नीतिके लिये जरा-सन्धको तुच्छ समझा था।

उन्नीसवां अध्याय और मन्त्रणा प्रकरण समाप्त।

जरासन्ध वध प्रकरण।

श्रीवासुदेवजी बोले, कि हे युधिष्ठिर! हंस और डिम्भकने जलमें डूबके प्राण छोड़े हैं और कंस भी सहाय-सहित मारा गया, सो जरासन्ध-वधका यही ठीक अवसर है। सब सुरासुरभी उसको खुलाखुली लड़ाईमें परास्त नहीं कर सकते; अतएव उसको भुजयुद्ध सेही जय करना उचित है। मुझमें नीति है; भीममें बल है और अर्ज्जुन हमारो रखवारो करेंगे। अतएव तीन अग्नि जैसे यज्ञको पूरा करते हैं, वैसे हम जरासन्धकी मृत्यु पूरो करेंगे। हम तीनों निरालेमें उससे जा भिड़ें तो वह हममेंसे एक न एकसे अवश्यही द्वन्द्व युद्धमें लगेगा; अपमान, लोभ-प्रकाश और भुजवीर्य्य देखके दर्पयुक्त होकर वह निश्चय भीमसे लड़नेके लिये कमर कसेगा।

लोकोंके स्वभावहीसे उभड़ी रहनेसे मृत्यु जैसे उनको नष्ट कर देती है, वैसे अति बलवन्त महाभुज भीमसेनभी उस उभड़े स्वभावी जरासन्धको नष्ट करनेको समर्थ होंगे। महाराज! आप यदि मेरा हृदय जानते हों और मुझ पर आपका विश्वास रहे, तो और विलम्ब न करके भीमार्ज्जुनको मेरे पास न्यासकी भांति सौंप दीजिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नारायणसे यह कहे जाय और भीमार्ज्जुनको प्रसन्नमुखसे बैठे देखकर युधिष्ठिरने सम्भ्रम सहित उत्तर दिया, कि हे शत्रुनाशी अच्युत! तुम मुझसे ऐसा मत कहो; तुम पाण्डवोंके नाथ हो, हम तुम्हारो शरणमें हैं! हे गोविन्द! तुम जो कहते हो, सब युक्तियुक्त है, क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जिनसे मुंह मोड़ती हैं, तुम कभी उनके आगे नहीं जाते हो। हे जगन्नाथ! तुम्हारी इशारेकी बातोंसे मुझको यह जान पड़ता है, कि मानो मैंने जरासन्धको मार लिया, भूपालोंको बचाया और राजसूय यज्ञभी लाभ किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! अब अप्रमत्त मनसे यही करो, कि जिससे वर्त्तमान कार्य्य पूरा हो। क्योंकि तुम तीनोंके बिना मैं धर्म्मार्थ-कामसे वर्जित रोगोंसे पीड़ित जनकी भांति जीनेका साहस नहीं कर सकता। मेरा स्थिर निश्चय यह है, कि जैसे श्रीकृष्ण बिना पार्थ नहीं रह सकते और पार्थ बिना श्रीकृष्णभी रह नहीं सकते, वैसे कृष्णार्ज्जुनके जीतनेके अयोग्य त्रिलोक भरमें कोई नहीं है। और यह श्रीमान वृकोदरभी बलवन्तोंमें प्रधान हैं। यह अति यशोवन्त वीरवर तुमसे मिलकर क्या नहीं कर सकते? अच्छे नायकसे चलाये जानेहीसे सेनायें भली भांति कार्य्य पूरा करती हैं। बिनानायक सेनाको पण्डित लोग जड़ अर्थात तुच्छ समझते हैं, सो बुद्धिमान सैनिकोंहीको सेना चलानी चाहिये। जहां भूमि नीची होती है, बुद्धिमान जन उसी ओरको जल ले जाते हैं; मकुहैभी जहां गड्ढा रहता है, वहीं जल ले जाते हैं। ऐसेही बुद्धिमान सैनिकगण शत्रुकी निचाई और चूक समझकर सेना चलाते हैं, सो नियमकी विधि जाननेवाले, पुरुषकार रखनेवाले त्रिलोकमें प्रख्यात गोविन्दको अवलम्ब कर अवश्य कार्य्य पूरा करनेका प्रयत्न करेंगे। जो कार्य्य पूरा करनेकी प्रार्थना करते हैं, उनको ऐसी बुद्धि, नीति, बल, क्रिया और उपाय रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रहीको आगे बढ़ाना चाहिये। पृथापुत्र अर्ज्जुनभी कार्य्य पूरा करनेके लिये ऐसे गुणनाथ यदुनाथ श्रीकृष्णहीके साथ चलें और भीमभी अर्ज्जुनकी बाट लें; ऐसा होनेहीसे नीति, बल और विक्रमके विषयमें सिद्धि प्राप्त होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि युधिष्ठिरसे यह कहे जाय, अति तेजोवन्त श्रीकृष्णचन्द्र, और अर्ज्जुन तीनों भाई मित्रोंके मनभावन वचनसे सम्भाषित होके वर्ण्णसा स्नातक ब्राह्मणोंके वस्त्र पहिरकर मगधनाथके धामकी ओर चले। उनकी देह सूर्य्य, चन्द्रमा और अग्निके समान स्वभावहीसे अति तेजोपूरित थी, फिर तिस पर ज्ञातियोंके कार्य्यके लिये उसकाल उनके कोपसे जल उठने पर वह और भी प्रदीप्त हो गयी। युद्धमें हार न खानेवाले भीमके सहित श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनको कार्य्यमें दत्तचित्त देखकर जरासन्ध-बधके विषयमें लोगोंका टुकभी सन्देह नहीं रहा। क्योंकि वही दो महात्मा सब कार्य्योंको करनेके ईश्वर हैं, केवल सब कार्य्यहीके नहीं वरण वे धर्म्मार्थ काम मोक्षके भी कर्त्ता हैं। वे कृष्णार्ज्जुन और भीमसेन कुरुदेशसे पधारकर कुरुजाङ्गलके बीचसे हो कर सुन्दर पद्मसरोवरको गये; आगे कालकूटको पीछे छोड़के गण्डकी सदानीरा शर्क्करावर्त्त

और एक पहाड़ीकी नदियोंको पार करते हुए चले। अनन्तर वे मनोहारी सरयूके पार उतरकर पूर्व कौशल देशको निहार मिथिला तथा माला और चर्मण्वती नदीको पारकर आगेको चले; गंगा और शोणके पार उतरकर वे अक्षय उत्साहसे पूरित तीनों वीर उस समय पूर्वकी दिशामें पधारके कुशस्थ देशको जातीके समान मगधराज्यकी सीमामें आ पहुंचे। अनन्तर उन्होंने जलभरे गो-पूरे सुन्दर वृक्ष-घरे गोरथ नामक पर्वतसे उतरकर मगधनाथकी पुरी देखी।

बीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीवासुदेवजी बोले, कि हे पार्थ! वह देखो मगधराज्यकी राजधानी कैसी सुन्दर शोभा पा रही है। वह अनेक पशुओंसे भरी, सदा जलपूरी, उपद्रवोंसे रहित और अच्छे अच्छे भवनोंसे सुशोभित है। ऊंचे ऊंचे चोटी लिये हुए वृक्षवाले, एक दूसरेसे मिले विहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैतक ये पांच बड़े बड़े पर्वत मानो एक रह वनके गिरि-व्रजनगरीकी रखवारी कर रहे हैं; शाखाओंके अगले भागमें फूल लगे, सुगन्ध फैलाये मनोहरण कामी जन प्रेमधन लोध्र वनोंने मानो उन पहाड़ोंको ढांप रखा है। वहां प्रशंसित व्रतधारी महात्मा गौतममुनिने शूद्राणी औशीनरीसे काक्षीवान् आदि पुत्रोंको उपजाया था। गौतमके वीर्य और शूद्राणीके गर्भसे जन्म लेकरके भी उन वंशकी उस भवनमें राजवंश होनेका कारण यही कहना चाहिये, कि राजा पर गौतमकी कृपा थी। हे अर्जुन! पूर्वकालमें अति पराक्रमी अङ्ग वङ्गादिके राजगण भी इस गौतमकी कुटीमें आनकर प्रमुदित होते थे। वह देखो, गौतमजीके आश्रमके निकट लोध्र और पीपलके वन कैसी सुन्दर शोभा दे रहे हैं। यहां अर्बुद और शक्रवापी नामके दो शत्रुतापी नागोंके और स्वस्तिक तथा मुनि नागके भवन बने हैं; भगवान मनुने मागधियोंको ऐसे रचा है, कि कभी जिनके बादलोंकी कृपा नहीं जाती; तथापि उनको जलका कष्ट नहीं होता। और कौशिक तथा मणिमान भी इन्हें घर। बड़ी दया दिखाती है इस प्रकार सब भांतिसे मनोहर सुन्दर गिरिव्रजको पाकर जरासन्ध अनुपम कार्य पानेमें कोई शङ्का नहीं करता है? पर आज हम चढ़ कर उसका अहङ्कार चूर चूर करेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि ऐसा कहके सुनकर अति बलवन्त वृष्णिवंशी श्रीवासुदेव और भीमार्जुन तीनों भाई मिलके मगधपुरको आगे चले। आगे वे हृष्ट पुष्ट जनोंसे भरे सदा उत्सव करते हुए, चारोंकी चारों वर्णोंसे पूर्ण गिरिव्रज नगरीमें जा पहुंचे और पुरके द्वारके निकटमें जाकर राजा बृहद्रथके परिवार तथा नगरवासी प्रजाओंसे पूजी जाती हुई, मागधोंको प्यारी, ऊंची चैतक चोटीको भेद किया। उस स्थानमें राजा बृहद्रथने मांसाद ऋषभ दैत्यपर चढ़ाई की थी और उसको हननकर उसके चमड़ेसे तीन भेरीको रूप करके अपने पुरमें लटकाया था। वे तीन भेरी इतनी बड़ी थीं, कि जिनके पीटनेसे मासभर उनकी धुन सुनी पड़ती थी। वे भेरी दिव्य फूलोंसे सजायी जाय जैसी बजती थीं, उस सिंधकी बंध चाहने वाले कृष्णादि तीनों मानो उसके सिर पर चोट लगाय मागधोंको प्यारी उस चैतकके चोटीको तोड़ डाला भगवानने अति अमीत, अति पुराने, बड़ी मोटी और सुहावनी फैली तिपरानी चोटी गन्ध माल्यादिसे सदा पूजी जाती थी, उसके तीन वीरोंने अपरिमित भुजबलसे उसको चिकनाचूर करके गिरा दिया और दुःखके पीछे प्रसन्न मनसे मगधपुरमें जा घुसे।

ऐसे समयमें वेदपारग पुरोहित ब्राह्मणोंने कुछ बुरे चिह्न देख कर निरन्तर जरासन्धको दिखाये और गजेपर चढ़ाये नीराजना

अर्थात् जलती हुई लकड़ीसे आरती की। प्रतापी राजा जरासन्धभी उस अशुभकी शान्तिके लिये दीक्षित और नियमयुक्त हो रहे। इधर स्नातक ब्रतधारी, बिना अस्त्र भुजमात्र अस्त्र-सहित कृष्णार्ज्जुन और भीम नगरमें आय घुसे। हे भरतनन्दन! वे राजमार्गसे चलते समय अपने भोजनकी सामग्री और मालाओंकी सर्व्वगुणयुक्त और सर्व्वकामपूर्ण अति सुहावनी शोभा देखने लगे। राजमार्गमें ऐसी समृद्धि निहारके उन महाबली नरवरोंने मालाकारसे बलपूर्व्वक माला छीन ली और इसी प्रकारसे रागयुक्त सुन्दर चीर, माला और भलि भलि कुण्डल धर हिमाचलके सिंह जैसे गोशाला देखते हुए जाते हैं, वैसे जरासन्धके भवनमें गये। महाराज! उन युद्धदक्ष तीनों वीरोंके अगुरु चन्दनसे सुशोभित भुज शाल-वृक्षके समान सोहने लगे। मगधपुरके निवासी उनको बहुत मत्त हस्तीके समान शालस्कन्ध-सदृश ऊंचे और किवाड़की भांति चौड़ी छातीवाले देखकर अचरजमें होगये। नरश्रेष्ठ कृष्णादि जनभरी तीन कक्षाओंको पीछे छोड़ कर निश्चित हृदयसे अहङ्कारकी उमङ्गमें जरासन्धके निकट जा पहुंचे। प्रभावी राजा जरासन्ध उसी क्षण उठकर यह सम्भाषण कर, कि 'आपका शुभागमन होवे' पाद्य, मधुपर्क और गोदानके योग्य पूजनीय कृष्णादिका विधिपूर्व्वक सत्कार किया। हे जनमेजय! उस काल पार्थ और भीम मौन साधे थे, उनमें बड़े बुद्धिमान श्रीकृष्णचन्द्र जरासन्धसे यह बोले, कि हे नरनाथ! यह नियमयुक्त हैं, सो इस समय कुछ बात नहीं बोलेंगे; आधी रात्रि बीतने पर तुमसे वार्त्तालाप करेंगे। राजा जरासन्ध उनको यज्ञशालामें टिकाय राजभवनमें गया। फिर आधी रात आपहुंचने पर, उन द्विजोंके पास आया। महाराज! समर-विजयी नरनाथ जरासन्धका यह दृढ़ ब्रत था, कि स्नातक ब्राह्मण आधी रातको भी आवें तौभी उस समय सुनतेही वह आकर उनसे भेट करता था। नृपवर जरासन्ध कृष्णादिके निकट पहुंचकर उनका अद्भुत वेश देखके अचम्भेमें होगया। हे भरत-श्रेष्ठ! यज्ञशालामें टिके उन शत्रुनाशी नरश्रेष्ठोंने राजा जरासन्धको देखतेही एक दूसरेके मुख देख कर उससे यह कहा, कि हे महाराज! बिना विघ्न तुमको मोक्ष-पद मिल जावे! जरासन्धने कृत्रिम ब्राह्मण वेशधारी यादव और पाण्डवोंको बैठनेको कहा। वे सब भी बैठकर महा यज्ञके तीन अग्नियोंके समान शोभासे जलने लगे।

हे कुरुनन्दन! अनन्तर नरनाथ सत्यप्रण ठाननेवाला जरासन्ध गुप्तवेशधारी श्रीकृष्णादिकी निन्दाकर बोला, कि इस नरलोकमें सब प्रकारसे मुझे विदित है कि स्नातक ब्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थी धर्म्ममें-प्रवेश कालके बिना मालादि नहीं धारण करते; पर देखता हूं, कि तुम फूल लगाये हो, और भी तुम्हारी हथेलियोंसे धनुषमें गुण चढ़ानेके चिन्ह बने हैं; सो तुम कौन हो? तुममें क्षत्रिय तेज है, पर ऐसे विचित्र रागयुक्त चीर पहिरे और अनुचित माला लटकाये गन्ध लगाये अपनेको ब्राह्मण कहाते हो, सो सच कहो तुम कौन हो? क्योंकि राजोंके लिये सत्यहीकी बड़ी शोभा है। तुम राजाके अनिष्ट करनेका भय न खाकर चैतक पर्व्वतकी चोटीको भेदकर क्यों बुरे द्वारसे पुरमें आघुसे हो? ब्राह्मणका वीर्य्य बातहीसे प्रकट होता है, कार्य्यसे नहीं, सो तुम्हारा यह कार्य्य विलिङ्गस्थ अथात् क्षत्रिय-योग्य हुआ है। अतएव कहो कि आज तुम्हारा क्या अभिप्राय है और तुम इस अनुचित व्यवहारसे मेरे पास आकर क्यों मेरा दिया हुआ; विधिसम्मत

सत्कार नहीं लेते हो और मेरे पास आनेका प्रयोजन ही क्या है?

जरासन्धके ऐसे कहने पर महामना वक्तृवर श्रीकृष्णचन्द्रने कोमल गम्भीर स्वरसे उत्तर दिया, कि महाराज! तुम हमको स्नातक ब्राह्मण करके ही जानो। हे नरनाथ! ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, तीनों वर्ण ही स्नातक नियमसे रह सकते हैं और उनमें विशेष और अविशेष दोनों प्रकारके सब नियम रहते हैं। उनमें विशेष नियमवाले क्षत्रिय सदा सौभाग्य प्राप्त करते हैं, और जो फूल लगाये जन निश्चय श्रीमन्त होते हैं, सो हमने फूल हार लटकाये हैं। हे बृहद्रथगत! क्षत्रिय लोग भुजसे जितना वीर्य्य प्रकाश करते हैं, बातसे उतना नहीं करते; अतएव उनके उच्चारे वचन कभी प्रगल्भ नहीं होते। हे महाराज! विधाताने क्षत्रियोंकी दोनों भुजोंमें ही अपना वीर्य्य भर दिया है; यदि वह देखना चाहो तो बिना सन्देह निश्चयही देखोगे। बद्धिमान जन शत्रुके घरमें कुद्वारसे और बन्धुके अच्छे द्वारसे जा घुसते हैं, यही धर्म्म-शास्त्रकी विधि है; और यह भी जान लो, कि कार्य्य सिद्धकी चाहसे शत्रुके घरमें घुसकर हम उसकी दीहुई पूजा नहीं लेते, यह हमारा सदासे प्रसिद्ध नियम है।

इक्कीस अध्याय समाप्त।

जरासन्ध बोले, कि हे विप्रवर! स्मरण नहीं होता, कि मैंने तुमसे कब शत्रुता की है, और यह सोचकर जान नहीं सकता हूं, कि तुमसे कभी बुराई की है। यदि हानि नहीं की हो, तो सच कहो कि बिना दोष तुम क्यों मुझको शत्रु समझते हो। क्योंकि सत्य कहनाही साधुओंका नियम है। देखो धर्म्मार्थमें चोट देनेसे मनमें दुःख हो जाता है, सो महारथी क्षत्रिय और धर्म्मके जानकार होके जो निर्दोषी जन पर उस धर्म्मार्थमें चोट पहुंचानेका कलङ्क लगाता है, वह बिना सन्देह पापियोंकी गतिको प्राप्त करता है और कल्याणसे भी अपनेको हटा लेता है। त्रिलोक भरमें क्षत्रिय-धर्म्म साधु व्यवहारियोंको शुभ पहुंचाता है; धर्म्मके जानकार लोग क्षत्रियोंके धर्म्मकी बड़ी प्रशंसा करते हैं; मैंभी हालमें अपने आत्माको संयत कर उस क्षत्रिय-धर्म्ममें लगा हूं, और प्रजाओंके सामनेभी निर्दोषी हूं, इस परभी तुम मुझ पर धर्म्मार्थमें चोट पहुंचानेका कलङ्क लगाते हो, इससे निश्चय जान पड़ता है, कि तुम भ्रमवश ऐसी कल्पना करते हो। श्रीकृष्णचन्द्र बोले, कि हे महाभुज! कुलप्रवर कोई एक पुरुष कुल-कार्य्यको वहन करते हैं, उन्हीकी आज्ञासे हम तुम पर चढ़ आये हैं। हे महाराज! तुम जन-समाजके सब क्षत्रियोंको बलपूर्वक पकड़ लाये हो, ऐसा अति कुटिल दोष करके क्योंकर अपनेको निर्दोषी समझ रहे हो? हे नृपवर! राजा कहके क्यों कर साधु राजोंकी हिंसा कर सकता है? पर तुम उन राजोंको सताके रुद्रदेवके नामसे बलि चढ़ाना चाहते हो। हे जरासन्ध! तुम्हारा किया वह पाप हमको भी स्पर्श कर सकता है, क्योंकि हम धर्म्म आचरने वाले हैं, और धर्म्मकी रक्षामेंभी समर्थ हैं। बलि चढ़ानेके लिये नरहत्या तो कभी देखी नहीं गयी, फिर तुम क्यों कर नरबलिके द्वारा शङ्करके नामसे यज्ञ किया चाहते हो? जरासन्ध! तुम बड़े मूर्ख हो, इसी लिये सवर्ण होके सवर्णोंको पशु नाम दिया चाहते हो। तुम्हारे बिना दूसरा कौन ऐसा कर सकता है? जो जैसा कर्म्म करता है, वह उस कार्य्यका फल पाता है; अतएव हम भयभीत जनोंका पक्ष लेकर ज्ञातियोंकी वृद्धिके लिये, ज्ञातिनाशी तुमको नष्ट करनेके लिये यहां आये हैं। हे महा-

राज ! तुम्हारी यह समझ, कि क्षत्रियोंमें तुम्हारे बिना दूसरा वीर नहीं है, वह केवल तुम्हारी बुद्धिकी हीनता है ; क्योंकि अपनी वंश-मर्य्यादाको समझ बूझकर कौन आत्मावान क्षत्रिय रणमें प्राण छोड़के अनन्त अक्षय स्वर्ग पाना नहीं चाहता होगा ? हे नरवर ! तुम यह निश्चय जानते हो, कि स्वर्गके उद्देशसे क्षत्रियगण रणयज्ञमें दीक्षित होके लोकोंको परास्त करते हैं। महान् वेद पढ़ना, महान् यश, तपस्या और युद्धमें मृत्यु, यह सबही स्वर्ग पानेके कारण हैं, उनमें वेद पढनादिसे स्वर्गलाभ नभी होसकता है, पर युद्धमें मरनेसे वैसा होनेकी असम्भावना नहीं है, यह स्वर्ग-प्राप्तिका निःसन्देह कारण है। युद्धमें मृत्यु साक्षात इन्द्र सम्बन्धी कृपाके समान है, यह सदा गुणोंसे भरी है ; ऐसी मृत्यु लाभ करकेही इन्द्र दैत्योंको परास्त करके जगको पालते हैं। हे महाराज ! तुम्हारा विग्रह जैसा स्वर्गकी बाटके योग्य है, वैसा फिर किसका हो सकता है ? क्योंकि वह अगणित मागधी सेनाओंकी सहायता और बहुत बड़े बलदर्पसे भरा है। वास्तव में हे नरनाथ ! तुम दूसरे लोकोंका अनादर मत करो, क्योंकि मनुष्य मात्रहीमें वीर्य्य है। ऐसे कितने ही मनुष्य विद्यमान है, जो तुम्हारे समान वा तुमसे अधिक वीर्य्यवान हैं ! यह बात जबतक अविदित हैं, तब तक तुम्हारा तेज गिना जा सकता है, पर हे महाराज ! यह तेज हमारे लिये बहुत असह्य है, इसी लिये मैं ऐसा कहता हूं। हे मागध ! तुम अपने समान जनोंसे अभिमान और दर्प करना छोड़ दो। पुत्र, मन्त्री और सेनाओंके साथ झूठमूठ यम-राजके घर मत जाओ। देखो, अहङ्कारसे उभला कार्त्तवीर्य्य, उत्तर, बृहद्रथ आदि बली भूप अपनेसे बड़े लोगोंका अपमान कर मारे गये हैं। हम वास्तवमें ब्राह्मण नहीं हैं, केवल छलसे तुम्हे हननेको ब्राह्मण वेश लिया है। मैं हृषिकेश कृष्ण हूं और यह दो वीर पाण्डुके पुत्र हैं। हे मगध-नाथ ! हम तुमको ललकारते हैं, स्थिर होकर लड़, अथवा सब भूपोंको छोड़ दो और नहीं तो यमघरको जाओ। जरासन्ध बोला; कि अहो कृष्ण ! मैं बिना जय किये किसी भूपको नहीं पकड़ता, बिना हारे क्या कोईभी यहां बंधा रहता है ? और ऐसा क्षत्रियही यहां कौन हैं, जो मुझसे पराजित नहीं हुआ ? यही क्षत्रियोंका उपजीव्य धर्म्म करके कहा गया है, कि विक्रमसे शत्रुओंको वशमें लाय जैसा चाहे व्यवहार करे। अतएव कृष्ण ! मैं देवताके नामसे क्षत्रियोंको पकड़ लाके क्षत्रिय धर्म्म स्मरणकर हालमें भय खाय अब क्यों-कर उन्हें छोड़ दे सकता हूं ? पर जो तुम युद्धकी बात कहते हो, मैं व्यूहयुक्त सेनाओंसे अथवा अकेले एकसे दोसे वा तीनसे एकबारही वा अलग अलग चाहे जैसे हो लड़नेको सम्मत हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा जरा-सन्धने यह कह भयावने कर्म्म करने वाले कृष्णादिके साथ युद्ध करने पर होके अपने पुत्र सहदेवको राज्यमें बैठनेकी आज्ञा दी। हे भरतश्रेष्ठ ! उस उपस्थित युद्धमें उसने कौशिक और चित्रसेन नामक सेनापतियोंको स्मरण किया। हे महाराज ! पहिले इस नरलोकमें लोग उनके ही "हंस और डिम्भक" यह लोक-प्रख्यात नाम कहा करते थे। हे भूप ! हलधरके अनुज, पुरुषशार्दूल, सत्यसन्ध वंशि-प्रवर, विभु मधुसूदन, श्रीकृष्णचन्द्रने उस बलीश्रेष्ठ, शार्दूल समान पराक्रमी भूमण्डल भरमें अति विक्रमी भूपाल जरासन्धको युद्धमें भीमहीके योग्य, तथा यादवोंसे मारे जानेके अयोग्य स्मरण कर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाल-नेके लिये स्वयं उसे नष्ट करना नहीं चाहा।

बाईस अध्याय समाप्त।

वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वचन-प्रधान यदुनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्रने युद्धमें प्रण ठाने हुए राजा जरासन्धसे यह पूछा, कि महाराज! हम तीनोंमें किससे तुम लड़ा चाहते हो? कौन तुमसे लड़नेको सज धज ले। श्रीकृष्णकी यह बात सुनके उस तेजस्वी मगधनाथने भीमसे लड़ना चाहा। तब पुरोहित गोरोचना, माला और दूसरे माङ्गलिक पदार्थोंके साथ पीड़ा-भगावनी चेत-जगावनी औषध लेके युद्धेच्छुक राजा जरासन्धके पास आये। भीम-पराक्रमी मतिमान जरासन्ध यशोवन्त ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन किये जाय क्षत्रिय धर्म्म स्मरणकर युद्धके लिये प्रस्तुत हुआ। वह किरीट उतारके केश बांधके हिलोड़ते हुए समुद्रके समान वेगसे उठ खड़ा हुआ और भीमसे बोला, भीम! तुमसे लड़ूगा, देखो श्रेष्ठ जनसे हार-नाभी अच्छा है। शत्रुमथन, अति तेजोवन्त जरासन्ध यह कहके बल नामक दैत्य जैसे इन्द्र पर दौड़ा था, वैसे उनकी ओर दौड़ा। अनन्तर बली भीमसेन श्रीकृष्णसे परामर्श कर और उनसे स्वस्त्ययन किये जाय लड़नेके लिये जरासन्धके पास जा पहुंचे। पीछे एक दूसरेकी पराजय चाहनेवाले भुजमात्र शस्त्र लिये हुए वे दोनों नरशार्दूल वीर अति प्रमुदित चित्तसे एक दूसरेसे भिड़ गये। पहिले वे एक दूसरेके कर थामके पावोंसे सम्भाषण कर ताल ठोक कर राजभवनके घरोंको कंपाय ललकारने लगे, आगे दोनों करोंको गलेमें वारम्वार रगड़के देहसे देह रगड़ाय फिर ललकारते रहे और चित्रहस्तादि अर्थात् हाथ सिकोड़ना, घूसा बनाना आदि करके और ताल ठोकके गलेसे गला गालसे गाल रगड़के आगकी चिनगारी निकालकर मानो वज्र रच डाला। हे विभो! वे भुजमात्र अस्त्र लिये दोनों घोर बादल समान गर्ज्जन करनेवाले एक दूसरेके सूंड़ की चोट मारके गर्ज्जन करते हुए हस्तीकी भांति बाहुपाशादि अनेक प्रकारके बन्धन कर उरोहस्त अर्थात् छाती-पर थप्पड़ मारना, पूर्णकुम्भ अर्थात् एकत्रित उङ्गलियोंसे शिर पर मारना इत्यादि युद्धके कौशल दिखाके एक दूसरेके शिर पर लात मारने लगे और थप्पड़ोंसे घायल होय क्रोधसे उभले दो सिंहो के समान एक दूसरेको देख देखके और वार वार पकड़ पकड़के लड़ने लगे। परस्परने अङ्गसे अङ्ग भुजोंसे भुज घायल किये और पेटपर पेट रखके परस्परको गिराया। सुशिक्षित दोनो वीर कमर, स्कन्ध, और पार्श्वभाग सिकोड़ सिकोड़के दोनों करोंसे पेटको घेर अपने कण्ठ और छातीके निकट लाय इस प्रकारसे एक दूसरेको सताने लगे और सर्व्व मर्य्यादानाशी पीठ तोड़, पूरी मूर्च्छा, दोनों भुजोंसे पूर्णकुम्भ तृणपीड़,घूसोंके साथ मनमाना पूर्णवेग आदि नाना भांतिसे लड़ने लगे।

हे नरशार्दूल! उनकी लड़ाई देखनेके लिये उस समय पुरवासी सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यहांतक, कि स्त्री और वृद्धभी वहां एकत्रित थे। भीड़ इतनी लगी, कि वहां तुकभी स्थान न रहा। तब लड़ते हुए वीरोंके मुक्के और उलट पलटसे पहाड़ पर वज्र गिरनेके समान भयावना शब्द होने लगा। वे दोनों महाबली थे और युद्धमें अति प्रसन्न होते थे, सो एक दूसरेकी चूक ढूढ़ रहे थे। महाराज! इन्द्र और वृत्रा-सुरके युद्धमें जैसा हुआ था, वैसेही भीड़ भरे अखाड़ेसे लोगोंको हटाय भीम और जरा-सन्धकी वह भयावनी लड़ाई होने लगी। प्रकर्षण, आकर्षण, अनुकर्षण, विकर्षण आदि बहुविध पेंचोंसे एक दूसरेको खींचने और जङ्घसे चोट पहुंचाने लगे। अनन्तर वे दृढ़ छाती तथा दीर्घ भुजवाले कुस्तीमें तेज दोनों वीर अति घोर शब्दसे एक दूसरेको निन्दा कर लोहेके परिघ समान भुजोंसे समाश्लेष

और संश्लिष्ट पाषाण-सदृश अति कठिन आघातसे मारने लगे। महात्मा भीम और जरासन्धकी वैसी लड़ाई कार्त्तिक मासकी प्रथमा तिथिमें आरम्भ होय त्रयोदशी तक निशिदिन बिना रोकटोक बिना भोजन चली थी, आगे चतुर्द्दशीकी रातको जरासन्धने थक-कर कुस्ती त्याग दी। जनार्द्दन राजाको युद्धमें थका देखकर भयावने कर्म्मचारी भीमको मानो उत्साहित करनेके लिये बोले, कि कुन्तीनन्दन! युद्धमें थके शत्रुको पीड़ा नहीं पहुंचायी जा सकती, क्योंकि पूर्ण रूपसे पीड़ित होनेसे वह अपना जीवन छोड़ सकता है, सो इस दशामें राजाको भी पीड़ा नहीं देनी चाहिये, तुम तुल्यभावसे इनके साथ लड़ो। श्रीकृष्णके इशारसे ऐसा कहने पर शत्रुनाशी वृकोदरने जरासन्धकी वैसी दशा समझके उसको हनना चाहा। अनन्तर कौरवोंकी जयके अग्रगण्य उस जरासन्धको वधनेके लिये बलियोंमें श्रेष्ठ कुरुनन्दनने बड़ा उत्साह किया।

तेईस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भीम-सेन जरासन्धको नष्ट करनेकी इच्छासे अति उत्साह लिये यदुनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्रसे बोले, कि हे यदुशार्द्दूल कृष्ण! यह पापात्मा अभी-तक ताल जमाता और तेज दिखाता है। सो इसे छोड़ना उचित नहीं है। पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णने वृकोदरकी यह बात सुनके जरासन्धके वधके लिये मानो उनको शीघ्रता दिखानेको कहके यह उत्तर दिया, कि हे भीम! तुम्हारा जो परम दैवी बल है और बचनसे तुमने जो बल लाभ किया है वह आज जरासन्ध पर शीघ्र दर्शाओ। शत्रु-दमन महाबली भीमसेन ऐसा कहे जाय उस समय बली जरासन्धको ऊंचे उठाय घुमाने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! उन्होंने वैसे उसको सौ फेरा देय जङ्घेसे उसकी पीठ नवाय तोड़ डाली; इस प्रकार उसको पीसके गंभीर गर्ज्जन करने लगे। पिसा जरासन्ध और गरजते हुए भीमका सर्व्व प्राणियोंका भयदायी ऐसा कठोर शब्द उठा, कि मगधवासे सब लोग भय खागये; यहां तक कि गर्भवती स्त्रियोंका गर्भभी गिर गया। भीमसेनको भयावनी ध्वनि सुनके मागधियोंने यह समझा, कि कदाचित हिमाचल टूट गया अथवा धरती फट रही है। अनन्तर शत्रुनाशी तीनों भाई रात्रिके समय प्राण छोड़े जरासन्ध-की सोतेकी भांति राजद्वारमें छोड़के वहांसे निकले। श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धके ध्वजा-सहित रथको जोत कर उस पर चढ़के और भीमार्ज्जुनको चढ़ाय बान्धवोंको कारागारसे छुड़ाया। रत्नवान भूपवर्गने बड़े भयसे छुड़ाये जाय श्रीकृष्णके सामने आय उनको नाना रत्नोंका उपहार देय प्रसन्न किया। शस्त्रधारी शत्रु जयकारी, सब राजा बारम्बार मारनेकी शक्ति रखनेके हेतु शत्रुओंकी उन्नति नष्टकारी दोनों हाथोंसे तुल्य युद्धकारी, अच्छे सहोदरवाले दर्शनीय अर्ज्जुन श्रीकृष्णको सारथि बनाय उन सुन्दर रथपर चढ़ सब राजाके साथ गिरिव्रजसे अक्षत शरीरमें निकले। योद्धृवर भीमार्ज्जुनके चढ़ने और श्रीकृष्णके सारथि होने पर सब चापधारियोंके अजेय वह रथ बहुत सुहाने लगा। वृहस्पतिको पत्नी तारका जिसमें आसय अर्थात विनाशहेतु बनती है, उस युद्धके कालमें इन्द्र और उपेन्द्र जिस रथ पर चढ़े थे, अब श्रीकृष्ण उस पर चढ़के चले। गर्म सानको कान्ति धरे किङ्किणीजालमालासे पूरे, बादलकी गर्ज्जनसमान गहरी धुनभरे, शत्रु संहारी जिस जयकारी रथ पर चढ़के इन्द्रने निनानवे दानवोंको हनन किया था, पुरुषश्रेष्ठ कृष्णादि वह रथ पाकर अति हर्षित हुए। मागधिये महाभुज भीमार्ज्जुनके साथ श्रीकृष्णको उस रथ पर चढ़े देख अचम्भेमें होगये। हे

भरतनन्दन! दिव्य चार घोड़े जुते वायुसमान वेग रखते हुए उस दिव्य रथने श्रीकृष्णके विराजने पर कैसो अपूर्व शोभा धरी थी। उस रथमें देवतोंसे बनी, श्रीठनी इन्द्र धनुषकी प्रभाकी भांति सुहासिनी एक अच्छी ध्वजा इतनी ऊंचाई पर लगी थी, कि रथसे वह मिलती नहीं थी, और वह योजन भरकी दूरीसे दीख पड़ती थी,।

अनन्तर श्रीकृष्णने गरुड़का स्मरण किया और गरुड़भी उसी क्षण उनके निकट आ पहुंचे। सर्पनाशन गरुत्मानन गहरी धुन-धारण ध्वजसोहन भूतोंके साथ उस रथ पर चढ़ बैठे; उनके बैठनेसे वह रथकी ध्वजा मानो फल कर चैत्य वृक्षके समान सोहने लगी और सहस्रों किरण छिरकाये मध्याह्नकालिक सूर्य्यकी भांति अधिक तेज पाय प्राणियोंकी अयोग्य बनी। हे महाराज! वह ध्वजा नतो वृक्षोंसे लगती और न शस्त्रोंसे विद्ध होती, थी मनुष्यलोग उसको केवल देखतेही थे। नरनाथ वसुने जिसे इन्द्रसे प्राप्त किया था, वसुसे वृहद्रथने जिसे लाभ किया था, और वृहद्रथके पीछे जो जरासन्धको मिला था, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र भीमार्ज्जुनके साथ उस बादल समान धुनसे पूरित दिव्यरथ पर चढ़के पुरीसे निकले। उन महाभुज महायशवन्त पुण्डरीकाक्षने गिरि-व्रजसे निकलके बाहरी खण्डमें किसो एक सम-तल ठौरमें कुछकाल तक विश्राम किया। हे महाराज! उस नगरवासी ब्राह्मणादि लोगोंने विधिके अनुसार कर्म्मसे उनका सत्कार किया। और बन्धनसे छूटे भूपोंनेभी उनकी पूजा की। इसके पीछे राजोंने स्तुति करके उनसे यह कहा, कि हे महाभुज देवकीनन्दन! भीमार्ज्जुनसे मिलके जरासन्धरूपी बड़े झीलके दुःखकीचड़में डूबे राजोंको उद्धार कर धर्म्म-पालना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। हे विश्व भरमें फैले यदुनन्दन! हम कठोर गिरिदुर्गमें बहुत उदास होके पड़े थे, बड़े भाग्यसे आपने हमको छुड़ा कर प्रदीप्त यश लाभ किया। हे पुरुषव्याघ्र! हम सब प्रकारसे सिर नवाये हैं अब आज्ञा दीजिये कि क्या करें! आप जो कार्य्य करनेको कहेंगे, वह करनेके अयोग्य होने परभी यह समझ लीजिये कि भूपोंने करही दिया है।

महानचित्त हृषीकेश उनको ढाढ़स देकर बोले, कि हे भूपो! युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ करना चाहा है, सो आप यह सब ज्ञात होय उस धर्म्ममें प्रवृत्त नरवरकी सहायता करें। हे नृपश्रेष्ठ! अनन्तर वे पृथ्वीनाथ राजा लोग प्रसन्न मनसे उनकी वह बात मानके यह बोले, कि 'सब वही करेंगे' और उनको बहुत रत्नभी दिया। यदुनन्दन गोविन्दने उनपर कृपा दिखाय उसका कुछभाग ले लिया। जरासन्ध-पुत्र महानचित्त सहदेवनेभी पुरोहितोंको आगे कर मन्त्री और सज्जनोंके साथ निकलके अति नम्रतासे प्रणाम कर बहुत रत्न देके नरश्रेष्ठ वासुदेवजीको उपासना की। तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रने उस भयभीत राजकुमारको ढाढ़स देकर उसके दिये हुए महामूल्य रत्नोंको ले लिया। और हर्ष सहित उसी स्थान पर उसको अभिषिक्त कर दिया। यहाभुज प्रकाश-मान जरासन्ध-नन्दन श्रीकृष्ण और भीमार्ज्जुनसे सत्कार सहित मित्रता लाभ कर और महा-त्माओंसे राजपद पर बैठाये जाय मागधपुरमें गया। इधर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णभी भीमार्ज्जुनके संग परम सुशोभित होय बहुत अधिक रत्नके साथ पधारे। अनन्तर अच्युत भीमार्ज्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें पहुंच कर धर्म्मनाथके सामने जाय प्रसन्न चित्तसे बोले, कि हे नरनाथ! भाग्य वश भीमसेनने जरासन्धको नष्ट किया है और राजगणभी बन्धनसे छूटे हैं। हे भारत। बड़े भाग्यसे भीमार्ज्जुन कुशल सहित अक्षत देहसे नगरको लौट आये।

इसके पीछे युधिष्ठिरने परम प्रसन्नचित्तसे श्रीकृष्णका यथायोग्य सत्कारकर उनको और भीमार्ज्जुनको गले लगाया। जरासन्धके मारे जाने पर अजातशत्रु युधिष्ठिर दोनों भाइयोंके द्वारा जय पाय हर्षित हुए। आगे भाइयोंसे घेरे जाय उन्होंने आये हुए नरनाथोंको अवस्थाके अनुसार आलिङ्गन वन्दनादि कर सत्कार और पूजापूर्व्वक विदा कर दिया। नरनाथ लोग सब युधिष्ठिरकी आज्ञा लेके प्रसन्नमनसे अनेक यान वाहनों पर निज निज देशोंको तुरन्त पधारे। हे भारत! महाबुद्धि पुरुषशार्द्दूल जनार्द्दनने उस काल पाण्डवोंसे अपने शत्रु जरासन्धको इस प्रकारसे मारके गिराया था। वह शत्रुदमन श्रीकृष्णचन्द्र अपनी बुद्धिसे जरासन्धको मरवा करकेही धर्म्मनाथादि पांच पाण्डव धौम्य पृथा, कृष्णा और सुभद्राको बुलवाकर उनकी आज्ञा लेकर, धर्म्मनाथके दिये हुए मन समान वेगवान उसी रथ पर चारों ओर धुन मचाय अपने नगरको पधारे। हे भरतश्रेष्ठ! तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने कर्म्म करके न थकनेवाले श्रीकृष्णकी परिक्रमा दी, अनन्तर देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके उस काल महान् जय पाय और राजोंको ढाढ़स देय चले जाने पर उस कर्म्मसे पाण्डवोंके यशकी सुगन्ध और भी बढ़ी; उससे उन्होंने द्रौपदीको प्रीति बहुत बढ़ायी। हे भारत! उस समय, प्रजापालन और कीर्त्तियोगत्र धर्म्मार्थ कामयुक्त जो जो कर्म्म होने चाहिये थे, राजा युधिष्ठिरने वह सब करके दिखाये थे।

चौबीस अध्याय और जरासन्धवध
प्रकरण समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अर्ज्जुन श्रेष्ठ शरासन दो अक्षय तून, रथ, ध्वजा; और सभा पाय अति साहसी बन युधिष्ठिरसे बोले, कि महाराज! धनुष, अस्त्र, बहुत वीर्य्य, सहाय, दुर्ग, यश और सेना, यह सब मनमानी दुर्लभ वस्तु मेरे हाथ लगी हैं। इस दशामें भण्डार बढ़नाही मुझको उचित जान पडता है; सो हे नृपवर! मैं सब राजोंको करदाता बनाऊंगा, शुभ तिथि,शुभ नक्षत्र,शुभ मुहूर्त्तमें उत्तर दिशा जय करनेको यात्रा करूंगा। धनञ्जयका वचन सुनकर धर्म्मनाथ युधिष्ठिरने कोमल गम्भीर स्वरसे उनको उत्तर दिया, कि हे भरतवर पार्थ! तुम योग्य विप्रोंसे स्वस्ति कहलाय, शत्रुओंको शोक देने और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेको यात्रा करो. अवश्य अभीष्ट लाभ करोगे; सन्देह नहीं, कि तुम निश्चय विजय पावोगे। युधिष्ठिरकी इस बात पर अर्ज्जुनने बडी सेनासे घेरे जाय अग्निदेवके दिये हुए आश्चर्य्य कार्य्य करनेहारे दिव्य रथ पर चढ़कर विजय करनेको यात्रा की। पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन नकुल और सहदेव यहभी सब धर्म्मनाथके सत्कार सहित सेनाके साथ निकले। हे महाराज! इन्द्रनन्दन अर्ज्जुनने उत्तर दिशा, भीमने पूर्व्व दिशा सहदेवने दक्षिण दिशा और अस्त्रके जानकार नकुलने पश्चिम दिशाको जय किया। इधर प्रभावी धर्म्मनाथ युधिष्ठिर खाण्डवप्रस्थमें मित्रोंसे घेरे जाय परम सौभाग्य भोगने लगे।

पचीस अध्याय समाप्त।

श्रीजनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन्! मेरे पुरुषोंकी दिग्विजयका वृत्तान्त विस्तार-पूर्व्वक कहिं; क्योंकि उनका महान चरित्र सुन सुनके मेरी तृप्ति होतीही नहीं है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवोंने एकही समयमें इस धरतीको जीत लिया था, सो पहिले धनञ्जयकी विजयका वृत्तान्त आपसे कहता हूं।

महाभुज धनञ्जयने पहिले कुलिन्ददेशके भूपोंको अल्प चेष्टासे अपना वशीभूत किया, पीछे आनर्त्त,कालकूट,और कुलिन्दोंको जयकर

भूनाथ भूमण्डलकी सेना सहित पराजित किया। हे महाराज! शत्रुतापन सव्यसाची उस भूमण्डलसे मिलके शाकलद्वीप और पृथ्वीनाथ प्रतिविन्ध्यको जीत लिया। सातद्वीपोंमेंसे शाकल द्वीपमें जितने नरनाथ राज्य करते हैं, सेना सहित उनसे अर्जुनकी बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुनने उन बड़े चापधारियोंको भी परास्त किया और उन सबोंसे मिलके प्रागज्योतिषदेश पर चढ़नेको दौड़े। हे पृथ्वीनाथ! उस देशमें भगदत्त नामक प्रचण्ड राजा था। उसके संग अर्जुनका अति घोर युद्ध हुआ। प्राग्ज्योतिषनाथ भगदत्त किरात, चीन और सागर तीरके दूसरे अनूप-देशवासी अगणित योधोंसे मिले थे। वह नरनाथ आठ दिन लड़नेके पीछे युद्धमें न थकनेवाले धनञ्जयसे हंसते हुए यह बोले, कि हे महाभुज, कौरवनन्दन! तुम पाकशासनके पुत्र हो, युद्धकी शोभा बढ़ाने वाले हो, अतएव ऐसा वीर्य्य प्रकाश करना तुम्हारेही योग्य है! हे तात! मैं महेन्द्रका सखा हूं और युद्धमें भी उनसे कम नहीं हूं, तिसपरभी युद्धमें तुम्हारे सामने स्थिर बना नहीं रह सका। हे महाभुज पाण्डुव! अब तुम क्या चाहते हो, कहो, मैं तुम्हारा क्या करूं। हे बेटा! तुम जो कहोगे, मैं अवश्य ही वह पूरा करूंगा।

अर्जुन बोले, कि कुरुओंमें सबसे प्रधान धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, धर्म्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञकारी हैं; मैं यही चाहता हूं, कि उनको साम्राज्य मिले, सो आप उनको कर देवें। आप मेरे पिताके सखा, विशेष मुझ पर प्रसन्न हो रहे हैं, सो आपको मैं आज्ञा कर नहीं सकता, आप प्रीति पूर्व्वक देवें। भगदत्त बोले, कि हे कुन्तीनन्दन! तुम मेरे जैसी प्रीतिके पात्र हो, राजा युधिष्ठिरभी वैसे हैं, सो मैं अवश्यही यह सब करूंगा; इसके उपरान्त, कहो, तुम्हारा और क्या करना होगा।

छब्बीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, भगदत्तकी वह बात सुनके धनञ्जयने उत्तर दिया, कि आपके लिये इतनाही मानना बहुत है। फिर परश्रेष्ठ महाभुज धनञ्जय इस प्रकार प्रागज्योतिषको जीत कर उसके औरभी उत्तरको पधारे और अन्तर्गिरि बहिर्गिरि, उपगिरि, सब जय कर ली। हे महाराज! उन्होंने सब पर्व्वत और वहांके भूपोंको हराय वशमें लाय और प्रेमी बनाय सबके निकटसे धन संग्रह कर गंभीर मृदङ्ग समान ध्वान करनेवाले रथके पहियोंकी आहट और गजोंके गर्ज्जनसे धरतीको कम्पाय उनसब नरनाथोंके साथ उलूकवासी बृहन्तके पास जाके दर्शन दिया। तब बृहन्त चतुरंगिणी सेना सहित उस नगरसे निकलकर अर्जुनसे लड़ने लगा। धनञ्जय और बृहन्तमें बड़ी कड़ी लड़ाई हुई। पर अन्तमें बृहन्तसे पाण्डवका विक्रम सहा नहीं गया। वह कठोर पर्व्वतनाथ कुन्तीपुत्रको बहुत असह्य जानके सब प्रकारके धन सहित उनके निकट आये। महाराज! राजा उलूकको राज्यमें बैठाय अर्जुन उसके साथ पधारे और स्वल्पकालहीमें सेनाविन्दुको राज्यसे च्युत किया। उसके पीछे वह मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सकुल और उत्तर उलूक देशों और वहां के राजोंको अपने वशमें लाये। हे महाराज! धर्म्मनाथके शासनसे प्रभावी अति तेजस्वी किरीटिने उस ठौरमें वास करकेही सेनाओंसे उन पांच राजोंको परास्त किया। उन्होंने सेनाविन्दुकी राजधानी देवप्रस्थमें पहुंचकर चतुरङ्गी बल सहित वहां डेरा बनाया था। अब उन पराजित राजोंसे घेरे जाय पुरुवंशी नरनाथ

गुरुप्रवर विश्वगश्व पर युद्धयात्रा की और पर्व्वत परके महारथी शूरवीरोंको रणमें हराय सेना द्वारा उक्त कौरवकी रखी राजधानीको जीत लिया। विश्वगश्वकी ओर पर्व्वत परके लुटेरोंको युद्धमें पूरा परास्त कर क्षत्रियश्रेष्ठ पाण्डुनन्दनने उत्सवसङ्केत नामक सात म्लेच्छ जातियोंको जय किया, आगे काश्मीर देशके क्षत्रिय वीरोंकी और दश छोटे छोटे राजोंके सहित नरनाथ लोहितको परास्त किया। हे महाराज! अनन्तर त्रिगर्त्त, दारुक, कोकनद आदि नाना देशी अनेक क्षत्रियवर्ग सब प्रकार कुन्तीपुत्रके वशमें आगये, तिसके पीछे कुरुनन्दनने सुन्दर अभिसारी नगरी जय कर ली और उरगावासी रोचमानकोभी युद्धमें परास्त किया। तिसके अनन्तर इन्द्रकुमार किरीटिने युद्धमें विचित्र मनोहर अस्त्रोंसे रक्षित सिंहपुरको बलसे छिन्नभिन्न डाला; उसके पश्चात् सब सेनाके साथ सुह्म और सुमालोंको मथन कर डाला। आगे बड़ा विक्रम दर्शाय बड़ कड़ी लड़ाई लड़ते हुए कुटिल बाह्लीकोंको वशमें लाय और प्रधान प्रधान सेनाके साथ लेके दरद और काम्बोजोंको भी जय किया। महाराज! सब लुटेरे पर्व्वतके उत्तर भाग आश्रय किये हुए थे और जो वनमें बसते थे, प्रभावी फालगुणने उन सबोंको परास्त किया। लोह, पश्चिम, काम्बोज और उत्तर ऋषिक यह सब एकत्र मिले थे; इन्द्रनन्दनने उन्हेंभी जीत लिया। ऋषिकोंके साथ भी उनकी बड़ी भारी लड़ाई हुई। बृहस्पतिकी पत्नी तारका जिस युद्धमें नाशका हेतु बनी थी, तिसके सदृश पार्थ और ऋषिकोंमें गहरी लड़ाई मची थी। हे महाराज! पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने तब ऋषिकोंको युद्धस्थलमें जयकर उनसे शुकोदरके समान पीले आठ घोड़े करमें ले लिये और उत्तर तथा पश्चिम देशमें उपजे मयूरके समान वर्णयुक्त वेगवान और तेज दूसरे घोड़ोंकोभी कर लिया। अनन्तर उन्होंने युद्धमें निष्कुट गिरि और हिमाचलको परास्त-कर श्वेतपर्व्वतमें पहुंचके डेरा किया।

सताइस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डुश्रेष्ठ महावीर अर्जुनने श्वेतगिरिको पीछे छोड़के क्षत्रिय क्षयकारी बड़ी लड़ाई लड़ते हुए किन्नरोंकी वासभूमि द्रुमपुत्रसे रक्षित किम्पुरुषवर्षको परास्तकर अपने अधीन किया। उस देशको जयकर इन्द्रकुमार गुह्यकोंसे रक्षित हाटक नामक देशमें बिना घबराये जा पहुंचे। सान्त्व द्वारा गुह्यकोंको जीतके उन्होंने अच्छे मानससरोवर और ऋषिकुल्याओंको देखा। अनन्तर प्रभावी कुरुनन्दन किरिटिने मानस सरोवरके निकट पाय हाटकोंकी चार ओर गन्धर्व्वोंकी रखवारोके देशोंकोभी परास्त किया। वहां उन्होंने गन्धर्व्व नगरसे तित्तीर, कल्माष और मण्डूक नामक अगणित अच्छे अच्छे घोड़ोंका कर लाभ किया। वासवनन्दन सव्यसाचीने अन्तमें उत्तर हरिवर्षके निकट पहुंचकर उस देशको जय करना चाहा। उस स्थानमें अति वीर्य्यवन्त बहुत देहधारी, महाबली द्वारपाल उनके निकट आय प्रसन्नचित्तसे यह बोला, कि हे पृथापुत्र! तुम कदापि इस पुरको जय नहीं कर सकोगे, सो हे अच्युत! मङ्गल चाहो तो यहांसे लौट जाओ, यहां तकही तुम्हारे लिये बहुत है। मनुष्य होकर जो पुरुष इस नगरमें घुसता है वह निश्चयही मारा जाता है। हे वीर अर्जुन! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तुमको बड़ी विजय लाभ हुई है, हालमें यहां और कुछभी जीतनेके योग्य दीख नहीं पड़ता, क्योंकि यह देश उत्तर कुरु है, यहां युद्धकी चाहही नहीं है। हे कुन्ती-नन्दन! यहां घुसनेसेभी तुम कुछ देख नहीं

पाओगे, क्योंकि मनुष्यकी देह रहते यहांकी किसी पदार्थकी देखनेकी सामर्थ नहीं है। हे पुरुषश्रेष्ठ, भारत! पर यदि यहां और कार्य्य किया चाहो, तो कहो, तुम्हारी बातसे हम अवश्यही पूरा कर देंगे। हे महाराज! तब अर्ज्जुन कुछ हंसकर उनसे बोले, कि मैं धीमान धर्म्मनाथका साम्राज्य चाहता हूं, तुम्हारा यह देश यदि ऐसा हो, कि मानव लोग नहीं जासक्ते हैं, तो मैं इसके भीतर जाना नहीं चाहता, तुम युधिष्ठिरकी कुछ वस्तु करमें दो। अनन्तर उन्होंने दिव्य चीर, दिव्य आभरण, दिव्य क्षौम और दिव्य मृगछाल सब करकी भांति उनको दिये। महाराज! उन पुरुष-व्याघ्र वीरवीर अर्ज्जुनने इस प्रकार क्षत्रियोंसे अगणित संग्राम कर उत्तर दिशाको जीता था। वह उन सब राजोंको परास्त और अधीन करके सबोंसे बहुविध धन रत्न और तित्तिरि, कल्माष, शुकपक्षवत और मयूर सदृश, नाना पवनके समान चलनेवाले घोड़े लेके चतुरङ्गिणी सेनासे घेरे जाय फिर पुरुषश्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थमें लौट आये और वह धन वाहन सब धर्म्मनाथके आगे धर उनकी आज्ञा लेकर अपने मन्दिरमें गये।

अठाइस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जिस समय अर्ज्जुनने विजयके लिये यात्रा की थी, उस समय शत्रुशोक-बढ़ानेवाले, वीर्य्यवन्त, प्रतापी, भरतशार्द्दूल भीमसेनभी धर्म्मनाथकी आज्ञा लेकर परराज्यमथने-हारे दलबल साथो, घोड़े, रथादिसहित पूर्व्व दिशाको पधारे थे। उन प्रभावी नरश्रेष्ठ पाण्डवने पहिले पञ्चालोंके नगरमें जाय बहुविध उपायोंसे उन्हें समझाय बुझाय अल्पकालमें गण्डक और विदेहोंको परास्त किया। उस स्थानमें राजा दशार्ण सुधर्म्माने भीमसेनके साथ रोएं खड़े करनेवाली बड़ी लड़ाई की थी। बड़े पराक्रमी भीमसेनने अति बलवन्त सुधर्म्माकी वह लीला देखकर उनको प्रधान सेनापतिके पद पर बैठाया। अनन्तर वह बड़ी सेना सहित मानो धरतीको कंपाते हुए पूर्व्व दिशाको ओर भो आगे चले। हे महाराज! वीरश्रेष्ठ, वीरवर वृकोदरने अश्वमेधनाथ रोचमानको साथियों समेत युद्धमें परास्त किया। उसको जयकर महावीर कुरुनन्दनने रूतप चेष्टाहीसे पूर्व्वदेशको जय किया। अनन्तर दक्षिण देशमें बड़े फैले पलिन्दी और सुमित्रको वशीभूत किया। हे जनमेजय! इसके पश्चात् भीम धर्म्मनाथके शासनके अनुसार अति वीर्य्यवन्त शिशुपालके लिये चले। शत्रुदमन चेदिपतिने भो पाण्डवका वह अभिप्राय जान नगरसे निकल उनको सत्कार सहित ग्रहण किया। महाराज! तब वह कुरुश्रेष्ठ और चेदिश्रेष्ठ दोनों मिलजुलकर दोनों कुलोंके कुशलक्षेम पूछने लगे। हे नरवर! अनन्तर चेदिनाथ अपने राज्यका वृत्तान्त कहके हंसते हुए भीमसे बोले कि हे अनघ! तुम क्यों उत्साह दिखा रहे हो? तब भीमने उनसे धर्म्मनाथका अभिप्राय प्रगट किया। नरनाथ शिशुपालनेभी उनका आदर सत्कार कर वैसाही अनुष्ठान किया। हे महाराज! अनन्तर भीम वहां तेरह रात बसकर शिशुपालसे सत्कृत होके बलवाहन सहित पधारे।

उनतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शत्रुदमन वृकोदरने कुमारराज्यमें श्रेणीमानको और कोशलनाथ बृहद्बलको जय किया। अयोध्यामें महाबली धर्म्मज्ञ दीर्घयज्ञको स्वल्प युद्धसे परास्त किया; इसके पश्चात् उन प्रभावी पाण्डवश्रेष्ठने गोपाल-कच्छ, उत्तर कोसल और मल्लोंके अधीश पार्थिवकोभी परास्त किया।

इसके अनन्तर हिमालयके किनारे पहुंचके अल्पकालमें उन्होंने सम्पूर्ण जलोद्भव देशको अपना अधीन किया। भरतश्रेष्ठ बृकोदर इस प्रकार अनेक देश जय करने लगे। बलीवर महावीर्य्यवन्त भीम पराक्रमी महाभुज पाण्डुनन्दन भीमसेनने बलसे भल्लाट देश और उसके निकटके शुक्तिमत पर्व्वतको परास्त किया। पीछे युद्धमें मुह मोड़े काशीपति सुवाहुको वशीभूत किया। इसके पश्चात् युद्धमें भिड़े सुपार्श्वदेशके राजपति क्राथको बलसे परास्त किया। इसके पीछे मत्स्यदेशवासी और उपद्रववर्ज्जित निडर महाबली मलदोंको पराजय कर सब पशुभूमि जीत ली और वहां से पलटकर पृथ्वीनाथ मदधार और सोमधेओंको जयकर उत्तर दिशाको चले। बलवान कुन्तीपुत्रने वहां बल प्रगटकर वत्स्य भूमि पर अधिकार जमाया और भर्गोंके अधिपति, निषादनाथ और मणिमत आदि अगणित भूपोंको परास्त करने लगे। तब उन्होंने अति अल्प चेष्टासे भगवान पर्व्वत और दक्षिण मल्लोंको शीघ्रही जीत लिया। शर्म्मक और वर्म्मकोंको ढाढ़स देकर जय किया। विदेहदेशनाथ जगत्पति राजा जनकको अति अल्पयुद्धसे परास्त किया और शक और वर्व्वरोंको छलसे अधीन बनाया। वीर्य्यवन्त-पाण्डनन्दनने विदेह देशमें रहतेही रहते इन्द्र पर्व्वतके निकटके सात भूपोंको परास्त किया। आगे स्वपक्षी होने पर सुह्म प्रसुह्मोंको युद्धमें जयकर मागधोंकी ओर चले। वहां दण्ड, दण्डधार और दूसरे पृथ्वीनाथोंको जयकर गिरिव्रजमें जा पहुंचे और जरासन्धनन्दन सहदेवको समझाय बुझाय और कर देना स्वीकार कराय सबोंको सङ्ग लेके कर्ण पर चढ़ दौड़े। हे भारत! पाण्डववर बृकोदरने चतुरङ्ग बलके भारसे मानो धरतीको कंपाते हुए शत्रुनाशी कर्णसे अपार युद्ध किया और उनको लड़ाईमें जीतकर और वशमें लाय पर्व्वतवासी राजोंको परास्त किया। महाराज! अनन्तर उन्होंने मोदागिरिके अति बली राजाको भुजवीर्य्यसे गहरी लड़ाईमें नष्ट किया। आगे पुण्ड्रनाथ महाबली वासुदेव और कौशिकी कच्छवासी राजा महौजा तेज-पराक्रमी और बली इन दो वीरोंको युद्धमें जीत कर राजा वङ्ग पर दौड़े और पृथ्वीनाथ समुद्रसेन, चन्द्र-सेन ताम्रलिप्त कर्व्वटाधिप और सुह्माधिप तथा पहाड़ी राजोंको जय कर सब म्लेच्छोंको भी परास्त किया।

महाबली पवननन्दन इस प्रकार सब देश जयकर और सर्व्वत्रसे धन संग्रह कर लौहित्य देशमें जा पहुंचे और सागरतीर आदि जल प्रधान देशवासी सब म्लेच्छ नरेशोंको भांति भांतिके रत्न, चन्दन, अगुरु, चीर कम्बल मणि, सोना, चांदी, विद्रुम आदि बहुमूल्य वस्तुओंका कर देनेको वाध्य किया। म्लेच्छ नाथोंने उसकाल कोटि कोटि बहुत धन वर्षाय महात्मा पाण्डुनन्दनको ढंप लिया था। भीम पराक्रमी भीमसेनने तब इन्द्रप्रस्थमें आय वह सब धन धर्म्मनाथको दे दिया।

तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! सह-देव भी धर्म्मनाथका आदर पाय भीमार्ज्जुनके निकलनेके कालमेंही बड़ी भारीसेना सहित दक्षिण दिशाको पधारे थे। उस प्रभावी बली कुरुवीरने पहिले शूरसेनोंको सम्पूर्ण रूपसे परास्त कर बल पूर्व्वक मत्स्यनाथको वशीभूत किया। आगे अधिराजधिप महाबली दन्त-वक्रको जयकर और करदाता बनाय उसको उसके राज्यमें स्थापित किया। आगे उन्होंने नरनाथ राजकुमार और सुमित्रको वशमें लाय पश्चिमी मत्स्यराज्य और पटच्चरो देश जय किये। निषाद भूमि, पर्व्वत श्रेष्ठ गोशृङ्ग और

पृथ्वीनाथ श्रेणिमानको बलपूर्व्वक जय किया और नवराज्य जीतकर कुन्ती भोज पर चढ़ दौड़े। कुन्ती भोजने प्रीतिसे उनका शासन ले लिया। हे भारत! अनन्तर सहदेव चर्म्मण्वती नदीके तटपर जम्भक राजकुमारसे जा भिटे। पहिलेकी शत्रुताके कारण वासुदेवने उस नृप-नन्दनको परास्त किया था। वह राजपुत्र सहदेवसे युद्धमें भिड़ गया, अति बली सहदेव उसको जय कर दक्षिण दिशाको चले। वहां सेक और अपरसेकोंको परास्त कर और उनसे बहुविध रत्नोंका कर लेकर उन्होंने उन्होंके संग नर्म्मदाके निकटके देशोंकी यात्रा की। प्रतापी माद्रीपुत्र वहां अनेक सेनाओंसे घेरे अवन्ती देशके विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरोंको युद्धमें हराय उनसे रत्न संग्रह कर भोजकटपुरको पधारे। हे महाराज! वहां कठोर राजा भीष्मकसे दो दिन लड़ाई हुई; अन्तमें सहदेवने उन्हे जयकर कोशलनाथ वेणातटेश कान्तारक वर्ग और पूर्व्व कोशलके नरेशोंको युद्धमें परास्त किया। आगे नाटकेय और हेरम्बोंको युद्धमें हराय बलसे सुञ्जग्राम अधिकार किया तिसके पश्चात् नाचीन और अर्ब्बुद नरेशोंको तथा उस खण्डवाले सब वनैले भूपोंको परास्त कर नरनाथ वातााधपको वशमें लाये। अनन्तर पुलिन्दोंको लड़ाईमें जीतके दक्षिण दिशाको ओर आगे बढ़े। नकुलके अनुज महाभुज सहदेव पाण्डवनाथके साथ एक दिन लड़ कर उसे हराय दक्षिण मार्गमें पधारे। वहां लोकप्रसिद्ध किष्किन्धा नाम कन्दराके निकट जाय वह बन्दरनाथ मैन्द और द्विविदके साथ सप्ताह भर लड़े, पर तिसपरभी उन्हे जय नहीं कर सके; अनन्तर उन दो बड़े बन्दरोंने सहदेव पर प्रसन्न होके प्रसन्न हृदयसे प्रीतिपूर्व्वक उनसे यह कहा, कि हे पाण्डवशार्दूल! तुम सब भांतिके रत्न ले जाओ, धीमान धर्म्मनाथका कार्य्य विना विघ्न पूरा होवे। अनन्तर शत्रुवीरनाशी प्रतापी पाण्डुनन्दन नरश्रेष्ठ सहदेव रत्नोंको लेकर माहिष्मती नगरीमें जाय वहां राजा नीलसे लड़ने लगे। उनका वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ, तिसमें अनेक सेना नष्ट हुई और अपने प्राणकी शङ्का हुई, क्योंकि भगवान हुताशन राजा नीलकी सहायता कर रहे थे। इस लिये सहदेवकी सेनामें उस काल घोड़े, रथ, हाथी, पुरुष और कवच चमकते हुए दीख पड़ने लगे। हे जनमेजय! कुरुनन्दन सहदेव तिससे बहुत घबराये, उस विषयमें क्या उपाय करना चाहिये, कुछ समझके निश्चय नहीं कर सके।

जनमेजय बोले, कि हे विप्रवर! सहदेव यज्ञके लिये लड़ रहे थे; पर भगवान अग्निने क्यों तिस पर शत्रुता की? वैशम्पायनजी बोले, कि ऐसी कहावत है, कि पहिले माहिष्मतीवासी भगवान हुताशन परायी स्त्रीके अभिलाषी करके समझे जाते थे। राजा नीलकी एक अति सुन्दरी कुमारी थी, वह अग्निहोत्रके निकट सदा बैठी रहती थी। उसके दो सुन्दर होठोंसे निकली पवन अग्निको जबतक नहीं पहुंचती थी तब तक पंखी डोलानेसे भी जल नहीं उठते थे; तिससे राजा नील और दूसरोंने निश्चय कर लिया, कि उस पर अग्निका मन चला है। अनन्तर ब्राह्मणके स्वरूपमें मनमाने रमण की इच्छाकर उन्होंने उस सुन्दरी पद्मनेत्रा कन्या पर मन चलाया। परन्तु धार्म्मिक राजा नीलने उनको शास्त्रके अनुसार शासन किया। भगवान् हव्यवाहन तिससे क्रोधके मारे जल उठे। उनको देखकर राजाने अचम्भेमें होके धरतीको ओर सिर झुकाय प्रणाम किया, आगे उचित कालमें उसी प्रकार सिर झुकाय उन विप्र रूपी अग्निको कन्यादान किया। अभीष्ट सिद्ध करनेमें सबके अगुये भगवान अग्नि राजा नीलको

वह कन्या लेके उक्त नरनाथ पर प्रसन्न हुए और उन्हें वर मांगनेको कहा। पृथ्वीनाथ राजा नीलनेभी यह वर मांग लिया, कि मेरी सेनाको कभो भय न हो। महाराज! तभीसे वह वृत्तान्त न जानके जो कोई भूप बलपूर्व्वक उस नगरीको जय किया चाहते थे, वे अग्निसे जल मरते थे; हे कुरुवंशि! उस माहिष्मती पुरीमें उसकाल अबलाओंको भी कोई स्वेच्छा से ले नहीं सकता था, क्योंकि स्त्रियोंके होने जानेके बिषयमें अग्निने वर दिया था, तिससे वे स्वैरिणी बनके मनमाना वहां विचरा करती थीं। हे भरतराज! तभी से राज-गणभी अग्निके भयसे उस पुरीको त्याग देते थे, पर धर्म्मात्मा सहदेव अपनी सेनाको अग्निसे घेरा और भय खाया देखने परभी अचलकी भांति स्थिर बने रहे। वह शुचि होय आचमन-पूर्व्वक उसकाल इस प्रकार स्तुति पूरित सम्भाषण करने लगे।

सहदेव बोले,कि हे कृष्णवर्त्मन! तुमको नमस्कार, मेरा यह प्रारम्भ केवल तुम्हारेही लिये है। हे पावक! तुम यज्ञरूपी हो, सो तुम्ही देवोंके मुख हो। तुम पवित्र करते हो, इस लिये पावक और हव्यको वहन कराते हो। तुम्हारे लियेही वेदोंकी उत्पत्ति हुई है, इस लिये तुम जातवेदा हुए हो! हे विभावसो। तुम्ही चित्रभानु, सुरेश, अनल,स्वर्गद्वार छूनेवाले हुताशन, ज्वलन, शिखी, वैश्वानर, पिङ्गेश प्लवङ्ग,भूरितेजा,कुमारसू, भगवान, रुद्रगर्भ और हिरण्यकृत हो। हे अग्ने! तुम मुझको तेज दो पवन प्राण देवें, पृथ्वी बल दें और जल सकल मङ्गल करें। हे जलोत्पादक महाभाग सुरेश्वर जातवेद अग्ने! तुम देवोंके मुख स्वरूप हो, सो मुझको सत्य ज्योतिसे पवित्र करो। देवता ऋषि ब्राह्मण और असुर सदा सुन्दर रूपसे जिन सब यज्ञोंमें हवन करते हैं, वहांकी सत्यज्योतिसे मुझको पवित्र करो। तुम धूमकेतु शिखी पापनाशी, वायुसे बने और सब प्राणियोंमें सर्व्वकाल ठहरे रहते हो; अब मुझको सत्यज्योतिसे पवित्र करो। हे भगवान अग्ने! मैंने शुचि होकर प्रसन्न चित्तसे तुम्हारी यह स्तुति की, अब मुझको तुष्टि, पुष्टि, स्तुति और प्रीति दो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जो ऐसा आग्नेय मन्त्र पढ़के प्रभु अग्निका हवन करते हैं, वह ऐश्वर्य्य युक्त और सदा दान्त होकर सर्व्व पापोंसे मुक्त होजाते हैं। हे भारत! पुरुषव्याघ्र माद्री कुमार सहदेव यह कहके, कि हे हव्यवाहन। यज्ञके विषयमें ऐसा विघ्न उत्पन्न करना तुमको नहीं चाहिये, धरातल पर कुशा बिछाय उन घबराये भय खाये सेनाओंके सामने अग्निके लिये बैठ गये। अग्नि जिस प्रकार महासमुद्रके तटको पार नहीं करते, वैसेही उनको लांघ नहीं सके। वह उन कुरुनन्दन नरदेव सहदेवके निकट जाय समझाय बुझाय धीरे धीरे यह बोले, कि हे कुरुकुलशोभन! उठो, मैं तुम्हारे और धर्म्मनाथके सब अभिप्रायोंको जानता हूं, केवल परीक्षाके लिये ऐसा किया है। हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन! इन राजा नीलके कुलमें जबतक वंशधर सन्तान बनी रहेगी तबतक मुझको इस पुरीकी रक्षा करनी पड़ेगी, पर तुम जो चाहते हो, वह भी मैं पूरा कर दूंगा। हे भरतश्रेष्ठ! तब सहदेवने प्रसन्नमनसे उठ कर शिरनाय हाथ जोड़ पावककी पूजा की। अनन्तर पावकके चले जाने पर पृथ्वीनाथ राजा नीलने उनकी आज्ञासे योधनाथ नरव्याघ्र सहदेवके निकट आकर सत्कार सहित उनकी पूजा की। विजयी माद्रपुत्र वह पूजा लेके उनको करदाता बनवाय दक्षिणकी ओर पधारे। उन धर्म्मात्मा महाभुज अपरिमित तेजवन्तने त्रैपुर राजाको वशमें लाय पौरवनाथको बलसे सताया। आगे कौशिकाचार्य्य सुराष्ट्राधिप आकृतिको

अति यत्नसे अपने वशमें ले आये और सुराष्ट्र राज्यही में रह करके भोजकटके महामात्र धीमान साक्षात् इन्द्रके सखा भीष्मक नाथ रुक्मीके निकट दूत भेजा, उसने भी वासुदेवजीको स्मरण कर तब पुत्र सहित प्रीति पूर्व्वक उनका शासन मान लिया; महातेजा महाबली योधपति सहदेव उनसे रत्न लेके फिर आगे चले। अनन्तर शूर्पारक तालाकट और दण्डकोंको हथेली तले लाय चुके। आगे सागरद्वीपवासी म्लेच्छ योनिसे उपजे नगरनाथगण विषादर्ग, पुरुषादलोग, कर्णप्रावरगण नरराक्षस योनि कालमुख वर्ग सब कोल गिरि, सुरभिपट्टन, ताम्रद्वीप, रामक पर्व्वत और तिमिङ्गल नरेशको वशमें लाय दूतोंसे वनवासी केरक नामक, एक पाद मनुष्य, सञ्जयन्ती नगरी और पाषण्ड और करहाटक देशको वशीभूत और करदाता बनाया। और भी उन्होंने पाण्ड्य, द्राविड़, उड्रकेरल, अन्ध्र, तालवन, कलिङ्ग, और उष्ट्रकेरलोंको और मनहरणी आटवी पुरी और यवनोंका नगर इन सबोंको दूतोंके द्वारा वशीभूत और करदायी बनाया। हे नरनाथ! अनन्तर शत्रुदमन, धीमान, धार्म्मिकवर माद्रवती-पुत्रने सागर-कुलमें पहुंचकर पुलस्त्यनन्दन महात्मा विभीषणके निकट प्रीत पूर्व्वक दूतोंको भेजा। उन्होंनेभी प्रीत-पूर्व्वक उनका शासन मान लिया। प्रभावी धीमान विभीषणने सहदेवके उस शासनको काल-याप्यही समझा, इस हेतु उनके निकट विविध रत्न, चन्दन और अगुरुकी लकड़ी दिव्य आभूषण, महामूल्य चीर और महाधन मणियोंको भेजवाया। इसके पीछे प्रतापी, धीमान सहदेव अपने राज्यको लौटे।

महाराज! भरतश्रेष्ठ शत्रुदमन सहदेव इस प्रकार दल प्रगट कर, समझाके और विजयके द्वारा पृथ्वीनाथोंको जीतके तथा करदाता बनाके मनोरथ सफल कर लौट आये और अपने उपार्ज्जित सब धन धर्म्मनाथके आगे धर कर परम सुखसे वसने लगे।

एकतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! अब नकुलकी विजय और कर्म्मोंको कथा सुनाता हूं। उन प्रभावी वीरवरने जैसे वासुदेवकी जीती हुई पश्चिम दिशाको जीता था वह सुनो। मतिमान नकुल बड़ी भारी सेना लेकर खाण्डवप्रस्थसे निकलकर पश्चिम दिशाको प्रचण्डसिंहनाद योधोंके गर्ज्जन और और रथोंके पहियोंकी घरघराहटसे धरातलको कंपाते चले। अनन्तर उन्होंने कार्त्तिकेयके प्रेमपात्र धनधान्यपूरे, गोधनभरे, अति ऐश्वर्य्ययुक्त रमणीय रोहितक पर्व्वत पैर चढ़ाई की। वहां शूरतायुक्त उन्मत्त मयूरकोंके साथ बड़ी लड़ाई हुई। इसके पीछे अति द्युतिमान पाण्डुनन्दनने सब मरुभूमि, बहुत धनधान्ययुक्त शैरीषक और राजर्षि आक्रोशको वशीभूत तथा महेत्थ देशको जय किया। आक्रोशके साथ उनकी बड़ी लड़ाई हुई थी। अनन्तर वह दशार्ण, शिवि त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्च कर्पट और माध्यमिक तथा वाटधान द्विजोंको जय कर आगेको पधारे। इसके पीछे फिर लौटकर पुष्करारण्यवासी उत्सवसंकेत नामक म्लेच्छोंको जय किया। सिन्धुकुलमें वसे महाबली ग्रामणीयगण, सरस्वती तटके शूद्र और आभीर, मत्स्य और पहाड़ी, पांचो नद, अमर पर्व्वत, उत्तरज्योतिष और दिव्य कट तथा द्वारपाल नगर यह सब उन्होंने बलसे वशीभूत किये। और रामठहारहूण तथा पश्चिम देशके सब दूसरे नरनाथोंको शुद्ध शासनही से वशमें कर चुके। हे भारत! अति द्युतिमान योधपति नकुलने वहां रहतेही वासुदेवजीके निकट दूत भेजा। उन्होंने यादवोंके साथ उनका शासन मान लिया। इसके अनन्तर बलवन्त माद्री

कुमारने मद्रोंकी राजधानी शाकलमें जाय अपने मामा शल्यको प्रीतिपूर्व्वक वशीभूत किया। हे महाराज! उन नरनाथने जब सत्कारयोग्य योधपति नकुलका उचित सत्कार किया, तब वह बहुत रत्न लेकर आगे चले। पीछे सागरगर्भके अति कठोर म्लेच्छों और पह्लव, वर्व्वर, किरात यवन और शकोंको वशीभूत किया। विचित्र उपायोंके जानकर कुरुवर नकुल नरेशोंको वशीभूत कर और बहु-रत्न बटोरके अन्तको लौट आये। महाराज! दश सहस्र ऊंट अति कष्टसे उन महात्माके धनको लेकर चल सके थे। भरतवर श्रीमान माद्रीपुत्र नकुलने इस प्रकारसे वासुदेवजीके जय किये और वरुणसे पाले जाते हुए पश्चिम खण्डको विजयकर इन्द्रप्रस्थमें स्थित वीरवर युधिष्ठिरके समीप आकर उनके सामने सब धन धर दिया।

बत्तीस अध्याय और दिग्विजय
प्रकरण समाप्त।

राजसूय प्रकरण।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मनाथ युधिष्ठिरको प्रजारक्षा, सत्य पालन और शत्रुनाशके लिये प्रजा अपने अपने धन्धेमें लगी रही। यथा योग्य कर लेना और धर्म्मके अनुसार प्रजाशासन करनेसे बादल प्रचुर जल वर्षाने लगा, सो जनपदभी बढ़ उठे। राजाके पुण्य-कर्म्मोंके प्रभावसे राज्यके सर्व्वप्रकार कार्य्य भले प्रकार निर्व्वाह होने लगे; विशेष पशु-पालन, खेती और वाणिज्य, इनकी पूरी उन्नति हुई। महाराज! सदा धर्म्मध्यानी राजा युधिष्ठिरके राज्यकालमें लुटेरे और ठगभी एक दूसरेसे झूठी बात नहीं बोलते थे और राजाके प्यारे जनोंके मुखसे भी झूठी बोली नहीं निकलती थी। उस कालमें वृष्टिकी कमी, बहुत वृष्टि, रोगभय, अकालमृत्यु यह सब नहीं थी। सब भूपवर्ग प्रियकार्य्य करना और उपासना अथवा स्वाभाविक उपहार देनेहीके लिये राजाके समीप आते थे, दूसरे कार्य्य अर्थात् जयादिके अभिप्रायसे नहीं। धर्म्मानुसार धनार्ज्जन द्वारा उनके विशाल भण्डारकी ऐसी वृद्धि हुई थी, कि सैकड़ों वर्षोंमें भी उसके चुक जानेकी सम्भावना नहीं थी।

कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथयुधिष्ठिरने अपने धन और धान्यादिका परिमाण विशेष जानके यज्ञ करनेका प्रण ठाना। उनके मित्रवर्गभी सब अलग अलग और एकत्र होकर बोले, कि "विभो! आपके यज्ञ करनेका योग्य काल आ पहुंचा है, सो अब उसका प्रबन्ध करें।" वे सब ऐसी कहा-सुनी करते थे, कि ऐसे समय श्रीकृष्णचन्द्र आ पहुंचे। वह धर्म्मज्ञ, नित्य, वेदात्मा, दर्शनके अविषयीभूत करके विज्ञोंके निश्चय किये स्थितिशीलोंके अगुये, जगकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण भूत भविष्यत तथा वर्त्तमानके नियन्ता, सब वृष्णियोंके प्राकार अर्थात् रखवारे, विपत्कालके अभय-दाता, शत्रुनाशी केशिसूदन, पुरुषवर केशव, धर्म्मनाथके लिये बहुविध धन रत्न लेकर वसुदेवको सेनापतिके पद पर बैठाय बहुबलसे घेरे जाय रथकी आहटसे परोत्तम खाण्डव-प्रस्थको बजाय वहां आजमे और पाण्डवोंके उस भरे पूरे अक्षय रत्न समुद्रके अपूर्ण भागको पूर्णकर शत्रुओंकी शोक देने लगे। सूर्य्य रहित खण्डमें सूर्य्य उगनेसे अथवा वायु रहित स्थानमें वायु बहनेसे वहांके लोग जैसे आनन्दित होते हैं, वैसेही श्रीकृष्णके शुभागमनसे भारत-पुरी अति आनन्दित हुई। पुरुषवर युधिष्ठिर अति आनन्दसे उनको गले लगाय और विधि-पूर्व्वक सत्कार कर अन्तमें सुखसे बैठे। कुशलक्षेम पूछके धौम्य द्वैपायन आदि ऋषिवर्ग और भीमार्ज्जुन तथा नकुल सहदेवसे

मिलकर उनको यह सम्भाषण किया। युधिष्ठिर बोले, कि हे देवकीनन्दन कृष्ण! केवल तुमसेही पूरी धरती मेरे वशमें बनी है और तुम्हारी कृपासे मैंने यह अपरिमित शूरता लाभ की है, सो हे यदुकुलतिलक, महाभुज, माधव! मैं तुम्हारे और अनुजोंके साथ मिलकर उस उपार्ज्जन किये हुए सब धनको हुताशन और ब्राह्मणोंके पीछे खर्चनेके लिये यज्ञ किया चाहता हूं। तुम खुले मनसे उसमें सम्मति दो. हे गोविन्द! उस विषयमें तुम अपनेको दीक्षित करो. क्योंकि तुम्हारे यज्ञ करनेसे मैं निष्पाप बनूंगा। अथवा हे विभो! इन भाइयों के सहित मुझको दीक्षित होनेकी आज्ञा दो। तुमसे आज्ञा पानेहीसे मैं अनुत्तम यज्ञका फलभागी हो सकूंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्ण चन्द्रने युधिष्ठिरके गुणोंका वर्णन कर उनको यह उत्तर दिया, कि हे राजशार्दूल! आपही सम्राट होनेके योग्य पात्र हैं, सो आपही महायज्ञ राजसूय, पूरा करें; आपके फल पानेसे हम कृतार्थ होंगे। मैं आपका मङ्गल साधनेमें सन्नद्ध हूं। आप मनमाने यज्ञका प्रबन्ध करें और मुझकोभी किसी कार्य्यमें नियुक्त करें। मैं आपकी सब आज्ञा पालूंगा। युधिष्ठिर बोले, कि हे हृषीकेश श्रीकृष्ण! मेरी इच्छा होतेही जब तुम आगये हो, तब मेरा सङ्कल्प भी सिद्ध होगया और सिद्धिलाभकाभी निश्चय हुआ है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णकी आज्ञा पाय युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित राजसूय यज्ञके साधनोंकी बटोरनेका प्रबन्ध किया। अनन्तर शत्रुदमन धर्म्मनाथने सहदेवको और मन्त्रियोंको आज्ञा दी, कि इस यज्ञमें ब्राह्मणोंने जिन जिन पदार्थोंको यज्ञके अङ्ग करके निश्चय किया है, तिसके अनुरूप उपकरण, माङ्गलिक वस्तु और धौम्यको आज्ञा की हुई यज्ञकी सामग्री यथाक्रमसे और यथायोग्य रीति पर तुरन्त लेते आओ; अर्ज्जुनके सारथि इन्द्रसेन विशोक और पुरु यह हमारी प्रिय कामनासे अन्नादि बटोरनेमें लगे रहें और रसगन्धयुक्त ऐसी काम्य वस्तु बनवावें. कि वे ब्राह्मणोंकी मनहरणी और प्रीतिदायिनी होवें। योधश्रेष्ठ सहदेवने धर्म्मनाथ युधिष्ठिरके इस आज्ञा-वचनको सुनतेही सब पूरा कर उनको समाचार दिया। हे महाराज! अनन्तर सत्यवतीनन्दन कृष्णद्वैपायनने साक्षात देवसदृश मूर्त्तिमान ब्राह्मणोंको ऋत्विकके कार्य्यमें नियुक्त किया और स्वयं उस यज्ञके ब्रह्म-कार्य्यमें दीक्षित हुए। धनञ्जय गोत्रके श्रेष्ठ सुसामा नामक ऋषि उद्गाता, ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य अध्वर्य्यु, वसुपत्र पल और धौम्य होता और उनके वेदवेदान्तदक्ष शिष्य और पुत्रवर्ग होत्र-गाता बने। उन्होंने स्वस्तिवाचन करके उक्त यज्ञके लिये उद्देश निर्द्देश अर्थात् सङ्कल्प करके उस विस्तृत यज्ञभूमिकी शास्त्रानुसार पूजा की। आगे शिल्पियोंने आज्ञा पाय वहां देवोंके मन्दिर समान सुगन्धित और लम्बे चौड़े गृह बना दिये। अनन्तर पुरुषवर राजश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने मन्त्री सहदेवको उसी क्षण आज्ञा की, कि तुम निमन्त्रणके लिये शीघ्र-चलनेवाले दूतोंको शीघ्र भेज दो। सहदेव तब राजाकी आज्ञा सुनके ऐसी आज्ञा दे करके, कि राज्यके सब ब्राह्मण, भूप और वैश्योंको निमन्त्रण करो, तथा शूद्रादिकोंभी लाओ, दूतोंको भेज दिया।

श्रीवैशम्पायन जो बोले, कि अनन्तर शीघ्रगामी दूतोंने आज्ञा पाय सहदेवके वाक्यानुसार सबको नेवता दिया और उनके अतिरिक्त क्या स्वजन क्या अन्यजन, ऐसे अनेक लोगोंको भी साथ लिवाय लाये। हे भारत! तिसके अनन्तर उन ब्राह्मणोंने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको राजसूयके लिये योग्य काल में दीक्षित किया। नरवर धर्म्मात्मा धर्म्मनाथ

दीक्षित होके और सहस्रों विप्रोंसे घेरे जाय भाइयों, ज्ञातियों, मित्रों अनेक दिशा-देशोंसे आये मनुष्यश्रेष्ठ क्षत्रियों तथा मन्त्रियोंके सहित मूर्त्तिमान धर्म्मकी भांति यज्ञस्थानमें गये। सर्व्व विद्याओंमें पण्डित वेदवेदाङ्गपारग ब्राह्मणगण नाना देशोंसे वहां आके एकत्रित होने लगे। सहस्रों शिल्पियोंने धर्म्मनाथकी आज्ञासे साथी समेत उन सब विप्रोंके अलग अलग वासगृह बना दिये। उन गृहोंमें बहुविध भोजनकी सामग्री और वस्त्रादि धरे थे और वसन्तादि सब ऋतुओंके कार्य्य विद्यमान थे। हे महाराज! ब्राह्मणगण भूपालसे सत्कृत होय वहां वस कर बहुभातिकी कथा कह सुनके और नटोंके नाचादिको देख कर काल बिताने लगे। भोजन और सम्भाषण करनेवाले उन सब प्रसन्नचित्त महात्मा विप्रोंका बड़ा कोलाहल वहां सदा सुन पड़ने लगा। वास्तव में वहां "दीयताम भुज्यताम" इस प्रकारका वार्त्ता शापही सदा कानोंमें पैठता था। हे भारत! धर्म्मनाथने उनको सैकड़ों सहस्रों गौ, शय्या, काञ्चन और नारी अलग अलग दीं। स्वर्गके शतक्रतुके समान पृथ्वीके अद्वितीय वीर महात्मा युधिष्ठिरका यज्ञ इसी प्रकार से प्रारम्भ हुआ। अनन्तर नरवर राजा युधिष्ठिरने भीष्म, द्रोण धृतराष्ट्र, विदुर, कृप और उन भाइयोंको जो उनके प्रेमी थे लिवाय लानेके लिये नकुलको हस्तिनापुरमें भेजा।

तेंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि समरविजयी पाण्डुनन्दन नकुलने हस्तिनानगरमें जाय भीष्म, धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य्य आदिको उचित सत्कार सहित निमन्त्रण किया। अनन्तर वे ब्राह्मणोंको आगे कर प्रीतिपूर्व्वक यज्ञ देखनेको चले। हे भरतश्रेष्ठ! यज्ञके जानकार दूसरे सैकड़ों क्षत्रियभी धर्म्मनाथके यज्ञकी बात सुनके उस यज्ञसभा और धर्म्मनाथको देखने की इच्छासे प्रसन्न मनसे बहुविध बहुमूल्य रत्न बटोरके नाना दिग्देशोंसे वहां आ पहुंचे। धृतराष्ट्र भीष्म महामति विदुर दुर्य्योधनादि सब भाई गान्धारनाथ सुबल, महाबल शकुनि, अचल, वृषक, महारथी कर्ण, बली शाल्य, महाबली बाह्लीक, सोमदत्त, कुरुवंशी भूरि, भूरिश्रवा शल, अश्वत्थामा, कृप, द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ, पुत्रसहित द्रुपद, पृथ्वीनाथ शल्य, सागरतटके जलप्रधान देशोंके सब म्लेच्छोंसमेत प्रागज्योतिषनाथ महारथी नरनाथ भगदत्त, पहाड़ी राजागण, राजा बृहद्बल, पौण्ड्रक वासुदेव, वङ्गाधिप, कलिङ्गनाथ, आकर्ष, कुन्तल, मालव देशीय भूपवर्ग, अन्धकगण, द्राविड़वर्ग, सिंहलगण, काश्मीरदेशीय भूतनाथ, तेजस्वी कुन्तीभोज, पृथ्वीनाथ गौरवाहन, बाह्लीक देशीय दूसरे शूरवीर भूप, दो पुत्रों सहित विराट, महाबली मावेल्ल, युद्धमें कठोर पुत्रसहित शिशुपाल और अनेक जनपदनाथ राजा और राजकुमार सब युधिष्ठिरके यज्ञमें आये। बलराम, अनिरुद्ध, कङ्क, सारण गद, प्रद्युम्न, शाम्ब, चारुदेष्ण, उल्मुक, निशठ, अङ्गावह और वृष्णिवंशी दूसरे वीर्य्यवान महारथीगण, सब आगये; यह सब और दूसरे मध्यदेशी अगणित राजगण युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञमें आये। हे महाराज! धर्म्मनाथकी आज्ञासे उनको बहुत खानेपीनेकी सामग्री सहित ताल और वृक्षोंसे सुहावने वासगृह दिये गये। धर्म्मनन्दनने स्वयं उन महात्मा नरेशोंकी पूजा की। आगे सत्कार पाय निर्द्दिष्ट किये हुए डेरोंमें जाटिके। वह डेरोंकी ठौर कैलाशकी चोटोसी सुहावनी, भांति भांतिकी सामग्रीसे मनहरणी, भलोबनी शुभ्रवरणी अति ऊंची अटारिसे सब दिशा बनी, सुवर्ण जाल पहिनी मणिकुट्टिमसे मोहिनी, सुखसे चढ़ने-योग्य सीढ़ियोंसे सुखदायनी, मूल्यवान चीर आसनोंसे सुहासिनी, मालाओंसे शोभाधारिणी

सुन्दर अगुरुगन्धसे मन भावती, हंस चन्द्रमासी श्वेतवरणी होने परभी योजन भर दूरीसे दर्शनीय लम्बे चौड़े, समान द्वारोंसे सुखदायिनी नाना भांतिकी सामग्री-धारिणी और अङ्गों पर बहुविध धातु जड़ने से हिमाचलकी चोटीसी मनमोहिनी बनीथी। आये हुए भूपोंने वहां विश्राम कर अन्तमें बहुत दक्षिणादाता अगणित मंत्रियोंके कर्त्ता धर्म्मनाथ युधिष्ठिरको देखा। महाराज! सम्पूर्ण पृथ्वीनाथ तथा महर्षि ब्राह्मणोंसे भरी पूरी वह सभा उस-कालमें अमरवृन्दसे सुहाती स्वर्गपीठकी भांति अति दीप्ति पाने लगी।

चौंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! अनन्तर युधिष्ठिर आगे बढ़कर दादा भीष्मजी और गुरु द्रोणाचार्य्यको प्रणामकर उनको और अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य दुर्य्योधन तथा विविंशतिसे यह बोले, कि इस यज्ञमें आप सब प्रकार मुझ पर कृपा दर्शावें। यहां जो मेरा बहुत धनसम्पद विद्यमान है, यह अपनाही जानें और सब परामर्श इच्छाके अनुसार मुझको दें। दीक्षित पाण्डवज्येष्ठने उनसे यह कहके अन्तको सबको यथायोग्य अधिकारमें नियुक्त किया। भक्ष्य भोज्यके अधिकारमें उन्होंने दुःशासनको नियुक्त किया; राजोंको पूजाका भार सञ्जय पर दिया; कर्त्तव्य पाला गया वा नहीं, इसकी पूछ-पांछमें महामति भीष्म और द्रोणाचार्य्य नियुक्त हुए; हिरण्य, सुवर्ण और रत्नोंकी रक्षा तथा दक्षिणा देनेका भार युधिष्ठिरने कृपाचार्य्य पर दिया और दूसरे पुरुषवरोंकोभी उन उन कार्य्योंमेंनियुक्त किया। वाह्लीक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त और जयद्रथ यह आदरपूर्व्वक लिवाये जाय स्वामीकी भांति विराजने लगे। सर्व्वधर्म्मोंके जानकार क्षत्ता विदुर व्ययकारी बने और दुर्योधन सब प्रकारके उपहार लेने पर रहे।

श्रीकृष्णचन्द्र सब लोगोंके जीवनाधार होने परभी श्रेष्ठ फल पानेकी इच्छासे ब्राह्मणोंके पांव धोनेमें स्वयं नियुक्त हुए।

सभा और धर्म्मनाथको देखनेके अभिलाषी बनके वहां किसीने सहस्र से अल्प उपहार नहीं दिया; सबोंने बहु धन रत्न देकर धर्म्मनाथको बढ़ाया था। राजगण इस अहंकारसे धन देने लगे, कि "कुरुनाथ युधिष्ठिर मेरेही धनसे यज्ञ निबटार लेवें।" महाराज! दर्शनार्थी देवोंके विमानोंका अगला भाग लगे, बहुबलयुक्त उत्तरकाल स्थायी सम्पूर्ण भवन इन्द्रादि लोकपालोंके विमान, ब्राह्मणोंके वासस्थान, भूपोंके लिये निर्म्मित नानारत्न जटित अति सम्पत्तसे सुशोभित विमान सदृश विचित्र दिव्य वासगृह और परम श्रीसम्पद सहित आये राजोंसे महात्मा कुन्तीकुमारकी वह सभा बहुत सुहावनी बनी। अनन्तर युधिष्ठिरने ऐश्वर्य्यमें वरुणजीके समान बनके बहुदक्षिणा सहित षडग्निसाध्य राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया और सब लोकोंको सम्पदयुक्त सर्व्व प्रकार काम्य वस्तु देकर परितृप्त किया। उस उत्सवमें जितना अन्न पका और जितनी खानेकी वस्तु बनी थी और जितने अगणित भोजन किये हुए जनोंमें वार्त्तालाप हुआ था और जितना रत्नोंका उपहार दिया गया था उसका हिसाब लग नहीं सकता। मन्त्र और प्रक्रियामें पण्डित महर्षियोंसे उस यज्ञलीलाके होने पर देवोंकी तृप्ति हुई। देवोंकी भांति ब्राह्मणभी उस यज्ञमें दक्षिणा अन्न और बहुत धन पाय प्रसन्न हुए और दूसरे वर्णोंके लोगभी तृप्त और परम हर्षित हुए।

पंचीस अध्याय और राजसूय प्रकरण समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यज्ञान्तके अभिषेकके दिन सत्कारपात्र महर्षि ब्राह्मणगण

भूपालोंके साथ अन्तर्व्वेदीमें गये। ब्रह्माके सामने देवर्षियोंके साथ एकत्रित अमरोंके सदृश नारद आदि महात्मा राजर्षियोंके साथ उस अन्तर्व्वेदीमें विराजकर अति शोभा पाने लगे। वे अति तेजस्वी ऋषिगण उसकालमें कर्म्मसे अवकाश पाय नाना भांतिका विचार करने लगे। बहुतेरे वहां आपसमें यह बकवाद करने लगे, कि "यह ऐसा होगा, नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता, यह अवश्यही ऐसा है, व्यर्थ होही नहीं सकता।" उसमेंसे कोई कोई शास्त्रनिश्चित तर्कसहित लघुसे गौरवका अर्थ और गुरुसे लघुका अर्थ सिद्ध करने लगे। बाजगण जैसे आकाशमें उड़ते समय आमिष झपटते हैं, वैसेही कोई कोई मेधावी जन दूसरोंके उदाहरण सहित अर्थको व्यर्थ करने लगे। सब भाष्योंके जानकारोंके वरिष्ठ कोई कोई महाव्रत ब्राह्मण विचारसे धर्म्मार्थ संयुक्त वचनोंको अलापते हुए रमणे लगे। महाराजा! वेदयुक्त देव द्विज महर्षियोंसे वह बड़ी फैली वेदी अमल आकाश मण्डल समान सुहाने लगी। युधिष्ठिरके भवनकी उस अन्तर्व्वेदीके निकट उस काल कोई शूद्र वा ब्रतवर्ज्जित जन विद्यमान नहीं था।

हे मनुष्यनाथ! देवर्षि नारद लक्ष्मीयुक्त धीमान धर्म्मनाथके यज्ञसे उपजी वह लक्ष्मी निहारके प्रसन्न हुए। अनन्तर क्षत्रिय कुलकी वह भीड़ देखकर सोचवश हुए और ब्रह्माके भवनमें अंशावतरणके विषयमें जिसकी चर्चा हुई थी पुरावृत्त कथाको स्मरण करने लगे। हे पुरुषश्रेष्ठ कुरुनन्दन! उस क्षत्रिय समाजको देवोंका समाज जान नारदने मनहीं-मनमें पद्मनेत्र हरिका स्मरण किया; सोचा, कि पहिले जिन्होंने देवोंको स्वयं यह आज्ञा दी थी कि "तुम मर्त्तलोकमें जन्म लेकर एक दूसरेको काटकर फिर अपने अपने लोकोंको सिधारोगे" उन अनजाने भूतेश शत्रुपुरजयी, और, शत्रुनाशी साक्षात प्रभु नारायणने अपनी प्रतिज्ञा पालनेको क्षत्रियकुलमें जन्म लिया है। जगप्रभु भगवान शम्भु,नारायणने सब देवोंको वह आज्ञा देके स्वयं यदुकुलमें जन्म लिया है। नक्षत्रोंमें तारानाथके समान वंशधर वरिष्ठ पुरुषोत्तम धरातल पर अन्धक और वृष्णियोंके वंशमें परम लक्ष्मी सहित विराजमान हुए हैं; इन्द्रादि सब देवगण जिनके बाहुबलकी उपसना करते हैं, अरिसंहारी वह हरि वर्त्तमानमें मनुष्यके समान प्रगट होते हैं। कैसे आश्चर्य्यकी बात है, कि यह इतने बलयुक्त क्षत्रियकुलको फिर मार लेंगे। धर्म्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ अति बुद्धिमान नारद यज्ञयाजी नारायण हरिको ईश्वर जानके ऐसो चिन्ता करते हुए धीमान धर्म्मनाथके उस यज्ञमें अति मानसे विराजे।

महाराज! अनन्तर भीष्मजीने धर्म्मनाथ युधिष्ठिरसे कहा, कि हे कुलतिलक युधिष्ठिर! राजोंको यथायोग्य पूजा करो, देखो आचार्य्य ऋत्विक स्नातक, सम्बन्धी, मित्र और नरेश यह छःपुरुष अर्घ पानेके योग्य पात्र हैं। पण्डित लोग कहते हैं, कि आकर वर्षभर एकत्र बसनेहोसे वे अर्घ पाते हैं। यह भूपवर्ग बहुदिन हमारे यहां आये हैं, सो इनमेंसे हरएकके लिये एक एक अर्घ एकत्रित करो। पर इनमें जो सबोंसे श्रेष्ठ हैं, उन्हीको पहिले दो। युधिष्ठिर बोले, कि हे कुरुनन्दन पितामह! मुझसे कहें, कि आप कौनसे असाधारण जनको पहिले अर्घ पानेके योग्य विचारते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शान्तनुकुमार वीर्य्यवन्त भीष्मजी बुद्धिसे निश्चय कर वृष्णिकुलसे उपजे श्रीकृष्णचन्द्रको भूमण्डल भरमें पहिले पूजा पानेके योग्य विचारके बोले, कि जैसे सब ज्योतिमालाओंमें आदित्य सबसे तेजोवन्त हैं, वैसेही इन राजोंमें श्रीकृष्णचन्द्र तेज,

बल और पराक्रमसे अति प्रकाशित दीख पड़ते हैं। सूर्य्यरहित देशमें सूर्य्य उगनेसे और वायुसे वर्जित स्थानमें वायु चलनेसे जैसा जान पड़ता है, श्रीकृष्णके आनेसे हमारा यह सभा-मन्दिर वैसेही प्रकाशित और प्रमुदित हुआ है। अनन्तर प्रतापी सहदेवने भीष्मजीको आज्ञा पाय विधि पूर्व्वक उन वृष्णिकुमारको प्रधान अर्घ दिया; श्रीकृष्णने शास्त्र-दर्शित कर्म्मसे उसे ले लिया, परन्तु वासुदेवकी वह पूजा महाभुज चेदिनाथ शिशुपालसे सही नहीं गयी; वह सभामें भीष्म और धर्म्मनाथको लाञ्छित कर श्रीकृष्णचन्द्रकी निन्दा करने लगा।

छत्तीस अध्याय समाप्त।

शिशुपाल बोले, कि हे कौरव! महात्मा महान् चितोंके यहां विद्यमान रहते वृष्णि-कुमार राजपूजा पा नहीं सकता। अजी युधिष्ठिर! तुमने तो स्वेच्छासे श्रीकृष्णकी पूजा की, पर यह व्यवहार पाण्डवयोग्य नहीं हुआ। अजी पाण्डवो! तुम बालक हो, कुछ जानते नहीं हो, धर्म्म बड़ा सूक्ष्म पदार्थ है, यह स्वल्पदर्शी नदी कुमारभी चेत खोचुके हैं। हे भीष्म! तुम्हारे समान धार्म्मिक जन अपनी ही प्रिय इच्छापर कार्य्य करें तो लोक-समाजमें साधुओंसे निन्दनीय बनते हैं। तुमने सब नरेशोंमें राजा नामके-अयोग्य दशार्हको जैसी पूजा की, वह क्योंकर वैसी पूजा पा सकता है? हे पुरुषवर! कृष्णको वृद्ध जानके यदि उसकी पूजा की हो, तो वृद्ध वसुदेवके विद्यमान रहते उसका बेटा क्योंकर पूजनीय हुआ! अथवा यदि प्रिय चाहनेवाला वा सहचर करके वसुदेवके बेटेकी पूजा की हो, तो द्रुपदके उपस्थित रहते माधव क्योंकर पूजा गया? अथवा, हे कुरुनन्दन! कृष्णको आचार्य्य जानके यदि पूजा हो, तो द्रोणके विद्यमान रहते वृष्णिकुमारको क्यों पूजा? अथवा ऋत्विकमानके कृष्णकी पूजा की हो, तो कृष्णद्वैपायनजीके उपस्थित रहते तुमने क्या जानकर कृष्णको पूजा? हे महा-राज! स्वेच्छासे मरनेवाले पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके विद्यमान रहते तुमने कृष्णको क्योंकर पूजा? हे कुरुनन्दन! सर्व्वशास्त्रोंमें पण्डित वीरवर अश्वत्थामाके उपस्थित रहते तुमने कृष्णको क्योंकर पूजा? पुरुषश्रेष्ठ नरनाथ दुर्य्योधन और भरताचार्य्य कृपके उपस्थित रहते तुमने कृष्णको क्योंकर पूजा की? किम्पुरुषाचार्य्य द्रुमको छोड़के तुमने क्या समझके कृष्णको पूजा? कठोर भीष्मकनाथ सुलक्षण नरेश पाण्ड्य नृपवर रुक्मी, एकलव्य और मद्रनाथ शल्यके उपस्थित रहते तुमने क्योंकर कृष्णकी पूजा करी? और भी इन महाबली कर्णको जो सब भूपालोंमें बलके लिये गौरववान और ब्राह्मण जामदग्न्यके प्यारे शिष्य हैं, हे भारत! जिन्होंने आत्मबलके आसरेसे सब राजोंको जय किया है, उनको छोड़के तुमने क्योंकर कृष्णको पूजा? हे कुरुशार्दूल! यह वासुदेव न तो ऋत्विक, न आचार्य्य, न राजा, कुछभी तो नहीं है, फिर तुम्हारा इसे पूजना केवल प्रिय कामनाके अतिरिक्त और क्या दूसरा कारण हो सकता है? हे भारत! इस मधुसूदनको प्रधान करके पूजनाही यदि तुम्हारा अभिप्राय था, तो अपमान करनेके लिये इन राजोंको यहां लानेका क्या प्रयोजन था? ऐसा नहीं, कि हमने भय, लोभ वा ढाढ़सके लिये इन महात्मा कुन्तीकुमारको कर दिया है, यह धर्म्मसे प्रवृत्त होकर साम्राज्यकी कामना कर रहे हैं, इसी लिये सबोंने इनको कर दिया है; पर इन्होंने हमारा अनादर किया! हे महा-राज! राजसमाजमें तुम्हारा राजलक्षण रहित इस कृष्णका पूजना अपमानके अतिरिक्त और क्या होसकता है? वास्तवमें धर्म्मात्मा करके

धर्म्मपुत्रका यश फैला है; इसमें सन्देह नहीं, कि वह बिना कारण हुआ है। क्योंकि वृष्णिकुलमें उपजे हुए जिस दुरात्माने पहिले महात्मा राजा जरासन्धको अनुचित रूपसे मारा है, इस धर्म्मत्यागीको कौन धर्म्मात्माके समान अनुचित पूजा दे सकता है? कृष्णको अर्घ देनेसे युधिष्ठिरको धार्म्मिकता भी जाती रही और कृपणता जानी गयी। अजी माधव! तपस्वी कुन्तीपुत्र यद्यपि भीत और कृपण बने, तौभी तुम जैसो पूजाके योग्य हो वह तुमको भी समझना चाहिये था। अथवा घृतकी धार पाय कुत्ता जैसे निरालेमें पीकर आनन्द लूटता है, वैसे तुम भी अपना अयोग्य पूजाको बहुत मानते होगे; ऐसा न होता, तो तुमने योग्य बनके क्योंकर कृपणोंकी दी हुई यह पूजा मान ली? अजी जनार्द्दन? मैंने जिस अपमानकी बात कही, वह तो कुछ राजोंपर वर्त्ताव नहीं करती है; निश्चय जान पड़ता है, कि कौरवलोग तुम्हाराही अपमान कर रहे हैं। अजी मधुसूदन! नपुंसकका विवाह और अन्धेका रूप देखना जैसा अयोग्य है, राजा न होकरके तुम्हारे लिये राजाके समान पूजित होनाभी वैसा हंसी की बात है। चाहे जो कुछ हो, राजा युधिष्ठिरभी पहिचाने गये भीष्म जैसे हैं, वहभी समझा गया, जिसका जैसा गुण अवगुण था, वह भी प्रगट होगया।

तब शिशुपाल उनसे यह कहके परमासनसे उठकर राजोंके साथ सभासे निकला।

सैंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि, अनन्तर राजा युधिष्ठिर शिशुपालको ओर तुरन्त दौड़े और समझाय बुझाय उससे यह मीठी बाणी बोले, कि 'हे नरेश! आपने जैसी बात कही, वह आपके योग्य नहीं हुई! इसमें परम अधर्म्म और अनर्थ तथा कड़ापन प्रकाश होता है। हे महाराज! यह कभी सम्भव नहीं होसकता, कि शान्तनुनन्दन भीष्म परम धर्म्मको समझ नहीं सकते, सो और का और समझाकर आप इनका अनादर न कीजिये, आपसे बड़े बड़े यह सब अगणित भूप कृष्णकी पूजा सहते हैं, वैसे आपभी सहन कीजिये। हे चेदिनाथ! कुरुनन्दन भीष्म यथार्थ रीति पर श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपसे ज्ञात हैं। यह श्रीकृष्णको जैसे जानते हैं, आप उनको वैसे नहीं समझते।

भीष्मजी बोले, कि सब लोकोंमें बड़े वृद्ध श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा जिसे प्यारी नहीं लगती, ऐसे जनको बिनय करना वा समझाना अनुचित है। लड़ाकोंमें श्रेष्ठ जो क्षत्रिय वीर किसी क्षत्रियको युद्धमें पराजय कर वशमें लाय त्याग देते हैं, वह उसके गुरु बनते हैं। यदुनन्दनके तेजसे हार नहीं खाये एकभी भूपाल इस राजसमाजमें दीख नहीं पड़ते। यह महाभुज अच्युत केवल हमारेही पूजनीय नहीं हैं, यह त्रिलोक भरके भी प्रधान पूजनीय हैं, क्योंकि बहुतेरे क्षत्रियश्रेष्ठ युद्धमें श्रीकृष्णसे परास्त हुए हैं और सम्पूर्ण विश्व इनमें सब प्रकारसे बिराजमान है, अतएव वृद्धोंके विद्यमान रहते मैंने श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा की; दूसरोंकी नहीं। हे महाराज! इस बिषयमें तुमको वैसा न कहना चाहिये था। ऐसी बुद्धि फिर कभी तुमको न घेरे। मैंने बहुतेरे ज्ञानमें वृद्धोंकी उपासना की है, इन सब एकत्रित सज्जनोंकी कथाहीमें गुणराशी श्रीकृष्णके साधुसम्मत अनन्त गुण-बृत्तान्त सुन चुका हूं। और भी इन धीमान महापुरुषने जन्मसे जो जो कर्म्म किये हैं उन सबोंकी कथा भी बहुधा मेरे कानोंमें पैठी हैं। अजी चेदिनाथ! ऐसा कदापि मत जानना, कि हम भूमण्डल भरमें साधुओंसे पूजे जानेवाले सर्व्व भूतोंको सुख देनेहारे जनार्द्दनको केवल स्वेच्छासे अथवा सम्बन्ध वा उपकारके लिये पूजते हैं; इनका यश, शूरता और जयका

वृत्तान्त विशेष ज्ञान करकेही हम इनकी पूजा करते हैं। इस सभामें बालकसे बालकभी परीक्षा करनेमें हम नहीं चूके हैं, पर गुणमें वृद्ध जनोंकी भी अतिक्रम कर हरिही हमारे मनसे पूजनीय बने हैं। ब्राह्मणोंमें ज्ञानके वृद्ध, क्षत्रियोंमें सबसे बली, वैश्योंमें बहुत धन-धान्यवान और शूद्रोंमें अवस्थाके वृद्धही पूजे जाते हैं, पर गोविन्दको पूज्यताके विषयमें वेद वेदाङ्ग विज्ञान और अधिक बल यह दो मिल गये हैं, क्योंकि मनुष्य लोकमें केशवसे गुणी दूसरा कौन विद्यमान होगा? दान दाक्षिण्य शास्त्रज्ञान, शूरता, लज्जा, कीर्त्ति, अच्छी बुद्धि, विनती, श्री, धृति, तुष्टि यह सब गुण कृष्णहीमें सदा प्रतिष्ठित हैं, सो हे भूपो! ऐसे ज्ञानो आचार्य्य, पिता गुरु, अर्घपात्र, अर्चनीय अच्युतका पूजा जाना आप सब मान लीजिये। हृषीकेश ऋत्विक गुरु, कन्यादान योग्य, स्नातक भूप और प्यारे यह सबही कुछ बन हैं, इसी लिये हमने इनकी पूजा की। श्रीकृष्णही सब लोकोंके उपजने और लय पानेके कारण है। श्रीकृष्ण-हीके लिये यह चराचर विश्व रचा गया है। यही अव्यक्त प्रकृति, कर्त्ता सनातन और सर्व्व-भूतोंसे अतीत हैं, इसी लिये अच्युत सबोंसे अधिक पूजनीय बने हैं। बुद्धि, मन, महान तत्व, वायु, तेज जल, पृथ्वी, और जरायुजादि चार भूत, सबही कृष्णमें विराजते हैं। सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्रदल, ग्रहगण, दिग्मण्डल, विदिक सबही श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे चारों वेदोंमें अग्निहोत्र, छन्दोंमें चन्द्रमा, ज्योति-योंमें आदित्य, पर्व्वतपुञ्जमें सुमेरु और पक्षि-योंमें गरुड़ मुखिया हैं, वैसे क्या जड़, क्या तिर्य्यक्, क्या अधः जगकी जितनी गति ठहरायी हैं, उन देवादि लोकोंमें केशवही मुखिया बने हैं। पर यह अज्ञ पुरुष शिशुपाल बचनसे श्रीकृष्णको समझ नहीं सकता है, इसी लिये सब ठौर सदा ऐसा सम्भाषण किया करता है। जो कोई महात्मचित्त अच्छा धर्म्म सञ्चय करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वह जैसे धर्म्मको देखते हैं, यह चेदिनाथ वैसे देख नहीं सकता। इन बाल वृद्ध पूर्ण महान आज्ञापूरित भूपोंमें कौन श्रीकृष्णचन्द्रको पूजाके अयोग्य मानते, और कौन इनको पूजा नहीं करते होंगे? अथवा यदि शिशुपालको निश्चय हो, कि पूजा अनुचित हुई है, तो अनुचित पूजाके हेतु जो उचित हो, वह बिना शंका वही कर ले।

अड़तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबली भीष्मके ऐसी वक्तृता देकर चुप होने पर सहदेव उसके उत्तरमें यह अर्थयुक्त बचन बोले। हे भूपो! अपरिमित पराक्रमी केशवका मेरा पूजना तुममें जिन नरेशोंसे सहा न जाय, उसी सब बलियोंके सिर मैं यह लात मारता हूं, मेरे इस वचनका वे उचित उत्तर देवें। और जितने भूप महात्माचित्त करके गिने जाते हैं, वे इन आचार्य्य, पिता, गुरु,पूजनीय और अर्घ देनेके योग्यपात्र श्रीकृष्णकी पूजा मान लेवें।

बुद्धिमान साधु राजोंके उस प्रकार पांव दिखानेसे उनसे किसीने चूतक नहीं किया। आगे सहदेवके सिर पर फूल वृष्टि हुई और "साधु साधु" ऐसी आकाशवाणी उच्चारी जाने लगी। सर्व्वशंकानाशक, सर्व्वलोकवेत्ता श्रीनारद-जी सब भूपोंसेसे यह स्पष्ट वाणी बोले, कि जो लोग पद्मपलाश लोचन श्रीकृष्णकी पूजा नहीं करेंगे, वे जीवितेभी मृत हैं, सम्भाषण योग्य नहीं हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंके विशेष जानकार नरदेव सहदेवने पूजनीय जनोंकी पूजा करके वह कर्म्म पूरा किया। इससे श्रीकृष्ण चन्द्रके प्रधान रूप से पूजे जाने पर शत्रुनाशी शिशुपाल आंखें लाल-कर क्रोधके मारे भूपोंसे बोला, सेनापतियो!

मैं विद्यमान हूं, फिर आप किस सोचमें पड़े हैं? आइये, सब सजकर मिले हुए वृष्णि और पाण्डवोंसे रणमें भिड़ जायं। चेदिनाथ शिशुपाल इस प्रकार उन राजोंको भरपूर उत्साहित कर अन्तमें उनसे यज्ञ बिगाड़नेको परामर्श करने लगा। वहां निवर्तमें आये शिशुपालादि राजगण सब प्रकारसे क्रोधित और मुखका रंग बदले दीख पड़ने लगे, क्रोधसे चेत खोय वे सब निश्चय सिद्धान्तकर यह कहने लगे, कि हमको ऐसाही करना चाहिये, कि जिससे युधिष्ठिरका अभिषेक और श्रीकृष्णकी पूजा पूरी न होने पावे। अपनेमें समझीबूझी मनः-पीड़ाहीसे राजगण ऐसी कहासुनी करने लगे। सिंहके मुखसे आमिष छूट जानेसे वे गरजते हुए जैसो भयावनी मूर्त्ति प्रगट करते हैं उक्त राजोंके मित्रोंके उसकाल रोकनेसे उनकी मूर्त्तिभो वैसीही प्रगट होने लगीं। श्रीकृष्णने तब यह स्पष्ट जान लिया, कि वह सेनारूपी लहर मारनेवाला अपार अक्षय राजसमुद्र लड़नेको प्रण ठान रहा है।

उनतालीस अध्याय और अर्घाहरण प्रकरण समाप्त।

शिशुपालवध प्रकरण।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इन्द्र जैसे परामर्श पूछते हैं, वैसे अति तेजस्वी शत्रु-नाशी युधिष्ठिरने उस भूपसमाजको क्रोधसे उबले सागरके समान निहार-कर मतिमानोंके अगुआ कुरुपितामह वृद्ध भीष्मजीसे पूछा, कि हे पितामह! यह विशाल राजसमुद्र क्रोधके मारे लहरा उठा है, इस विषयमें जैसा उपाय करना उचित हो मुझसे यज्ञमें विघ्न न हो और प्रजाओंका सर्व्वत मङ्गल हो, वर्त्तमानमें वह सब उपाय बतावें।

धर्म्मज्ञ धर्म्मनाथ युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर कुरु-पितामह भीष्म यह वचन बोले, कि हे कुरुशार्द्दूल! तुम भय मत खाओ। क्या कुत्ता कभी सिंहको मार सकता है? इस विषयमें मैंने पहिलेही अच्छा शुभ उपाय ठह-राया है। सिंह सोये रहनेसे कुत्ते उसके सामने आय सब मिलके जैसे चिल्लाने लगते हैं, यह राजगण वैसे गरजते हैं, सिंहके सामने कुत्तोंके सदृश सोये वृष्णिसिंहके सामने रहकर अति क्रोधसे चिल्लाते हैं। नोदमें पड़े सिंह समान अच्युत जबलों जागते नहीं हैं, तबलों नरसिंह चेदिनाथ इनलोगोंको सिंह बना रहा है। हे बेटा! अल्पबुद्धि शिशुपाल सब भूपोंको सब प्रकारसे यमराजके घर ले जाना चाहता है। हे भारत! शिशुपालका यह जो तेज बना है, जान पड़ता है, कि श्रीकृष्णचन्द्र निश्चयही उसे हर लेना चाहते होंगे। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन! इस कुबुद्धि चेदिनाथकी और सब भूपों ही की बुद्धि बिगड़ी है। वास्तवमें यह नरव्याघ्र माधव जब जिसको लेना चाहते हैं, चेदिनाथकी उनकी बुद्धि ऐसेही बिगड़ती है। हे युधिष्ठिर! नारायण त्रिभुवन भरमें जरा-युजादि चारप्रकारके सब भूतों ही की उत्पत्ति और लयके कारण हैं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे भारत! भीष्मकी यह बात सुन नरेश चेदिनाथ तब उनको तीक्ष्ण अक्षरोंके वचन सुनाने लगा।

चालीस अध्याय समाप्त।

शिशुपाल बोला, अजो भीष्म! क्या तुम वृद्ध होय कुलमें कलङ्क लगाते हो? बहुविध विभीषिकासे सब भूपोंको भय दिखलानेमें लजाते नहीं? अथवा जन्मसे नपुंसकके स्वभावमें बने रहकर ऐसा धर्म्मवर्जित अर्थका कहना तुम्हारे योग्य ही तो है, क्योंकि तुम सब कुरुओंके बड़े हो; जिनके तुम मुखिया बने हो, वे कौरव ठीक उसही दशामें हैं, कि जैसे एक नाव दूसरोसे मिलती अथवा जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धेकी बाट लेता है। कृष्णका

पूतना-वध आदि कर्म्म विशेष रूपसे कह कर तुमने हमारे हृदयमें बड़ी व्यथा पहुंचाई। तुम बड़े अहङ्कारी और मूर्ख हो, तिससे केशवकी स्तुति गाने परभी तुम्हारी जीभ सैकड़ों भागोंमें क्यों नहीं बटती है? अति अज्ञानी मनुष्य भी जिससे ग्लानि कर सकते हैं तुम ज्ञानमें वृद्ध हो करके उस गोपालकी स्तुतिमें क्योंकर उत्साह दिखा रहे हो? अजी भीष्म! कृष्णने बचपनमें यदि एक गिद्ध मारा अथवा उन युद्धको न जाननेवाले अश्व और बलको मारा हो, तो उसमें आश्चर्यही क्या है? और भी यदि इसने अचेत लकड़ी की गाड़ी पांवसे गिराई हो, तो भला कौनसा बड़ा आश्चर्य्य कर दिखाया! अजी भीष्म! दीमकके टीलेके समान गोवर्द्धन गिरिको यदि इसने सप्ताह भर थामाभी हो, तो वह मेरी समझमें कोई बड़ी बात नहीं है; तुम्हारी इस बात पर, कि पहाड़की चोटी पर खेलते कूदते इसने बहुत अन्न खाया था" सबोंने बड़ा अचरज माना है, अजी धर्म्मज्ञ! जिस बलवानका अन्न इसने खाया था, उस कंस हीको तो मार डाला है, क्या यह बड़े आश्चर्य की बात नहीं है? रे कुरुकुलमें नीच भीष्म! तू नहीं जानता, कि धर्म्म क्या है। अब हालमें तुझको जो इस बातका उपदेश करता हूं, जान पड़ता हैं, कि तूने साधुओंको कथामें यह नहीं सुना होगा। धर्म्मनिष्ठ साधुलोग सज्जनोंसे सदा यह उपदेश करते हैं, कि स्त्री, गौ और ब्राह्मणों पर और उस पर जिसका अन्न खाया हो और जिसके आसरेमें बसे कभी शस्त्र मत चलाना; पर अजी भीष्म! लोकमें तुममें वह सब व्यर्थ दीख पड़ते हैं। रे कौरवोंमें नीच! यह समझ कर, कि मानो मैं कुछ नहीं जानता हूं, तू मेरे सामने केशवकी स्तुति कर कर उसको ज्ञानमें वृद्ध, बुद्ध महान् इत्यादि नानाविध बातोंमें प्रशंसा कर रहा है। अजी भीष्म! गो घातक और स्त्री हत्यारे होने परभी यदि तुम्हारी बातसे पूजनीय हो, तो वह उपदेश वचन कहां रहेगा? अजी भीष्म! जो ऐसा है वह क्योंकर स्तुति योग्य हो सकता है? तुम्हारी ऐसी प्रशंसाकी बातोंसे, कि "यह प्राज्ञके मुखिया, जगत्के प्रभु हैं" जनार्द्दनभी यह सब सच मान अपनेको उन सबोंके योग्य समझ रहा है, पर वास्तवमें वह सब झूठ है। गवैयेके बहुत बार गानेसेभी सङ्गीत उसका शासन नहीं कर सकता; भूलिङ्ग पक्षीके समान सब प्राणी अपनी अपनी आकृति प्राप्ति करते हैं। इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, कि तुम्हारी यह प्रकृतिभी बहुत बुरी है। औरभी कृष्ण जिनका प्रधान पूजनीय और तुम जिनके बाट दिखानेवाले हो यह कहनेसे कथा बढ़ जाती है, कि उन पाण्डवोंकी प्रकृति तुमसे भी नीच है। वास्तवमें तुम धर्म्मवान होकरकेभी साधुओंके पथसे छूट जानेसे अधार्म्मिक बने हो, क्योंकि धर्म्मसे तुमने जो कर्म्म किया है क्या कोई ज्ञानकी बड़ाई रखने वाला वैसा कर सकता है? अजी भीष्म! अम्बा नाम धर्म्मवती काशीराजकी पुत्रीने और कामना की थी, तुमने प्राज्ञ होनेकी बड़ाई रखकर क्योंकर उसे हर लिया था? तुम्हारे भाई नरनाथ विचित्रवीर्य्यने साधुओंकी बाट लेय तुम्हारी हरी उस कन्याको अन्यपूर्व्वा कहके नहीं लिया। तुम प्राज्ञ कहनेकी ऐसी बड़ाई रखते हो, कि तुम्हारे सामनेही विचित्रवीर्य्यकी दो स्त्रियोंमें अन्यजन द्वारा सज्जनसे आचरण किये पथके अनुसार सन्तान उपजायी गई थी; अजी भीष्म! भला तुम्हारा धर्म्म क्या है? तुम्हारा यह ब्रह्मचर्य्य व्यर्थ है, याती भ्रम नहीं तो नपुसक होनेके कारण तुमने इसे लिया है। अजी धर्म्मज्ञ! मैं कहीं भी तुम्हारी उन्नति नहीं देखता हूं। तुम धर्म्मकी जैसी व्याख्या

करते हो, तिससे निश्चय जान पड़ता है, कि तुमने कभी पण्डितकी उपासना नहीं की है। देखो, देव-सेवा दान, पठन बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञ, यह सब पुत्र फलके सोलहवां भागके योग्य भी नहीं हो सकते। अजी भीष्म! बहुविध व्रत उपवाससे जो कुछ पुण्य होता है, बिन पुत्र जनका वह सब निःसन्देह व्यर्थ हो जाता है। तुमभी बिन पुत्र वृद्ध हुए हो और झूठे धर्म्म पर चलते हो, सो हंसकी भांति अब ज्ञातियोंसे बधे जाओ। अजी भीष्म! आगेमें पण्डित दूसरे मानवभी पहिले यह कह गये हैं, मैं भली प्रकार तुमसे वह कह सुनाता हूं, सुनो। पहिले समुद्रके निकट एक बूढ़ा हंस रहता था। वह बड़ा अधर्म्म किया करता था, पर धर्म्मकी कथा सुनाय सुनाय पक्षियोंको उपदेश करता फिरता था। सच कहनेवाले पक्षीगण उसको यह बात, कि तुम धर्म्म करो, अधर्म्म मत कोजो।" सदा सुनते थे। अजी भीष्म सुना जाता है, कि समुद्रके जलमें चरनेवाले दूसरे अण्डजभी धर्म्मार्थमें उसको भोजन जुटा देते थे और सब उसके निकट अपने अपने अण्डे धर चरते चरते सागर जलमें डूबते थे। वह पापिष्ठ हंस अपने कर्म्ममें सदा सावधान रह भूले भटके उन्हीं पक्षियोंके अण्डे खा जाता था। अनन्तर धीरे धीरे उन सब अण्डोंके चुक जाने पर दूसरा एक बड़ी बुद्धि वाला पक्षी मनही मनमें भेद खा गया और किसी एक दिन प्रत्यक्षमें भी वह लीला देख ली। आगे हंसका पापकार्य्य देख दुःखी होय उस पक्षीने सब पक्षियोंसे कह दो। अजी कुरुश्रेष्ठ! इसके पीछे उन पक्षियोंने प्रत्यक्षमें देख देखकर निकट आके उस झूठे बकवादी पक्षीको मार डाला। अजी भीष्म! तुमभी उस हंसके धर्म्मसे चलते हो, सो पक्षियोंने उसे जैसे मारा था, वैसे यह भूपभी क्रोधवश तुमको हनन कर सकते हैं। अजी भरतपुत्र! पुराणके जानकार पण्डित लोग इस विषयमें एक कथा कहते हैं। उसेभी पूरी पूरी तुमसे कह सुनाता हूं। "रे हंस! कामादिसे तेरी अन्तरात्मा घायल होने परभी तू धर्म्मका बकवाद कर रहा है, पर अण्डा खानेके समान यह अपवित्र कर्म्म तेरी बातके ऊपर चढ़ जाता है।"

एकतालीस अध्याय समाप्त।

शिशुपाल बोला, कि इस कृष्णको दास जानके जिन्होंने इससे लड़ना नहीं चाहा था, वह महाबली बड़े पराक्रमी राजा जरासन्ध मेरे बड़े माननीय थे। जरासन्धके मारे जानेके कालमें केशव और भीमार्ज्जुनने जो कर्म्म किया था, उसे कौन सुकर्म्म जान सकता है? इस कृष्णने कुद्वारसे घुसकर छलसे अपनेको ब्राह्मण कहके नरनाथ जरासन्धका प्रभाव भली प्रकार समझ लिया था। इस दुरात्माको उनके पहिले पाद्य देनेको उद्यत होने पर इसने तब धर्म्मात्मा बनके अपनो ब्राह्मणाई दिखाके उसे नहीं लिया था। अजी कुरुकुमार! जरासन्धने जब कृष्ण, भीम और धनञ्जयको भोजन करनेको कहा था तब कृष्णने बाधा देके बात नहीं मानी थी। रे मूर्ख! तेरे मतसे यदि यह जगका कर्त्ताही होगा तो अपनेको ब्राह्मण करके भली भांति क्यों नहीं जान लेता? मुझको सबसे बड़ा आश्चर्य्य यह जान पड़ता है, कि यद्यपि तुम पाण्डवोंको साधुओंके पथसे हटाते हो, तिसपर भी वे तुम्हारे अभिप्रायको भला समझते हैं, अथवा स्त्री स्वभावी बनके और अवस्था गंवाके जब तुम इनके सब अर्थोंके दर्शानेवाले बने हो, तब इसमें आश्चर्य्य ही क्या है?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उसकी कठोर अक्षरोंको बहुतेरो कटीली बातोंको सुनके बलियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी भीमसेन क्रोधयुक्त हुए। कमलदल सदृश स्वभावहीसे फैले और क्रोधसे लाल भये दोनों नेत्र और भी फैले और बड़े

लाल वन गये। सव भूप त्रिकूट-चोटीके निकट वहती, तीन धारोंसें चलती गङ्गाजीके समान उनके लिलार पर त्रिशिखाकी भृकुटि निहारने लगी। क्रोधके मारे दांतसे दांत पीसते हुए उनका मुखमण्डल मानो युगान्तके सव लोकोंको निगलनेवाला कराल कालके समान दीख पड़ने लगा। वह महानचित्त वेगसे उठ रहे थे, कि ऐसी समयमें शशिभूषण जैसे षड़ानन को पकड़ते हैं तैसे महाभुज भीष्महीने उनको रोक लिया। हे भारत! पितामह भीष्मजीने भीमको रोक कर वहुविध वचनसे उनका क्रोधवेग शान्त कर दिया; क्योंकि लहराता हुआ महासमुद्र जैसे वर्षा वीतने पर तटकी भूमिके ऊपर नहीं चढ़ता, वैसे शत्रुदमन वृकोदर भीष्मजीकी वात पलट नहीं सके। पर भीमसेनके क्रोधसे भरने परभी वीरवर शिशुपाल अपनी वड़ाई पर निर्भर कर कुछभी टला नहीं। हे शत्रुदमन! सिंह जैसे छोटे मृगको टुकभी नहीं मानता, वैसे वृकोदरके वेगसे वारवार चढ़जानेकी इच्छा दिखाने परभी उनसे उसको कोई भय नहीं हुआ। भीमपराक्रमी भीमसेनको सव प्रकारसे क्रोधित देखकर प्रतापी चेदिनाथ हंसता हुआ यह वोला, कि अजी भीष्म! उसे छोड़ दो। यह भूपवर्ग उसे आ.ग्नसे पतङ्गको भांति मेरे प्रभावाग्निसे जलजाते देख लेवें। अनन्तर चेदिनाथकी वह वात सुनकर प्राज्ञोंके सुखिये कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी भीमसे पीछे कहे यह वचन वोले।

वयालिस अध्याय समाप्त।

भीष्मजी वोले, कि यह शिशुपाल त्रिनेत्र और चतुर्भुज वनके चेदिकुल में उपजा था, और जन्मलेतेही गदहेके समान चिल्लाया था, इस पर इसके पिता माताने वान्धवों सहित भय खाय वैसे विकृत लक्षण देखकर इसे त्यागना चाहा। अनन्तर स्त्री मन्त्री और पुरोहित सहित घवराये उन नरनाथ पर यह आकाशवाणी उच्चारी गयी, कि "हे नरनाथ! यह जो तुम्हारा पुत्र उपजा है, यह वड़ा वली और श्रीमन्त होगा, सो इससे तुमको भय नहीं है, तुम विना घवराये इस वच्चेको पालो। हे नरनाथ! तुम्हारे प्रयत्नसे इसकी मृत्यु नहीं होगी, अभी इसके मरनेका काल नहीं आया। शस्त्रसे जो इसे मारेंगे वह जन्मे हैं।" यह दैववाणी सुनके माता पुत्रस्नेहसे वहुत दुःख मान तव उस अदृश्यभूतके उद्देशमें यह वोली, कि "मेरे पुत्रपर, जिन्होंने यह वाणी कही, वह भगवान चाहे देवता वा दूसरे कोई प्राणी हों, मैं कर जोड़ उनको प्रणाम करती हूं। वह सत्य करके और एक वात कहें; मैं सुना चाहती हूं, कि कौन इस पुत्रका मारनेवाला होगा। अनन्तर फिर यह दैववाणी हुई, कि जिनकी गोदमें रखनेसे इस वच्चेके दो अधिक भुज, पांच सिरवाले दो सर्पोंके सदृश धरती पर गिर जायंगे और जिनको देखकर इसके लिलार परका यह तीसरानेत्र लोप हो जायगा वही इसको मारेंगे।"

त्रिनेत्रवान चतुर्भुज वालक और उसपर कही दैववाणीका वृत्तान्त सुनकर पृथ्वी भरके सव नरेश उसे देखनेको आये। चेदिनाथने उनको यथा योग्य पूजा कर हर नरेशकी गोदमें पुत्रको रख दिया। इस प्रकारसे क्रमशः सहस्र भूपोंकी गोदमें चढ़ने परभी वच्चे पर दैववाणीका वर्त्ताव नहीं हुआ। द्वारकामें यह वृत्तान्त सुन यदुनन्दन महावली वलराम और जनार्द्दन यदुकन्या फूफीसे भेट करनेको उस समय चेदिनगरमें आये और श्रेष्ठताके अनुसार राजा राणीके पांवमें लगके कुशल क्षेम पूछकर आसनोंपर बैठे। अनन्तर उन दो वीरोंके पूजे जाने पर राजमहिषीने वहुत अधिक प्रीतिसे स्वयं दामोदरकी गोदमें पुत्रको दे दिया। कृष्णकी

गोदमें जातेही उसके दो अधिक भुज गिर गये और लिलार पर उपजा हुआ वह नेत्रभी अदृश्य हुआ। यह देखकर राणी व्यथा पाय भय खाय कृष्णसे वर मांग बोली, कि हे महाभुज कृष्ण ! मैं भयसे घवराय गयो हूं, मुझको एक वर दो, क्योंकि तुम दुखियोंकी आश्रय और भय खायोंको निर्भय करनेवाले हो। फूफीकी ऐसो कातर वाणी सुनके यदुओंके आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र उसको ढाढ़स देकर बोले, कि देवि! भय मत खाओ, मुझसे आपको भय नहीं है। हे धर्म्मवति! मैं क्या वर दूं, कहो मुझको क्या करना होगा, चाहे साध्य हो, वा असाध्य हो, मैं अवश्यही आपकी बात मानूंगा। श्रीकृष्णको वह बात सुनके उस समय राजमहिषीने उनसे कहा, कि हे महाबली यदुशार्दूल! मेरे लिये तुमको शिशुपालका सब दोष क्षमा करना पड़ेगा। हे प्रभो! यही मेरी प्रार्थना है। श्रीकृष्ण बोले कि हे फूफो! आपका पुत्र बधयोग्य भी हो तो मैं इसके सौ दोषोंको क्षमा करूंगा, अतएव आप शोकयुक्त न हूजिये।

भीष्मजी बोले, कि हे भीम! इस प्रकार गोविन्दके वरसे अहङ्कारी बन करकेही यह अति कुबुद्धि पापात्मा भूपाल शिशुपाल तुमको युद्धके लिये ललकार रहा है।

तेंतालीस अध्याय समाप्त।

भीष्मजी बोले, हे वृकोदर! तुम्हारे अक्षय सत्त्वावान होने पर भी चेदिपतिको युद्धमें ललकारनेकी बुद्धि उसकी अपनो नहीं जान पड़ती; इसमें सन्देह नहीं, कि यह जगभर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रकी ही उपाय है। कालग्रसित देहधारी इस कुलाङ्गारने आज मुझको जैसा झिड़का पृथ्वी भरमें कौन नरेश वैसा करनेका साहस रखता होगा। यह महाभुज निःसन्देह कृष्णके तेजहीका अंश है, नारायण निश्चयही उस तेजको हर लेना चाहते होंगे। हे कुरुशार्दूल! यह कुबुद्धि चेदिनाथ हम सबोंको अनादर पूर्व्वक शार्दूल सदृश बहुत हांकता, झिड़कता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर चेदिनाथसे उस समय भीष्मका वह वचन सहा नहीं गया। वास्तवमें बहुत क्रोधित होके फिर उनका प्रत्युत्तर करने लगा।

शिशुपाल बोला, अजी भीष्म! तुम भाट समान उठके सदा जिसको स्तुति गारहे हो, उस केशवका जो प्रभाव है, हमारे शत्रुओंका उतनाही हो। अजी भीष्म! परायी स्तुति पर यदि तुम्हारा मन चला हो, तो राजोंको छोड़के क्यों इस जनार्द्दनका स्तव करते हो? जिन्होंने जन्म लेकर पृथ्वी फाड़ डाली, उन नरेशश्रेष्ठ वाह्लीकनाथ दरदको स्तुति गाओ! अथवा जिन महाभुजके देहसे बने यह दो स्वाभाविक कुण्डल और तपे आदित्य समान प्रभावी दिव्य कवच सुहाते हैं, जिन्होंने इन्द्र समान पराक्रमी कठोर जरासन्धको बाहुयुद्धमें जय किया और देह अलग करदो थी, अङ्गराजके अधीश बाहुबलमें साक्षात सहस्रनेत्र सदृश सब चापधारियोंमें श्रेष्ठ उन कर्णको स्तुति गाओ। अजी भीष्म! स्तुतिके योग्य द्विजोत्तम द्रोण और अश्वत्थामा इन दो पिता-पुत्रको सदा खुसामद करो। मुझको जान पड़ता है, कि इन दोनोंमें एक क्रोधित होनेसे चराचरयुक्त सब धरतीको नष्ट कर सकते हैं। अजी भीष्म! ऐसा एकभी राजा नहीं दीखता, जो युद्धमें द्रोण वा अश्वत्थामाके योग्य होसके, पर कैसे आश्चर्यकी बात है, कि इनकी स्तुति करनेको तुम्हारा जो नहीं चाहता। सागरसहित धरतीभरमें जो तुलनारहित गिने जा सकते हैं, उन महाभुज राजस्थ दुर्य्योधनको, अस्त्रमें पण्डित अति विक्रमी राजा जयद्रथको, लोकमें प्रसिद्ध पराक्रमी

किंपुरुषाचार्य्य द्रुमको,और भरताचार्य्य शारद्वत वृद्ध कृपको छोड़के तुम केशवकी प्रशंसा क्यों करते हो? अति वीर्य्यवन्त भीष्मक, भूनाथ दन्तवक्र, यूपध्वज, भगदत्त मगधनाथ जयत्सेन, विराट, द्रुपद, शकुनि, बृहद्दल, अवन्तीनाथ, विन्द और अनुविन्द, पाण्ड्य, श्वेत, उत्तम महा भाग शङ्ख, अति माननीय वृषसेन, विक्रमी एकलव्य और महारथी अति वीर्य्यवन्त कलिङ्ग-नाथ, इन्हें छोड़के तुम केशवकी प्रशंसा क्यों करते हो? अजी भीष्म सदा स्तुति गानेही पर यदि तुम्हारा मन चले, तो शल्यादि भूपा-लोंका स्तव क्यों नहीं करते? अजो नृप!! पहिले धर्म्ममाननेवाले वृद्धोंकोकथा सुननेमें जब तुमने कोईभी बात नहीं सुनी है, तब मैं गाल बजाकर क्या कर सकता हूं? अजो भीष्म! तुमने कभी यह बात नहीं सुनी है कि अपनी निन्दा वा प्रशंसा और परायो निन्दा वा स्तुतिगान आर्य्योंकी रीति नहीं है। स्तवके अयोग्य इस केशवको तुम्हारा सदा मोहवश भक्ति सहित स्तव करना किसीको प्रिय नहीं है। अजो भीष्म! केवल अपनी इच्छासे तुम कंसके पशुपालनेहार दास दुरात्मा जनमें क्योंकर जग भरको पैठा रहे हो? अथवा यह बुद्धि भूलिङ्ग पचीसी तुम्हारी प्रकृतिसिद्ध नहीं है, मैंने तो यह बात पहिले कहदी थी। अजो भीष्म! भूलिङ्गनाम्नी एक पक्षिणी हिमाचलके पथके किनारे रहती है। उसके अर्थविरुद्ध उलट पुलट वचन सदा सुन पड़ते हैं! वह सदा यह कहती है, कि "कोई साहसी कर्म्म मत करना," पर उसको यह समझ नहीं होती, कि आपही बड़ा साहसी कर्म्म कर रही है। वह स्वल्पबुद्धि पक्षिणी भोजन करते हुए सिंहके मुखसे दन्तोंके बीचमें दबाये मांसके खण्डको चोंचद्वारा खींच लेती है। अजो भीष्म! इसमें टुकभी सन्देह नहीं है, कि वह सिंहकी इच्छा पर जीती है। रे अधार्म्मिक! तू भी वैसी कपटवाणी कहा करता है। इसमें सन्देह नहीं, कि तू भूपालोंकी इच्छा पर जीता है। क्योंकि लोकहिंसक कार्य्य करनेमें कोई तेरे समान विद्यमान नहीं है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज! अनन्तर चेदिनाथकी यह कटीली बातें सुनकर भीष्म उसे सुनाय यह वचन बोले, कि हां! मैं इन भूपोंहीकी इच्छा पर जीता तो हूं,पर इन भूपोंको मैं तिनके समानभी नहीं समझता। भीष्मके यह वचन कहते हो भूपवर्ग चिल्ला उठे। उनमेंसे किसी किसी बड़े चापधारीके रोवें खड़े होगये, कोई कोई भीष्मकी निन्दा करने लगे और कोई कोई उनकी वह बात सुनकर बोले, कि "यह पापात्मा भीष्म वृद्ध हो करकेभी गर्व्व प्रगट करता है, सो इसे क्षमा करना उचित नहीं। हे भूपवर्ग! इस क्रोधित भीष्मको पशु समान मार डालनाही उचित है, अथवा सब मिल इसे सूखे तिनकेको आगसे भून डालो। अनन्तर कुरुपितामह महानचित्त भीष्म राजोंके यह वचन सुनके उनसे बोले, अजो भूपो! देखता हूं, बातें चुकने की नहीं हैं, ज्यों कहते जायेंगे, त्यों त्यों बढ़ती जायंगी। पर अब मैं जो कहता हूं, सब ध्यान लगाय सुनो। मैं पशु समान माराही जाऊं वा तिनकों-को आगसे भूना जाऊं, पर तुम्हारे सिर पर यह भरपूर लात जमाता हूं। अक्षय सत्त्ववान गोविन्दको हमने पूजा है, और वहभी यहां विद्यमान हैं, सो मरनेको जिसकी बुद्धि दौड़ती हो, वह गदा चक्रधारी माधव श्रीकृष्णको आज युद्धमें ललकारे और उसी क्षण मारा जाय इन देवकी देहमें ही लय हो जावे।

चौवालिस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर भीष्मका वचन सुन करकेही अति विक्रमी चेदिनाथ वासुदेवसे लड़नेकी इच्छा कर उनसे बोला,

अजी जनार्द्दन! तुमको ललकारता हूं, आओ मुझसे लड़ जाओ, आज पाण्डव सहित निश्चयही तुमको मारूंगा। अजी कृष्ण! तुम्हारे राजा नहीं होने परभी जिन्होंने भूपोंको छोड़के तुम्हारी पूजा की है, उन पाण्डवोंको मैं तुम्हारे साथही सब प्रकारसे निःसन्देह नष्ट करूंगा। रे मन्दबुद्धे! तू राजा नहीं, दास है, सो किसी प्रकार पूजायोग्य नहीं हो सकता, तिस परभी जिन्होंने लड़कोंकी बुद्धिसे तुझे योग्य सा बनाय तेरी पूजा की है, मेरे मतसे वे निश्चयही वध योग्य हैं। राजशार्दूल शिशुपाल क्रोधके मारे यह वचन बोलके गरजने लगा। उसके ऐसा कहनेके पीछे श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके सामने राजोंसे धीमी धुनसे यह बात बोले, कि हे नरेन्द्र! यह निष्ठुरात्मा यादवीपुत्र मेरे आदि यादवोंका बड़ा शत्रु है, हम इसकी हानिकी चेष्टा नहीं करते तिस परभी यह बुराईमें कटिवद्ध होता है। हमको प्रागज्योतिष पुरसे गये जानके इस निष्ठुरने मेरे पिताका भाञ्जा होने परभी द्वारका नगरीको फूक दिया था। हे नरेश! पहिले राजा भोज रैवतक पर्व्वत पर विहार कर रहे थे। यह दुराचारी उनके सहचरोंको मारके और बधकर अपने पुरको पधारा था। मेरे पिताके अश्वमेध यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये इस पापात्माने दिग्विजयके निमित्त अच्छे रखवारोंसे घिरे यज्ञके अश्वको चुराया था। तपस्वी अक्रूरकी स्त्री यहांसे सौवीर राज्यको जा रही थी, इस दुराचारीने उसकी इच्छा न रहने परभी उस नारीको मोहसे हरण किया था। और भी मामाकी बुराई करनेवाले शिशुपालने कपट-पनसे राजा करुषके वेशसे देह छुपाय उक्त राजाके लिये निर्द्दिष्ट विशालपतिकी पुत्री भद्रको हर लिया था। केवल फूफीजीके लिये मैं इन बड़े भारी दुःखोंको सह लेता हूं, पर आज सब राजोंके सामने यह प्रगट होना सौभाग्य ही है। क्योंकि मुझ पर इसकी अति विरुद्धता आज आपने प्रत्यक्ष कर ली और इसने परोक्षमें मेरी जितनी हानि की है वह भी सबसुन चुके, वह चाहे जो कुछ हो, आज सब राजोंके सामने वध योग्य इस नराधमको गर्व्ववश जो विरुद्धता दीख पड़ी उसको क्षमा मैं नहीं कर सकूगा। इस मूर्खने मूढ़तासे मृत्युका अभिलाषी बनकर रुक्मिणीकी प्रार्थना की थी, पर शूद्रके वेद सुननेकी भांति उसका लाभ नहीं कर सका था।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर वे मिलित नरेशवर्ग वासुदेवकी यह बात सुनके सब चेदि-नाथकी निन्दा करने लगे। प्रतापी शिशुपाल उनका वह वचन सुनके जोरसे हंसकर यह बोला, अजी कृष्ण! पहिले मेरे लिये निर्द्दिष्ट रुक्मिणीकी बात इस सभामें विशेष राजोंके सामने कहते तुमको लाज नहीं आती क्या? अजी मधूसूदन! तुम विना दूसरा कौन अपनेको पुरुष करके अपनी स्त्रीको साधु-समाजमें अन्य-पूर्व्वा कह सकता है? अजी कृष्ण! मन चले तो मुझको क्षमा करो, नहीं तो न करो। तुम चाहो रिसाओ वा प्रसन्न हो, तुमसे मुझे क्या भय है।

शिशुपाल ऐसा कहताही था; कि ऐसे समयमें भगवान मधु-सूदनने मनही मनमें दैत्य-गर्व्वनाशी सुदर्शन चक्रको स्मरण किया। पल भरमें चक्र हाथमें आजाने पर भगवान चिल्लाकर वाक्योंमें यह बोले, कि हे भूपालो! जिस हेतु इसके दोषोंको क्षमा कीथी, वह सुनिये। इसकी माताने मुझसे यह वर मांगा था, कि "इसके सौ दोष क्षमा करने होंगे" और मैंनेभी उनका मांगा वर दिया था। हे भूपो! अब वह पूर्ण हुए, सो आपके सामनेही मैं इसको मारूंगा। अरिनाशी, यदुश्रेष्ठने यह कहके रिसाकर चक्रसे उसीक्षण शिशुपालका सिर काट डाला। महाभुज शिशुपाल मानो वज्रसे घायल पहाड़के

समान गिर गया। महाराज! तब नरेशोंने देखा, कि आकाशतलसे आदित्यसदृश तेजोराशि शिशुपालकी देहसे उड़ गयो। हे नरनाथ! अनन्तर वह तेजोराशि लोकोंके नमस्कार योग्य उन कमल लोचन कृष्णके पांवमें लगके उनकी देहमें मिल गयो। महाभुज पुरुषोत्तममें उस तेजको प्रविष्ट होते देखकर सब राजोंने अचरज माना। श्रीकृष्णचन्द्रके चेदिनायकी मारने पर बिना बादल जलबृष्टि, प्रज्वलित वज्रपात और भूकम्प होने लगा। वचनोंसे प्रकाशके अयोग्य उस कालमें किसी किसी भूपालने उनको निहारके उस विषयमें चूं तक नहीं किया, कोई कोई रिसके मारे हाथसे हाथ मलते रह गये, कोई कोई क्रोधसे चेत खोय दांतोंसे होठ काटने लगे, कोई कोई छिपकर वृष्णिनन्दनकी प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार कुछ नरेश अति रिसाये और दूसरे बीचमें रहे। महर्षिवृन्द केशवकी स्तुति गाते हुए प्रसन्न चित्तसे उठकर चल दिये। महात्मा ब्राह्मण लोगभी और महाबली महानचित भूपवर्ग कृष्णका विक्रम निहार प्रसन्न होय सब उनकी प्रशंसा करने लगे। आगे युधिष्ठिरने भाइयोंका आज्ञा दी, कि तुम दमघोषनन्दन वोरवर भूपालका सत्कार सहित तुरन्त संस्कार कार्य्य कर डालो। उन्होंने तब बड़े भाईको आज्ञा पाली। पृथापुत्र युधिष्ठिरने भाइयों और उन सब राजोंसे मिलकर उस काल महीपाल शिशुपालके पुत्रको चेदिराजके अधिकारमें अभिषिक्त कर दिया। अनन्तर अति तेजस्वी कुरुनाथका वह सुखारम्भ किया हुआ सर्व्वसम्पतयुक्त प्रचुर धनधान्य और अन्न भरा बहुभोजनका पूरा महा यज्ञ राजसूय केशवकी भली रखवारीमें विघ्नसे साफ और युवाओंका आनन्ददायी बनके सुहाया और युधिष्ठिरनेभी उसे पूरा किया। महाभुज भगवान जनार्द्दनने शौरी-शार्ङ्ग-चक्र-गदाधारी होके अन्ततक उस यज्ञकी रक्षा की। इसके पीछे क्षत्रिय कुलसे उपजे सब पृथ्वीनाथ यज्ञके अन्तमें अभिषिक्त धर्म्मात्मा युधिष्ठिरके सामने आकर बोले, कि हे धर्म्मज्ञ अजमीढ़! आप सौभाग्य से बढ़े चढ़े हैं, साम्राज्य आपकी हथेलीतले आगया। हे महाराज! इस कर्म्मसे आपने अजमोढ़ोंका यश बढ़ाया और बड़ा धर्म्मार्ज्जन किया। हे नरव्याघ्र! हम सर्व्व कामनाओंसे सब प्रकारसे पूजे गये हैं, अब यह कहना चाहते हैं, कि सब अपने अपने राज्यको जायंगे, सो आप वह आज्ञा दें।

धर्म्मनाथ युधिष्ठिर नरेशोंको यह बात सुन उनकी यथायोग्य पूजा कर भाइयोंसे बोले, कि यह सब शत्रुदमन राजगण प्रीतिसे हमारे निकट आये थे, अब निमन्त्रणकर अपने अपने राज्यमें जाते हैं, सो हमारे अधिकारके छोर-तक इन भूपश्रेष्ठोंके साथ जाओ। धर्म्मचारी पाण्डवगण भाईकी आज्ञा मान सब नरेशोंके पीछे यथारीत एक एककर जाने लगे। हे महाराज! प्रतापी धृष्टद्युम्न राजा विराटके, धनञ्जय महारथी महात्मा याज्ञसेनके, महाबली भीमसेन भीष्म और धृतराष्ट्रके, योधपति द्रोणाचार्य्यके, नकुल पुत्रसहित राजा सुबलके द्रौपदीके पुत्र और सुभद्रानन्दन पहाड़ी महारथियोंके और दूसरे बड़े बड़े क्षत्रियोंके साथ चले! सहस्रों ब्राह्मणभी इस प्रकार भले पूजे जाय लौट चले। सब राजों और ब्राह्मणोंके चलेजाने पर प्रतापी वासुदेव युधिष्ठिरसे यह बोले, कि हे कुरुनन्दन! सौभाग्यसे आपने यज्ञश्रेष्ठ राजसूय कर लिया, अब आज्ञा करें, मैं द्वारकाको जाऊं। जनार्द्दनकी यह बात सुनकर धर्म्मनाथ उनसे बोले, कि हे गोविन्द! केवल तुम्हारी कृपासे मैंने यह बड़ा यज्ञ लाभ किया, तुम्हारीही कृपासे सब क्षत्रिय मेरे वशीभूत हुए, और अच्छे अच्छे उपहार बटोर कर मेरी उपासना की। हे अनघ! तुम्हारे बिना मैं कदापि प्रीति पा नहीं

सकता। सो तुम्हारे जानेके विषयमें क्योंकर कुछ कहूं। पर क्या करूं, तुमको अवश्य द्वारकानगरमें जाना है। धर्म्मात्मा अति यशोवन्त श्रीकृष्ण चन्द्र ऐसा कहि जाय युधिष्ठिरके साथ पृथाके पास जाय प्रीतिसे बोले, कि हे फूफी आपके पुत्र अब सम्राज्य प्राप्तकर कृतार्थ और सम्पदयुक्त हुए हैं। अतएव आप प्रसन्न होवें, और आपकी आज्ञा पानेसे मैंभी द्वारकाको जाऊं। अनन्तर केशवने सुभद्रा और द्रौपदीसे भी विदा-कालके योग्य सम्भाषण किया। आगे युधिष्ठिरके सहित अन्तःपुरसे निकलकर स्नान आन्हिक करके ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहायी। अनन्तर महाभुज दारुक बादलको देहके समान सजा सजाया रथ जोतकर आ पहुंचा। तब महानचित्त पुण्डरी काक्षने गरुड़ध्वज रथको आ पहुंचते देखकर परिक्रमा देके उस पर चढ़कर द्वारकाकी यात्रा की। श्रीमान धर्म्मनाथ युधिष्ठिर भाइयों सहित महावली वासुदेवके सङ्ग पैदल चले। तब वाग्मीवर पद्मनेत्र हरि क्षणभर रथ ठहराय, धर्म्मनाथको बोले, महाराज! सदा अप्रमत्त और उत्साही बनके प्रजा पालिये। बादल जैसे प्रजाओंके जिलानेका कारण है, बड़ा वृक्ष जैसे पक्षियोंका जिलानेका हेतु है और पुरन्दर जैसे अमरोंको जिलानेके उपाय हैं, वैसेही आप बान्धवोंके उपजीव्य बनें हैं। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर एक दूसरेसे ऐसा सम्भाषण कर एक दूसरेकी आज्ञा लेके अपने अपने भवनोंको पधारे। हे महाराज! यदुवर श्रीकृष्णके द्वारका में चले जाने पर केवल राजा दुर्य्योधन और सुबलनन्दन शकुनि यह दो कुछ काल उस दिव्य सभामें टिके रहे।

पैंतालीस अध्याय और शिशुपाल वध प्रकरण समाप्त।

द्यूत प्रकरण।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ! कुरुनन्दन दुर्य्योधनने शकुनि सहित उस सभामें टिके रहकर धीरे धीरे उसके सब भागोंको देखा। वहां उन्होंने जो सब सुन्दर बनावटकी रीति देखी, पहिले हस्तिनानगरमें कभी वैसो दीख नहीं पड़ी थी। उस महान-चित्त राजा धृतराष्ट्र-पुत्रने किसी एकदिन स्फटिकके बने स्थल-भागके निकट जाय बुद्धिके मोहसे जल जान अपना चीर उतारा और उससे विमुख होनेके कारण उदास होय सभामें फिरने लगा। आगे स्फटिकके समान अमल जलभरे स्फटिकके बने फूले कमलवाले एक तालको स्थल जानके वस्त्र सहित जलमें जा गिरा। उसको जलमें गिरते देखकर नौकर चाकर बहुत हंसे और राजाकी आज्ञासे अच्छा चीर दिया। उसकी वह दशा निहारके उस समय महावली भीमसेन अर्ज्जुन नकुल सहदेव सब हंसने लगे। रिसभरे सुयोधनसे उनकी वह हंसी सही नहीं गयी। पर बाहरी आकारको छुपायकर उस कालमुंह उठाय उनकी ओर नहीं ताका मानो यह समझके कि जलको पार करेंगे, वह फिर चीर उतारस्थल पर आया। तिस परभी सबकोई फिर हंस उठे। एक बन्द स्फटिक केद्वारको निहारके खुला जानकर दुर्य्योधन ज्यों प्रवेश करनेको था, त्योंही सिरमें चोट खाय चेहरेसे हाथ धो बैठा। वैसेही स्फटिकके दो बड़े बड़े किवाड़ सहित दूसरे एक खुले द्वारको बन्द जानकर दोनों हाथसे खोलके निकलकर गिर पड़ा। फिर वैसेही दूसरे एक खुले द्वारके निकट जाय पहिलेके समान बन्द जानके वास्तव में द्वारके स्थानसे लौट आया। हे महाराज! नरेश दुर्य्योधन राजसूय महायज्ञमें वैसी अधिक सम्पद देखके और सभामें उक्त रूपसे बहुविध वञ्चना पाय अन्तमें युधिष्ठिरकी आज्ञासे अप्रसन्न चित्तसे हस्तिनानगरमें लौट आया।

पाण्डवोंकी लक्ष्मीको देखकर दुःखी होय चिन्तायुक्त चित्तसे जाते हुए राजा दुर्य्योधनकी बुद्धि पापसे पूरित हुई। कुरुश्रेष्ठ! महात्मा पाण्डवोंको प्रसन्न, सब भूपोंको उनके वशीभूत और बालकसे वृद्ध तक सब लोगोंको उनकी हित चाहने वाले देखकर तथा उनकी परम महिमाको निहारके धृतराष्ट्रपुत्र खेदसे विवर्ण बना। मलिन मनसे जाते हुए वह धीमान धर्म्मनाथकी उस अनुपम सभा और सम्पदकी बातही सोचने लगा; यहांतक, कि वह इतना भूलासा बना, कि सुबलनन्दनके बार बार पुकारने परभी उसका कुछ उत्तर नहीं दिया। शकुनिने उसको चंचलचित्त देखकर पूछा, कि तुम लम्बी सांस लेते हुए क्यों जाते हो? दुर्य्योधन बोले, कि हे मामा! महात्मा अर्जुनके अस्त्रके प्रतापसे जीती इस सब धरतीको युधिष्ठिरके हाथ लगते और देवलोकमें इन्द्रसे उन प्रभावी पृथापुत्रका वह यज्ञ पूरा होते देखके दुःखसे भरकर निश दिन जलनेसे मैं ग्रीष्मके अल्प जलयुक्त सरोवरके समान सूख रहा हूं। देखिये शिशुपाल जब कृष्णसे मारे गये, तब ऐसा कोईभी वहां विद्यमान नहीं था, कि उनकी रक्षाके लिये सहायता करे। पाण्डवोंसे बाले अग्निसे जल जाकर राजोंने वासुदेवके उस दोषको क्षमा करी थो, नहीं तो उसने जैसा अति अनुचित कार्य्य किया था क्या कोई भो उसको क्षमा कर सकता था! केवल महात्मा पाण्डुपुत्रोंके प्रभावसे वह सिद्ध हुआ था। उसका यह एक प्रमाण देख लोजिये, कि नरेशोंने बहुविध रत्न बटोर कर वैश्योंके समान करदाता बनके पृथ्वीनाथो कुन्तीपुत्रकी उपासना करी थी। मैं द्वेष करनेके योग्य तो नहीं हूं, पर तौभी युधिष्ठिरकी वैसी प्रकाशमती राजश्री देखकर द्वेषवश जल रहा हूं।

नरनाथ दुर्य्योधन उस अग्निसे जलकर यह निश्चय कर फिर गान्धारनाथसे बोला, कि हे मामा! मुझसे जीना बन नहीं पड़ेगा, मैं अग्निमें वा जलमें पैठूंगा और नहीं तो विष खाकर मर जाऊंगा। क्योंकि किस लोकमें कौन सत्त्ववान जन शत्रुकी उन्नति पर और अपनेको नीचे गिरा हुआ देखकर सह सकता है? अब पाण्डवोंकी वैसी सौभाग्यमें देखकर मेरा सह लेना यह प्रगट करता है, कि मैं न तो नारी, न अनारी, न तो पुरुष न नपुंसक कुछभी नहीं हूं। क्योंकि यदि नारी होता, तो ऐसा व्यर्थ पुरुष बनके क्यों दुःख सहता, यदि नारी न होता, तो क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर पुरुषके कार्य्यसे क्यों चूकता? यदि पुरुष होता, तो सौतकी सम्पद सहनेवाली नारीके समान सपत्नका दिया दुःख क्यों सहता? यदि नपुंसक होता तो व्यर्थ बड़ाईके अभिमानसे क्यों फूलता? सो पुरुषका अभिमान रहते भी जब उसे नहीं दिखा सकता हूं, तो कुछभी नहीं हूं; इसके बिना और क्या कहूंगा? पूरी धरतीका अधिकार, वैसा धन सम्पद और वैसा यज्ञ देखके मेरे समान कौन दुःखी न होगा? मैं अकेला वैसी राजलक्ष्मी हरनेको असमर्थ हूं, और सहायभी दीख नहीं पड़ते, सो मृत्युके सोचमें हूं। कुन्तीपुत्रकी महाजनसदृश वह अमल राजश्री निहार मुझे निश्चय जान पड़ता है, कि दैवही प्रधान है, पुरुषार्थ व्यर्थ है, देखिये, उसके नाशके लिये मैंने पहिले बड़ा प्रयत्न किया था, पर वह जलमें कमल समान सब पार कर बढ़ उठा है। सो मैं दैवहीको श्रेष्ठ और पुरुषार्थको व्यर्थ समझ रहा हूं। क्योंकि पुरुषार्थ पर चलनेवाले धृतराष्ट्र पुत्रगण दिन पर दिन घटते हैं और दैवका आसरा ढूंढ़नेवाले पृथानन्दनगण बढ़ते जाते हैं, हे मामा! वह श्री और वैसी सभा देखकर और रखवारोंकी वह हंसी सुनके अति दुःखी

वनकी मानों अग्निसे मैं तपा जाता हूं, सो आप मुझको मरनेकी आज्ञा देवें। और मुझ पर इस विमर्षका हो जानेका हाल धृतराष्ट्रको जतावें!

छयालीस अध्याय समाप्त।

शकुनि बोले, कि दुर्य्योधन! युधिष्ठिरका द्वेष करना तुमको नहीं चाहिये; पाण्डव सदा अपना भागही भोगते हैं। देखो, पहिले तुमने वैसे बड़े बड़े उपायोंसे बारम्बार उनको नष्ट करनेकी चेष्टा करी थी, पर वे नरव्याघ्र भागकी सहायतासेही उससे बचे हैं। हे महाराज! उन्होंने द्रौपदीको पत्नी लाभ किया है, पुत्रोंसहित द्रुपद और वीर्य्यवन्त वासुदेवको पृथ्वी लाभके सहाय प्राप्त किया है और पैत्रिक राज्यके अंशमें निराश न होकर उसे पाय अपने प्रतापसे बढ़े चढ़े हैं, भला इस पर तुम्हारे द्वेषकी क्या सम्भावना हो सकती है? धनञ्जयने अग्निको प्रसन्न कर गाण्डीव शरासन, दो अक्षय तूण और दिव्य अस्त्रोंको लाभ किया है, और अपने भुजवीर्य्यके सहारे सब भूपोंको वशीभूत किया है, भला उसमें तुम्हारा द्वेष क्यों उमड़ रहा है? फिरभी शत्रुको दुःख देनेहारे अर्ज्जुनने अग्निसे जलनेसे मयदानवको बचाय उससे उस सभाको बनवा लिया है, उस मयको आज्ञासे किङ्कर नामक भयावने राक्षस उस सभाको लेजाया करते हैं, भला इसमें तुमको क्या दुःख है? हे भारत! तुमने जो असहायताको कही, वह ठीक नहीं है, क्योंकि वह सब भाई तुम्हारे वशमें हैं, बड़े चापधारी वीर्य्यवन्त द्रोण और उनके पुत्र, सूतपुत्र कर्ण, महारथी कृपाचार्य्य, पृथ्वीनाथ सोमदत्ति, मैं और मेरे भाई, हम सब तुम्हारे सहाय हैं, इन सबोंसे मिलकर तुमभी सब धरतीको जय करो, दुर्य्योधन बोला, कि हे महाराज! आपकी आज्ञा होवे, तो आपसे और दूसरे भूपोंसे मिलकर मैं पाण्डवोंको जय करूंगा। इनको जय करनेसे सब पृथ्वीनाथ और बहुत धनभरी वह सभा मेरी हो जायगी। शकुनि बोला, कि धनञ्जय, वासुदेव, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव द्रुपद, और उनके पुत्र, इनको देवताभी युद्धमें जय नहीं कर सकते, वह सब महारथी हैं, बड़े चापधारी, अस्त्रमें पण्डित और युद्धमें कठोर हैं, पर मैं जानता हूं, कि किस उपायसे युधिष्ठिर परास्त किया जा सकता है! हे महाराज! तुम उसे सुन लो और उसको मानो। दुर्य्योधन बोला, कि हे मामा! स्वजन और दूसरे महात्माओंको प्रमादसे विनाश करनेके बिना यदि जय करनेका कोई उपाय हो, तो कहें। शकुनि बोला, कि कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर खेल नहीं जानता है, पर चौसड़का बड़ा प्रेम रखता है, खेलनेके लिये बुलानेसे वह कभी मुंह नहीं मोड़ेगा। हे कुरुकुलतिलक! चौसड़में मुझे बड़ी दक्षता है, तीनों भुवन में मुझसे खेलनेमें तेज दूसरा नहीं है, सो चौसड खेलनेके लिये तुम उसको बुलवाओ। हे पुरुषवर महाराज दुर्य्योधन! चौसड़में मेरी जैसी चातुरी है, तिससे मैं बिना सन्देह उसका राज्य और प्रज्वलित लक्ष्मीको जीत लूंगा। पर तुम राजाको यह बात जताओ, तुम्हारे पिता कहें, तो मैं अवश्यही उनको जय करूंगा। दुर्य्योधन बोला, कि हे सुबलकुमार! आप कुरुओंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्रसे न्यायके अनुसार कह सुनावें, मुझसे कहना नहीं बन पड़ेगा।

सैंतालीस अध्याय समाप्त।

वैशम्पायनजी बोले, कि सुबलकुमार शकुनि गान्धारीपुत्रके सहित नरनाथ युधिष्ठिरको उस महायज्ञ राजसूयके और उसके विषयमें दुर्य्योधनको वह बातें सुनके उसका अभिप्राय जानकर प्रिय करनेकी इच्छासे आसन पर

विराजमान प्रज्ञानेत्र बड़े ज्ञानी महाराज धृतराष्ट्रके निकट जाय उसकाल यह बोला, कि हे महाराज! दुर्य्योधन मलिन, दीन, मनहीन, पीला, दुबला बना है, सो आप उसकी ओर ध्यान करें। ज्येष्ठपुत्रका शत्रुसे उपजा असह्य चित्त-दहन शोक-कारण ध्यानमें लाके क्यों नहीं जान लेते? शकुनिसे इतना सुन धृतराष्ट्र दुर्य्योधनसे बोले, बेटा दुर्य्योधन! तुम्हारा इतना कातर होनेका क्या कारण हुआ? हे कुरुवर! यदि वह मेरे सुनने योग्य हो, तो प्रगट करो, यह शकुनि कहते है, कि तुम मैले पीले दुबले बने, पर सोच समझकर मुझको तुम्हारे शोकका हेतु सूझ नहीं पड़ता; क्योंकि यह अपरिमित सम्पद सब तुम्हारेही हाथमें हैं; तुम्हारे भाई, मित्र कभी तुम्हारा चित्त नहीं दुखाते; तुम सुन्दरसे सुन्दर चीर पहिनते हो, अच्छेसे अच्छे पलान्न खाते हो, सुन्दर घोड़ों पर चढ़तेहो, फिर तुम क्यों पीले दुबले बनते हो? हे शत्रुजित! मूल्यवान सेज, मनहरणी रमणी नानाविध साजसे सजे गृह, मनमाने विहारस्थान यह सब देवोंकी भांति तुम्हारी बातके आगे प्रस्तुत हैं, तुम्हारी आज्ञा होतेही पल भरमें बने बनाये मिलते हैं; सो बेटा! ऐसी सम्पद रहतेभी तुम किस सोचमें पड़े हो? दुर्य्योधन बोला, कि मुझको खाने पहिरनेका दुःख तो नहीं है, पर बुरे पुरुषके समान काल-परम्पराकी बाट ताक कर मैं गहरा सा गहरा दुःखभोग सह रहा हूं। जो कोई शत्रुकी वृद्धिको सहनेमें अशक्त होवे शत्रुके दिये दुःखसे प्रजाको बचाय तथा उसे विपदमें डालकर विराजता है, वही पुरुष कहाता है, जो इस समझमें, कि मेरी सम्पद बहुत हुई, सन्तुष्ट रहता है, वह सन्तोषही उसकी श्रीसे रार मचाता है! अभिमान, दया और भयसे आक्रष्ट होकर वह कभी ऊंचे पद पर चढ़ नहीं सकता है। मैं जो कुछ भोगता हूं, युधिष्ठिरकी श्री देखकर उनसे मन हटता है, कुन्तीपुत्रकी अति चमकीली राजश्रीहो हमारी श्रीका काल बनो है। इस समय मैं उसकी श्री तो नहीं देखता, पर तिस परभी वह मेरे मनमें मानो उछल रही है। शत्रुकी वृद्धि और अपनी हीनता देखहीके मैं मलिन, दीन, पीला, दुबला बना जाता हूं। युधिष्ठिर अठासी सहस्र गृह-मेधी स्नातकोंको हरेकके पीछे तीस तीस दासी लगाके पालता पोषता है; इनके सिवाय दूसरे दश सहस्र ब्राह्मण उसके घरमें नित्य सुवर्ण बर्त्तनमें अच्छा अन्न भोजन करते हैं। राजा काम्बोजने उसके यहां कदली नामक मृगके काले श्यामले, उजाले खाल और मूल्यवान कम्बल भेजे थे। राजभवनमें सैकड़ों, सहस्रों खच्चर, घोड़े हाथी और तीस सहस्र ऊंट चरा करते हैं, राजा लोग उन सब उप-हारोंके सहित आके एकत्रित हुए थे। हे पृथ्वीनाथ! महायज्ञ राजसूयमें भूपोंने कुन्ती-पुत्रके लिये भांति भांतिका बहुत धन बटोराथा, वास्तवमें धीमान पाण्डुनन्दनके यज्ञमें जितने धन रत्नका ढेर लगा था, मैंने कहीं पहिले न तो उतना देखा और न सुना था। हे पृथ्वी-नाथ! शत्रुका वह अनन्त धन देखके सदा चिन्तासे आक्रष्ट होके मुझको सुख-चैन नहीं है। होवादि वृत्ति भोगनेहारे गौ युक्त, सैकड़ों ब्राह्मण तीन खर्व्वके समान उपहार लेकर रखवारोंसे रुके जाय द्वार पर खड़े थे। घृत भरे सुवर्णके कमण्डल बलिके लिये लाके वे भीतर जा नहीं सके। देवबाला इन्द्रके लिये भी जो मधु नहीं ले जातीं, समुद्रजल सम्बन्धी वह मधु कांसेके पात्रमें भर कर युधिष्ठिरके पास ले आयी थीं। सहस्र सुवर्णसे बने बहुत रत्नोंसे सुहावने समुद्र-जलसे पूर्ण शंका और अच्छे अच्छे शंख लाके वासुदेवने उनका अभि-षेक किया था। वह सब देखकर मानो मेरो देहमें ज्वर आगया था। हे पिता भरतश्रेष्ठ! शंका लेकर लोग पूर्व्वदक्षिण समुद्रमें जाते हैं

और पश्चिम समुद्रमें भी पधारते हैं पर खेचरी जातिके बिना कोईभी उत्तरी समुद्रमें जा नहीं सकता; अर्ज्जुनने वहां भी जाय अपरिमित धन बटोरा था। विशेष उस यज्ञमें औरभी आश्चर्य लीला देखनेमें आई। वह कहता हूं, सुनिये ऐसा संकेत निश्चय किया गया था, कि भोजनमें लगे ब्राह्मणोंकी संख्या लाख पूरीहो जाने पर एक एक बार शंख बजाया जावे। हे भारत! वारम्बार बजते हुए उस शंखकी धुनकी मैं सुना करता था, तिससे मेरे शरीरके रोवें खड़े हो जाते थे। महाराज! देखनेको आये बहुतेरे भूपोंके भर जानेसे वह सभा नक्षत्रमालाके समान सुहावने अमल आकाशमण्डलसी सुहासिनी बनी थी। हे जननाथ! उन धीमान पाण्डवनन्दनके यज्ञमें पृथ्वीपाल नरेशवर्ग वैश्योंकी भांति सर्व्व प्रकारके रत्नोंके साथ द्विजोंके पुरोसनेवाले बने थे। वास्तवमें जो श्री युधिष्ठिरमें विराज रही है, वह न यमराज, न इन्द्र, न ब्रह्मा, न कुवेर किसी को नहीं है। हे महाराज! पाण्डु-पुत्रकी वैसी अनुपम श्री निहारके मेरा हृदय जल रहा है; मुझको किसी प्रकार चैन नहीं मिलता है। दुर्य्योधनकी इस बात पर शकुनि बोला, कि हे सच्चे पराक्रमी भारत! युधिष्ठिर-की तुमने जो यह अनुपम लक्ष्मी निहारी है, उसके पानेका उपाय मुझसे सुनलो। धरती भरमें मेरे समान चौसड़ जाननेवाले बहुत अल्प हैं। मैं चौसड़में हार जीत का भेद जानता हूं, इसके अनुसार बदी हुई वस्तुओंका ज्ञान रखता और देश कालादिकी विशेषता सम-झता हूं, युधिष्ठिरकी चौसड़में प्रीति तो है, पर वह खेलना नहीं जानता, चौसड़ या युद्धके लिये बुलाये जाने पर वह अवश्यही आवेगा, मैं भी कपटखेलसे उसको निश्चयही परास्त करूंगा और उसकी बड़ी सम्पदको ला सकूंगा, सो तुम उसको बुलवाओ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, शकुनिके ऐसा कहते ही राजा दुर्य्योधनने उसीक्षण धृतराष्ट्रसे यह कहा, कि महाराज! यह चौसड़में दक्ष मामा चौसड़ खेलकर पाण्डु पुत्रोंकी सम्पत हरा चाहते हैं, सो आप उसमें आज्ञा दें। धृतराष्ट्र बोले, कि बड़े बुद्धिमान विदुर मेरे मन्त्री हैं, उन्हीकी परामर्शसे मैं सदा बना हूं। सो उनसे मिलकर यह कार्य्य उचित है वा नहीं, इसका विचार करूंगा; क्योंकि वह बहुदर्शी पुरुष धर्म्मको सामने धर ऐसी अच्छी युक्ति करेगा, कि जिससे दोनों ओर का मङ्गल होवे। दुर्य्योधन बोला, हे महाराज! यदि विदुर आपसे मिलके परामर्श करेंगे, तो वह मेरी इच्छासे आपका चित्त टाल देंगे, आप जो हटावेंगे, आप टुक भी सन्देह न कीजिये, कि मैं भी प्राण छोड़ूंगा। मेरे मरनेसे आप विदुरके सहित सुखी होंगे और पूरी धरतीको भोगेंगे, मुझसे आपको क्या लाभ मिलना है?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि दुर्य्योधनकी वह प्रेमभरी कातर वाणीको सुनके उसकी हां में हां मिलाय धृतराष्ट्रने नौकरोंसे आज्ञा करी, कि मेरी आज्ञासे शिल्पी लोग मेरे लिये एक बड़ी विस्तृत सहस्रखम्भेवाली और सौद्वार युक्त एक मनहरणी सभा रचें और बन जाने पर तुम सब देशसे मायावालोंको बुलवाय उस सभाको रत्नसे खचित करके सुखसे प्रवेश करने योग्य बनवाय मुझसे कहो। महाराज! भूपाल धृतराष्ट्रने दुर्य्योधनके चित्तमें शान्त पहुंचानेको ऐसा निश्चय कर विदुरके पास दूत भेजा; विदुरसे बिना पूछे वह स्वयं किसी कार्य्यको कर्त्तव्यता नहीं निश्चय करते थे, और यह भी जानते थे, कि चौसड़में बहुत दोष हैं; पर पुत्रस्नेहसे आकृष्ट थे, धीमान विदुर वह ब्योरा सुन, और यह समझके कि, झगड़े-का द्वार खुल गया तथा सत्यानाशकी जड़ जमगयी, धृतराष्ट्रके पास आये। वह महात्मा ज्येष्ठ भ्राताके पास आय उनके पावोंमें सिर

लुटाय यह बोले, कि महाराज! मैं आपके इस निश्चयसे सहमत नहीं हो सकता हूं। हे प्रभो! ऐसा करें, कि पुत्रोंके बीचमें बिगाड़ न होवे। धृतराष्ट्र बोले, कि हे ज्ञत! यदि देवोंकी प्रसन्नता हम पर बनी रहे, तो कभी पुत्रोंमें झगड़ा नहीं उभड़ेगा। अतएव चाहे शुभ हो वा अशुभ हो; हित हो वा अहित हो मित्रतासे चौसड़का खेल होने दो! इसमें सन्देह नहीं, कि यह दैवी कार्य्य है। हे भारत! मेरे तुम्हारे द्रोणके और भीष्मके निकट रहनेसे कभी दैवका कहा अनियम नहीं होने पावेगा; सो तुम पवन-समान तेज घोड़ेवाले रथ पर चढ़के आजही खाण्डवप्रस्थको जाके युधिष्ठिरको लिते आओ। हे विदुर! ऐसा मत कहना, कि मुझसे यह बात कही गई हैं; जिस दैवसे यह कार्य्य हो रहा है, मैं उसीको प्रधान करके मानता हूं। धृतराष्ट्रको इस बात पर विदुर यह शोचते हुए, कि अब इस कुलका अन्त हो चुका बड़े दुःखी होय विज्ञवर भीष्मके निकट गये।

अड़तालीस अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हमारे दादे जिससे विपदमें पड़े, भाइयोंमें बड़ा अनर्थ मचाने वाला वह चौसड़ किस रीति पर हुआ था? चौसड़सभामें कौन कौन राजा उपस्थित थे? किन किनने उनको खेलनेमें बहकाया और किन किनने रोका! हे द्विजवर! मैं चाहता हूं, कि आप विस्तृत रूपसे वह कथा कहें, क्योंकि वह पृथ्वीनाशको जड़ था! श्रीशौतिजी बोले, कि राजा जनमेजयके ऐसे पूछने पर सब वेदोंके जानकार महान-चित्त श्रीव्यासजी के शिष्यने उस काल पूर्व्व कालका सब हाल कह सुनाया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ महाराज! आप सुना चाहें तो फिर विस्तार पूर्व्वक यह कथा सुनें। अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्र विदुरका मत जानके दुर्य्योधनसे निरालेमें फिर यह बोले, कि बेटा! चौसड़ खेलनेका प्रयोजन नहीं है; क्योंकि विदुरने इसको प्रशंसा नहीं करी; यह बुद्धिमान पुरुष कभी हमारी अहित को बात नहीं कहता। विदुर जो कुछ कहते हैं, मैं उसे परम हित समझता हूं, सो बेटा! तुम उन्हीका कहना मानो क्योंकि वही तुम्हारे हितकारी हैं। अमरोंके गुरु देवर्षि उदार बुद्धिमान भगवान बृहस्पतिजीने धीमान देवनाथको जो जो शास्त्र सुनाये थे महाकवि विदुर भेदसहित वह सब जानते हैं। हे बेटा! मैंभी उन्हीको परामर्शसे सदा कार्य्य किया करता हूं। हे नरनाथ! अति बुद्धिमान उद्धवजी जैसे वृष्णियोंमें प्रशंसित हैं, तैसेही मेधायुक्त विदुर कुरुओंमें प्रधान गिने जाते हैं; सो बेटा! जब वह असम्मत हैं, तो फिर चौसड़ मत खेलो; चौसड़से मित्रोंमें बिगाड़ होना दीख पड़ता है और मित्रोंमें बिगाड़ होनेसे राज्य जाता रहता है, सो तुम यह इच्छा त्याग दो। पुत्र पर पिता माताका जो कर्त्तव्य सुना गया है, उसीके अनुसार पितरोंके राज्यमें तुम बढ़े हो, लिखे पढ़े हो, शास्त्रमें दक्ष भये हो, और गृहमें सदा पाले पोषे जाते हो। हे महाराज! तुम भाइयोंमें ज्येष्ठ होकर राज्यमें बैठे कौनसा सुन्दर पदार्थ नहीं प्राप्त करते हो! जो भोजन और साधारण के लिये दुर्लभ है तुम वह पाते हो, बड़ाभारी पैतृक राज्य तुमसे और बढ़ा है और सदा आज्ञा प्रचार कर स्वर्गमें विराजमान देवनाथके समान शोभा पाते हो, इस पर भी क्यों शोक करते हो? बेटा! तुम अज्ञान नहीं हो, जानने योग्य सब कुछ जानते हो, फिर भला कहो तो सही, इस दुःखदायी शोकने क्यों तुमको घेर लिया?

दुर्य्योधन बोला, कि हे महाराज! मैं बड़ा पापी हूं, इसीसे शत्रुको उन्नति देखने परभी

खान पान कर रहा हूं। शत्रुकी उन्नति देखनेसे जिसका क्रोध नहीं उमड़ता, पण्डित लोग उसे नीच पुरुष कहते हैं। हे प्रभो! यह साधारण लक्ष्मी मुझे प्रीति नहीं देती, कुन्ती-पुत्रके राजलक्ष्मी विराजती है और पूरी धरतीको उसके पांव पर लोटती देखकर मैं गहरे दुःखसे घेरा गया हूं; अधिक क्या कहूं, मेरा हृदय बड़ा कठोर है, इसीसे इतने दुःख परभी जीता हूं। नीच, चित्रक, कौकुर कारस्कर और लौह जंघगण युधिष्ठिरभवनमें दासों की भांति सिर नवाये रहते हैं धरतीके अन्तभागस्थित हिमालय, समुद्र, जलप्राय देश आदि सब रत्नाकर युधिष्ठिरसे परास्त हुए हैं। हे पृथ्वीनाथ! युधिष्ठिरने मुझको ज्येष्ठ और श्रेष्ठ जानके सत्कारसहित रत्न बटोरनेमें नियुक्त किया था। वहां जितने रत्नसे बने बनाये अच्छेसे अच्छे पदार्थ आये थे उनका परिमाण नहीं हो सकता था। हे भारत! उस धनके लेते मेरे हाथ थक गये थे; मेरे थकने पर उपहार बटोरनेवाले उपहार बटोरनेको मेरी प्रतीक्षामें खड़े रहते थे। मयदानवने विन्दु सरोवरके आस पाससे रत्न लाके वहां जा एक स्फाटक पद्मवाला कृत्रिम सरोवर रचा था, उसको मैंने जलभरा सच्चे सरोवरके समान देखा था; उस भ्रमसे ज्योंही मैंने वस्त्र उतारा त्योंही वृकोदर मुझको शत्रुकी उन्नतिसे मोहित और रत्नवर्ज्जित मानस हंस उठा। हे नरनाथ! यदि बन पड़े तो मैं वृकोदरको उसका बदला लेनेके लिये इस लकड़ीसे मारूंगा, पर यदि उसे मारनेका उत्साह दिखाऊं तो निःसन्देह हमारी भी शिशुपालके समान गति होगी। हे भारत! सपत्नकी वह हंसी मानों मुझको जला रही है। और भी देखिये, मैं कमल वाले वैसेही एक सच्चे तालको पत्थर समान जानके जलमें गिर गया था; इस पर अर्ज्जुनने भीमके साथ मीठी बोलीमें मेरी हंसी की थी और द्रौपदी भी स्त्रियोंके सहित मेरा हृदय काटती हुई हंसी थी। मेरा चीर भीगने पर नौकरोंने राजाकी आज्ञासे दूसरा चीर लादिया था; वह भी मेरे लिये गहरा दुःख हुआ। हे नाथ! और भी एक ठगनेकी बात कहता हूं, सुनिये! ऐसा एक स्थान बना है, कि ठीक द्वारके समान दीख पड़ता है, पर वास्तवमें द्वार नहीं है, उससे ज्यों निकलने पर था, त्योंही सिरमें बड़ी चोट आयी। तब नकुल सहदेव दोनोंने दूरसे मुझको घायल देख कर दुःख दिखाय भुजोंसे मुझे थाम लिया, पर उस दशामें सहदेवने मानो मुसकिराते हुए कहा था, कि महाराज! यह द्वार नहीं है, इधरसे जाइये। महाराज! भीमसेनने उस दशामें बड़े जोरसे हंस कर मुझे ऐसे पुकार कहा था, कि "अजी धृतराष्ट्र-पुत्र!" द्वार इधर है। इनके अतिरिक्त मेरे और भी दुःखका हेतु यह है, कि पहिले जिन सब रत्नोंका नाम तक नहीं सुना था, वे उस सभामें दीख पड़े।

उनचास अध्याय समाप्त।

दुर्य्योधन बोला, हे भारत! भूपालोंने नाना ठौरसे जो सब धन एकत्रित किया था और मैंने अपनी आंखोंसे देखा था उनकी बात सुनिये। महाराज! शत्रुका वह धन देखकर मेरी बुद्धि जाती रही और मैं अपने को भूल गया; अब यह सुनिये, कि किस देशसे कितना धन आया था। राजा काम्बोजने भेड़ मूष बिल्लीके रोवेंसे जड़े, सुवर्ण जालसे मढ़े अगणित अच्छे अच्छे दुपट्टे और छाल, तीतर पक्षीके समान चितकबरे तथा शुकवर्ण नाक वाले तीनसौ घोड़े और पीलू, शमी तथा इङ्गुदफलसे पुष्ट तीनसौ सांड़नी दी थी। हे महाराज! बैल पालनेवाले ब्राह्मण और शूद्र तीन खर्व्व बैलोंका उपहार लाय सभामें न जाने पाय द्वार पर खड़े थे।

चेतादि वृत्ति भोगनेहारे गौयुक्त सैकड़ों ब्राह्मण घृत-भरे सुवर्ण कमण्डलका उपहार लाके भीतर घुस नहीं सके। समुद्रतटके शूद्रगण कार्पासिककी रहनेवाली श्यामली दुबली लम्बेबालवाली सुवर्ण अलङ्कारोंसे सजी सैकड़ों दासी, ब्राह्मणोंके योग्य अच्छे राङ्कव और समकाल तथा गान्धार देशी घोड़े यह सब उपहार बटोरके बट्र आये थे। सिन्धुपार और समुद्र तटके गह्व और पलवाड़ियोंमें उपजे जो मनुष्य देवमातृक और नदीमातृक धान्यसे जीविका कर लेते हैं, वे वैराम, पारद, आभीर और कितवगण बहुविध रत्न,सुवर्ण, बकरे, भेड़, गौ, ऊंट आदि पशु, फलसे उपजे मधु और भांति भांतिके कम्बलका उपहार लेकर सभामें जानेसे रोके जाय द्वार पर खड़े थे। प्राग्ज्योतिषनाथ म्लेच्छोंके स्वामी शूर बली महारथी राजा भगदत्त यवनों सहित वायुसे वेगवान तेज-चलनेवाले सुजात घोड़े और दूसरे उपहार लेकर सभामें न जाने पाय द्वार पर खड़ा था। तब वह प्राग्ज्योतिषनाथ भगदत्त बड़े मूल्यवान मणिका बना आभूषण और अमल गजदन्तकी मूठवाले खड्ग देकर चलने पर हुआ। इनके अतिरिक्त मैंने वहां अनेक देशोंसे आये दोनेत्र ललाट-नेत्र औष्णिक, अन्तवासी रोम देशी नर भक्षी और एक पांव वालोंको द्वार पर रोके जाते देखा था। करदेनेको आये भूप वङ्ग तीरसे उपजे, अनेक जातिके, बड़े बड़े शरीर धारी काले गलेवाले, दूर जाने वाले, भली सिखाये पढ़ाये सब दिशाओंमें प्रख्यात, यथा प्रमाण और मनहरण वरण धारण किये दश सहस्र रासभ और अनेक सोना चांदीका उपहार ले आये थे, और वह सब देके युधिष्ठिरके यहां जा सके थे। एक पांव वाले इन्द्रगोप कीटके समान लाल शुक्ल,सन्ध्याके समय उगे बादल वरण इन्द्र-धनुषके समान शवल वरण, ऐसे नाना वर्णवाले मनकी भांति तेज चलेले घोड़े और बहुमूल्य सुवर्ण लाकर युधिष्ठिरको दिया था। चीन शक ओड्र, बर्बर, वनवासी वृष्णिवंशी, हारहूण कृष्णहिमाचलवासी, नीप, अनूप आदि बहुविध लोग उनकी भांति भांतिकी अपरिमित वस्तु उपहारके लिये देनेको आके द्वार पर रोके गये। वङ्गतटवासी काले गलेवाले बड़े देह वाले सौकोस दौड़नेवाले यथा प्रमाण वर्णवाले और कूलमें कोमल दशो दिसामें प्रसिद्ध, भले सिखाये पढ़ाये खच्चर जनके सदृश बने राङ्कव कीटज पट्टज आदि विनका पासका बना चमकीला लच्छेदार पद्मसे सहस्रों चीर भेड़ोंकी कोमल खाल, बड़े बड़े तेज खड्ग, ऋष्टिक और परश्वध पश्चिम देशमें उपजे नोंखदार परशु, भांति भांतिकी गन्धरस और सहस्रों रत्नादि सहित सब उपहार लेके द्वार पर खड़े थे। शक, तुखार कङ्क, रोमश और शृङ्गीलोग दूर चलनेहारे अगणित बड़े बड़े गज, दश करोड़ पद्म सुवर्णादिका उपहार लाके द्वार पर रोके गये। पूर्वदेशी नरेश बड़े मूल्यवान आसन, बिछौना यान मणि काञ्चनसे बने सुन्दर कवच, भांति भांतिके शस्त्र, सुवर्ण बाघ चालसे ढंपे भले सिखाये घोड़े सहित अनेक आकारके रथ, सुन्दर सुन्दर गज, कम्बल, अनेक भांतिके रत्न, नाराच अर्द्ध नाराच आदि बहुविध शस्त्र यह सब बड़ो बड़ो वस्तु देने परभी महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञभवनमें जा नहीं सके।

पचास अध्याय समाप्त।

दुर्य्योधन बोला, कि हे अनघ! भूपालोंने यज्ञके लिये युधिष्ठिरको जो अपरिमित धन दिया था,उन अनेक प्रकारके उपहारोंको देनेकी कथा कहता हूं, सुनिये। जो सुमेरु और मन्दर गिरिवरोंके बीचमें स्थित शैलोदा नाम्नी नदीकी दोनों ओर कीचक नामक छिद्रवाले बांसकी सुन्दर छांहमें बैठे सुख भोगते हैं, वह खस, एकासन, अर्ह प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिन्द, तङ्गन, और परतङ्गन भूपवर्ग चिउंटियोंसे उठाये

पिपोलिक नामक द्रोण-समान सुवर्णका ढेर लाये थे। महावली पहाड़ीगण मनहरण कालिवरण और चन्द्रमा समान शुभ्रवरण चँवर, हिमाचलके फूलोंसे उपजे बहुत स्वादिष्ट मधु, उत्तर कुरुसे जल सहित माला, उत्तर कैलाशसे औषधि और दूसरे सब उपहार बटोरके सिर-नाय कर खड़े होके नरेश युधिष्ठिरके द्वार पर रोके गये थे। हे प्रभो! हिमाचलके आधे भागमें सूर्य्योदय शिखर पर, करुष देशीय समुद्र के छोरमें और लौहित्य पर्व्वतकी दोनो ओर बसनेवाले भूपवर्ग और फलमूलाहारी चमड़ा परिधायी कुटिल शस्त्रधारी, कुटिल कार्य्यकारी किरातोंकोभी मैंने वहां देखा था। महाराज! वे बहंगियों पर चन्दन, अगुरु, ढेरके ढेर चर्म्म-रत्न सुवर्ण और गन्धके पदार्थ, किरात जातिकी दश सहस्र दासी और दूरदेशी सुन्दर सुन्दर मृग तथा पक्षी बटोर बटोरके और पहाड़ वादम्व से एकत्रित किये बहुत तेजयुक्त सुवर्ण और दूसरे उपहार लेके द्वार पर रोके गये थे। हे पृथ्वीनाथ! कैरात, दरद, दर्व्व, शूर, वैयामिक, औदुम्बर, दुर्व्विभाग, पादर, वाल्हिक, काश्मीर कुमार, घोरक, हंस-कायन, शिवि, त्रिगर्त, यौधेय, मद्र, कैकय, अम्बष्ठ, कौकुर, तार्च्य, वस्त्रप, पह्लव, वशष्टि, मौलिय, शूद्रक, मालक, पौण्ड्रिक, कुक्कुर, शक, अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र शाणावत्य, और गय यह सुजाति गोष्ठीमन्त, श्रेष्ठ और शस्त्रधारी क्षत्रियगण युधिष्ठिरके लिये सैकड़ों मुद्रा लाये थे। हे भारत! वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, पुण्ड्रक, दौवालिक, सागरक, पत्रोर्ण, शैशव और बहुतेरे कर्णप्रवार वहीं आय राजशासन अनुसार द्वारवानोंसे ऐसा कहे गये, कि आप कालकी प्रतीक्षा कर सकते हो और सुन्दर उपहार लाये हो तो द्वारके भीतर जा सकोगे।' आगे उनमेंसे हरेक काम्यक सरोवरकी दोनों ओर उपजे, ईखकी लकड़ीके समान दांतवाले सुवर्ण कक्ष-वाले कुथसे आच्छादित होनेके कारण मानो पद्म समान वर्ण वाले पहाड़ सदृश सदा उन्मत्त कवच लगाये, धीरज धरे अच्छे अच्छे कुलोंके दशसौ हस्ती देकर द्वारमें घुस सके थे। नाना दिशा तथा देशोंसे आये यह सब और दूसरे अगणित मनुष्य तथा महात्मा रत्नसे बनी वस्तु लाये थे। हे कुरुनन्दन! महाराज! इन्द्रके साथी चित्ररथ नामक गन्धर्व्वनाथने पवनके आगे चलनेवाले चारसौ घोड़े दिये थे। गन्धर्व्व तुम्बुरुने प्रसन्न चित्तसे आमके पत्तेके रंगके सुवर्ण सदृश चमकीले सौ घोड़े दिये। शूकर नामक म्लेच्छोंके सुयोग्य भूपने सैकड़ों गज दिये। मत्स्यनाथ विराटने उपहारके लिये दो सहस्र सुवर्ण-वरण हस्ती बटोरे थे। हे नरनाथ! राजा वसुदानने पांशु राज्यसे छब्बीस हाथी वेग और सत्ववान युवा दो सहस्र सुवर्ण समान चमकीले घोड़े तथा दूसरे उपहार लाके पाण्डवोंको दिया था। हे महाराज! राजा यज्ञसेनने चौदह सहस्र दासी स्त्री सहित दश सहस्र दास सैकड़ों गज, गज सहित छब्बीस रथ, यहां तक, कि अपना सब राज्य पाण्डवोंकी सेवामें धर दिया था। वृष्णि-नन्दन वासुदेवनेभी अर्ज्जुनका मान बढ़ानेको चौदह सहस्र अच्छे हस्ती दिये, क्योंकि कृष्ण धनञ्जयकी और धनञ्जय कृष्णकी आत्मा हैं। अर्ज्जुन कृष्णको जो कुछ क्यों न कहें वह सब विना शङ्का पूरा कर सकते हैं; यहां तक, कि वह धनञ्जयके लिये स्वर्गलोककोभी छोड़ सकते हैं और अर्ज्जुनभी कृष्णके लिये प्राण तक सौंप सकते हैं। चोलनाथ और पाण्ड्य-नाथ मलयागिरिसे सुवर्णके घड़े भर भरके सुगन्धि चन्दन-रस, दर्द्दुर पर्व्वतसे बहंगियों पर चन्दन अगुरुका ढेर, चमकीले मणिरत्न और सुवर्ण समान सुहावने पतले चीर यह सब बटोरके द्वार नहीं पा सके। सिंहल वालोंने समुद्रका सारभाग वैदूर्य्यमणि और मोतीके

लच्छे तथा सैकड़ों गज और कम्बलको भेट दीथी। लाल अपाङ्ग तथा श्याम अङ्गवाले, मनुष्य मणिके टुकड़ोंसे सजे चादरा लाके द्वारपर खड़े थे। युधिष्ठिरकी प्रीतिके लिये ब्राह्मण, अजेय क्षत्रिय, वैश्यवर्ग और शूद्रोंनेभी भेंट दी थी। प्रीति और बड़े मानसे म्लेच्छभी युधिष्ठिरके भवनमें गये थे। इस प्रकार उत्तम मध्यम और अधम सब भांतिके कुलोंसे उपजे सब वर्णोंही वहां आजमे थे। नाना देसोंसे नाना जातिके लोगोंके वहुरनेके कारण जान पड़ता था, कि मानो युधिष्ठिरके भवनमें भूमण्डल भरके लोग एकत्र आ मिले हैं। भूपवर्गकी भांति भांतिका अपरिमित धन देते देखकर दुःखके मारे मुझमें मृत्यु की इच्छा हुई थी। हे महाराज! पाण्डवोंके जितने नौकर चाकर हैं और जिनके युधिष्ठिर कच्ची पक्की खिलाते हैं उनकी बात कहता हूं, सुनिये तीन पद्म अयुत फौलवान और घुड़-सवार सेना एक अर्बुद रथारूढ़ और अगणित पैदल हैं। कहीं कच्ची भोजन-सामग्री तौली जाती हैं और पुण्य धुन सुन पड़ती हैं। वास्तवमें मैंने युधिष्ठिरके भवनमें सर्व्व वर्णोंमेंसे किसीको विन खाया विन पीया, विन सत्कृत नहीं पाया। ठासी सहस्र गृहमेधी स्नातक विप्रोंकी हरेकके पीछे तीस तीस दासी नियत कर युधिष्ठिर पाल पोष रहे हैं। और वे भी सुप्रसन्न और सुतृप्त होय उनके शत्रु-नाशकी कामना कर रहे हैं इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर भवनमें दश सहस्र ऊर्द्धरेता यतिलोग सुवर्ण पात्रमें भोजन करते हैं। हे पृथ्वीनाथ! कुवड़े वांवने तकको भोजन मिला वा नहीं इसकी खोजके लिये द्रौपदी स्वयं भूखी रह कर पूछ पाछ करती फिरती है; हे भारत! विवाहसम्बन्धसे पाञ्चाल लोग और मित्रता से अन्धक तथा वृष्णिगण केवल यह दो कुन्ति पुत्रकी कर नहीं देते नहीं तो और सब उनके कर-दाता बने हैं।

एकावन अध्याय समाप्त।

दुर्य्योधन बोला, कि जो सब महानचित महाराज सत्यप्रेमी अतिव्रतक्षेमी, महाविद्यावान अच्छे वा युवान, वेदान्त और यज्ञोंमें दक्ष, धृति-रक्ष, लज्जाशील धार्म्मिक तथा यशोवन्त हैं, वे मूर्द्धाभिषिक्त राजालोग भी सब प्रकारसे युधिष्ठिरकी उपासना करते हैं। दक्षिणाके लिये राजोंसे लाये कांसके बने एक एक दोहनेके पात्र सहित बहुतेरो गाय ठौर ठौर देखी। हे भारत! अभिषेकके लिये नरेशवर्ग वहां घवराके मनसे नाना भांतिके भाण्ड सत्कार सहित स्वयं उठाय उठाय ले आये। राजा वाह्लीक काञ्चन जटित रथ लाये। राजा सुदक्षिणने उसमें काम्बोजसे उपजे साढे चार घोड़े जोत दिये। महाबली सुनीथ प्रसन्न होय अनुकर्षण अर्थात् नीचे कि लकड़ी और चेदिनाथ स्वयं उठाय ध्वजा लाये। राजा दाक्षिणात्य कवच, राजा मगध माला और पगड़ी, बड़े चापधारी वसुदान साठ् वर्ष अवस्थाके गजेन्द्र, मत्स्यनाथ सुवर्णसे आच्छादित अक्ष, एकलव्य दोनो जूते, अवन्तीनाथ अभिषेकके लिये वहुविध जल, चेकितान तून, काशीनाथ धनुष और शाल्व स्निग्ध-छत काञ्चन-भूषित मुष्टियुक्त असि उठा लाये, अनन्तर बड़े तपधारी धौम्य और व्यासजी नारद, देवल और असित मुनियोंको आगे रख अभिषेकका कार्य्य करने लगे। महर्षि लोग प्रसन्न मनसे अभिषेकके निकट बैठे। जामदग्न्य सहित दूसरे वेदपारग महात्माभी ऐसे मन्त्र उचारते हुए वहुत दक्षिणादाता युधिष्ठिरके निकट गये, कि जैसे देवलोकमें सप्तर्षिगण देवराज इन्द्रके पास जाते हैं। उस कालमें सच्चे पराक्रमी सात्यकिने उनके सिर पर छत्र

लगाया। धनञ्जय और भीमसेन पंखे डोलाने लगे और नकुल सहदेव श्वेत चंवर भालने लगे। जिस शङ्खको पूर्व्व कल्पमें प्रजापति जीने इन्द्रको दिया था, उस विश्वकर्म्मासे सहस्र निष्कोंसे भले बने वरुण सम्बन्धी शंखको शिक्यके ऊपर धरके समुद्र युधिष्ठिरके लिये लाया था। उस शंखसे कृष्णाको उन्हे अभिषिक्त करते देखकर मैं मोहसे आकृष्ट हुआ। हे पिता! लोग पूर्व्वसे पश्चिम समु को जाते और दक्षिण समुद्रको भी पधारते हैं पर उसको समुद्रमें खेचरी जातिके बिना कोई भी जा नहीं सकता। पाण्डवोंने उस स्थानमें भी शासन फैलाया है। वहांके सैकड़ों शङ्ख मङ्गलके लिये बजने लगे। उन सबोंके एकही कालमें बजनेसे बड़ा शब्द फैला, जिससे मेरी सब देहके रोंवे खड़े हो गये। वे भूप जिनको अपना कुछ भी तेज नहीं है, उस शब्दसे धरती पर लोट गये। तब सत्व-युक्त वीर्य्यवन्त एक दूसरेको प्यारे देखने-हारे धृष्टद्युम्न, पांचो पाण्डव सात्यकि और कृष्ण यह आठ उन भूपोंको चेत खोते और मुझको हंसीसे हाथ धोते देखकर बहुत हंसने लगे।

हे भारत! अनन्तर अर्ज्जुनने प्रसन्न मनसे श्रेष्ठ द्विजोंको सुवर्ण सिंग वाले पांच सौ बैल दिये। वास्तवमें प्रभावो कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर हरिश्चन्द्रकी भांति इस प्रकार राजसूय लाभ कर जैसे परम श्रीमान बने, न रन्तिदेव न नाभाग न यौवनाश्व, न मनु, न वेणपुत्र राजा पृथु, न भगीरथ, न ययाति, न नहुष कोई भी वैसे नहीं होसके। हे विभो भारत! हरिश्चन्द्रके समान पृथा कुमारकी ऐसी श्री देखकर मेरा जीना क्योंकर मङ्गलदायी समझा रहे हैं। हे नरनाथ! अन्धेको हर चलानेके लिये बैल जोतनेसे वह जैसे जिधर तिधर हो जाते हैं, वैसेही विधाताने अन्धे बनके विपरीत भाव ज्येष्ठ और कनिष्ठका जोड़ा बना दिया है; देखिये कनिष्ठकी दिन पर दिन वृद्धि ही रही है और ज्येष्ठ निकृष्ट बने जाते हैं। हे कुरुवर! यह देखकर सब प्रकारसे आलोचना करने पर मुझको सुख नहीं मिलता है, इसीसे ऐसा दुबला, मैला और शोकसे बावला बना जाता हूं।

बावन अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि ऐ बेटा! तुम मेरे सब बेटोंसे बड़े हो और बड़ी राणीके गर्भसे हो, सो पाण्डवोंका द्वेष मत करो, क्योंकि द्वेषीको इतना कष्ट होता है, कि मृत्युके कष्टसे कुछ भी विशेषता नहीं रहता। हे भरतश्रेष्ठ! युधिष्ठिर कपट करना नहीं जानता, तुम्हारे समान धन रखता और तुल्य मित्रोंसे घेरा जाता है; विशेष किसीका द्वेष नहीं करता; सो तुम्हारे समान जनको कब उसका द्वेष करना उचित है? ऐ बेटा! युधिष्ठिरके जितने अनुचर और योद्धे हैं, तुम्हारे भी उतने हैं, फिर तुम क्यों भाईकी लक्ष्मी हरनेको मन दौड़ा रहे हो? इतने लोभी मत बनो, मान जाओ, शोक न करो। पर यदि वैसी सम्पद चाहते हो, तो पुरोहित लोग सप्ततन्तु, नामक महायज्ञ करें। भूपवर्ग बड़े मानसे तुम्हारे लिये भी प्रीति सहित बहुत धन और रत्न आभूषण ले आवेंगे। ऐ बेटा! पराये धनको ओर हाथ बढ़ाना बड़े नीचका कार्य्य है, जो अपने धर्म्ममें बने रहके अपनेही धनसे प्रसन्न रहते हैं वेही सुख पाते हैं। पराये धनकी चेष्टा न करना अपने कर्म्मका सदा उद्यम करना, और प्राप्त धनको बचाना यही कल्याणके लक्षण हैं। विपदके कालमें न घबराकर, काममें डंटा रहना, सदा उद्यमी बनना, अप्रमत्त और नम्रचित्त होनाही सदा लोगोंका कुशल-मूल है। देखो, पाण्डुपुत्र तुम्हारे भुज-स्वरूप हैं, सो उनको मत काटो, और भाइयोंके उस धनके लिये मित्र-बिगाड़में

मत फंसो। हे महाराज! पाण्डुके बेटोंका कभी द्वेष मत करो, तुम्हारे भाइयोंका जितना धन है तुम्हाराभी उतनाही है। बेटा! मित्र बिगाड़से बड़ा अमङ्गल होता है; देखो जो तुम्हारे दादे हैं वही उनके भी दादे हैं। हे भरतवर! तुम्हारा चित्त बहुत बिगड़ा हो, तो यज्ञमें धन दान, प्रेमभरी कामनाओंका अनुभव और श्रद्धा छोड़के कामिनियोंके साथ विहार कर शान्त होओ।

तिरपन अध्याय समाप्त।

दुर्योधन बोला, कलछुल जैसे दाल रस चख नहीं सकती, तैसेही जिसने बहुतसे विषयों-को सुनाहै, पर कुछभी धी-शक्ति नहीं रखता, वह कभी शास्त्रार्थ समझ नहीं सकता, पर आप समझ बूझके भी एक जोंकसे जुड़े दूसरे जोंकके समान मुझको भ्रममें डाल रहे हैं; अथवा स्वार्थ पर आपकी दृष्टि नहीं है, या मेरा द्वेष कर रहे हैं? वास्तवमें आपके शासनसे चलनेसे तो इन धृतराष्ट्रपुत्रोंका होचुका, क्योंकि आप चौसड़से शत्रुका धन लेनेके समान उपस्थित कार्य्यकी भावी अर्थात् यज्ञकालिक निश्चय करते हैं। जिसका बाट दिखाने-वाला पराथी शिक्षासे चलता है उसका बाट खोना बहुत सहज है, वैसे नायकसे चलाये जानेवाले क्योंकर सच्ची बाटसे चल सकते हैं? महाराज! आपकी बुद्धि पक्की होगयी,आपने बड़ोंकी सेवा की और इन्द्रियोंको जीत चुके हैं, फिर हमको स्वकार्य साधन करनेसे क्यों वारम्बार हटाते हैं? देखिये, वृहस्पतिजीने कहा है, कि लौकिक व्यवहारसे राज्य-व्यवहार अलग है; सो राजाको अप्रमत्त बन सदा स्वार्थकी चिन्तामें मगन रहना चाहिये। महाराज! क्षत्रियका व्योपार जयही पर बना है; सो चाहे वह धर्म्म वा अधर्म्म हो, अवश्य ही करना चाहिये। जिससे अपनी वृद्धि निश्चित है, उसका फिर क्या विचार करना है? हे भरतश्रेष्ठ! सारथि जैसे लकड़ीसे घोड़ोंको वशमें लाताहै, वैसे शत्रुकी प्रज्वलित श्री हरनेकी इच्छा रखनेवाले क्षत्रियोंको वशमें करना चाहिये। चाहे गुप्त हो वा प्रकटित हो जिस किसी उपायसे शत्रु वशमें आजाय उसीको शास्त्रोंके जानकारोंको शस्त्र कहते सुना है, जिससे काटा जाता है वह शस्त्र नहीं है। हे नरनाथ! इसकी कोई लिखापढ़ी वा प्रमाण नहीं है, कि कौन शत्रु वा मित्र है। जो जिसको दुःख पहुंचाता है, वही उसका शत्रु कहा जाता है। हे महाराज! असन्तोषही सम्पदकी जड़ है, सो मैं उसको ग्रहण कर रहा हूं। जो पूरी उन्नतिका प्रयत्न करता है वही अच्छे नियमका जानकार है। सम्पद् वा धनका मोह करना उचित नहीं है; क्योंकि पहिलेका बटोरा धन किसीसे हराभी जा सकता है. जब कि बलसे हर लेनाही राजाका धर्म्म कहा गया है। देवराज इन्द्रने द्रोह न करनेका प्रण ठानने परभी नमुचिका सिर काटा था। शत्रुसे ऐसा सनातन व्यवहार करनेमें उनकी सम्मति थी, इसीसे उन्होंने ऐसा किया था। सर्प जैसे गड्ढेमें पड़े मेढक आदि जन्तुओंको निगल जाता है, वैसे विरोध न करनेवाले राजा और ग्रह न छोड़नेवाले सन्यासीको धरती निगल जाती है। हे पृथ्वीनाथ! पुरुषका स्वभावहीसे बना एकभी शत्रु नहीं है; जिसके साथ तुल्य व्योपार रहता है, वही शत्रु है, दूसरा नहीं बढ़ते हुए शत्रुका जो मोह वा उपेक्षा करता है, क्रमसे बढ़ती हुई व्याधिके समान वह शत्रु-हो उसकी जड़को काट देता है। वृक्षकी जड़से उपजी दीमक जैसे विना विलम्ब उसको मार डालती है, वैसे छोटा शत्रुभी पराक्रममें बढ़ता जाय; तो दूसरे पक्षको शीघ्रही नष्ट कर देता है। हे अजमीढ़! शत्रुकी लक्ष्मी आपकी प्रीति न दे; देखिये, सत्यवान मनुष्यको नियम-रूप भार सिर पर चढ़ाना चाहिये। जो

जन्मादि जीवदेहकी स्वाभाविक वृद्धिके समान अर्थकी उन्नति चाहता है, वह बिना सन्देह ज्ञातियोंमें बढ़ा करता है। वास्तवमें विक्रमही शीघ्र बढ़नेका हेतु है। वास्तवमें सम्पद बिना हाथ लगे मैं फिर सुखसे सो नहीं सकूंगा। मैं चाहे उस श्रीको लाभ करूंगा, और नहीं तो युद्धमें सो जाऊंगा। हे महाराज! हमारी उन्नतिका निश्चय नहीं ; पर पाण्डव सदा बढ़े जाते हैं, सो ऐसी दशामें मेरे जीनेका क्या प्रयोजन है?

चौवन अध्याय समाप्त।

शकुनि बोला, कि हे जयी-शिरोमणि दुर्य्योधन! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी जिस लक्ष्मीको देखकर तुम दुःख करते हो, मैं चौसड़से उसे हर लूंगा। हे महाराज! उनको बुलवाओ। देखो, जाननेवाले चौसड़ द्वारा चढ़के न जानने-वालोंको परास्त करते हैं। हे भारत! बाजी मेरा चाप है, अक्ष बाण हैं, अक्षोंका भीतरा भाग गुण है और कपट चाल मेरा रथ है। दुर्य्योधन बोला, कि महाराज! यह चौसड़के सुजान मामा चौसड़ खेलके पाण्डवोंकी राज-श्री हरलेनेका उत्साह करते हैं, सो आप उसकी आज्ञा दीजिये। धृतराष्ट्र बोले, कि मैं महात्मा भ्राता विदुरके शासनसे बना हूं, सो उससे मिलके यह कार्य्य उचित है वा नहीं उसका निश्चय करूंगा। दुर्य्योधन बोला, कि हे कौरव! विदुर पाण्डवोंका हित जितना ढूंढ़ते हैं, हमारा वैसा नहीं करते, सो वह बिना सन्देह इस कार्य्यसे आपकी बुद्धि टाल देंगे। हे कुरुनन्दन पराये बुद्धिबल लेके पुरुषको अपना कार्य्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि कार्य्य-विषयमें दोका मत एक नहीं होता। बुरा मनुष्य चौसड़ आदि भयावने कार्य्योंको तज अपनी रक्षा कर पावसके क्लेशयुक्त कीटके समान बिना चेष्टा रहके घट जाता है। मनुष्यके मङ्गलके लिये व्याधिभी बाट नहीं निहारती और यमराजभी आसरा नहीं जोहते सो जब तक व्याधि नहीं है, तबतक मङ्गल पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। धृतराष्ट्र बोले, कि ऐ बेटा! बलियोंसे झगड़ेमें हाथ डालनेकी इच्छा कदापि मुझे प्रिय नहीं है। देखो, शत्रुता विकार लाती है,और वही बिना लोहेका बना शस्त्र बन जाता है। हे राजकुमार! झगड़ा उपजानेवाले भयावने चौसड़ रूपी अनर्थको तुम अर्थ समझ रहे हो, किसी प्रकार एक बार उसमें फंसनेसेही तेज असि और सायक रचे जाते हैं। दुर्य्योधन बोला, कि पूर्व्वकालवाले चौसड़की रीति बना गये हैं, उसमें नतो सत्या-नाश और न युद्ध-लीला होती हैं, सो अब शकुनिकी बात पर जी जमाय आप शीघ्र सभा रचनेकी आज्ञा करें। देखिये, चौसड़में फंसनेसे हमारे शत्रु हरानेरूपी स्वर्गके द्वार खुल जायंगे। वास्तवमें उसके करनेवालोंके लिये उस प्रकार सहजमें हाथ लगनेवाला स्वर्गही योग्य है। ऐसा होनेसे आपसे पाण्डवों-कोभी तुल्यता होगी, सो आप उनसे चौसड़का प्रबन्ध कीजिये। धृतराष्ट्र बोले, कि तुमने जो कहा, उस पर मेरा मन नहीं चलता है। हे नरनाथ जो तुम चाहो, सोही करो, पर उस रीति पर कार्य्य करके पीछे पछताओगे। क्योंकि ऐसी अधर्म्मयुक्त बात कभी हित नहीं कर सकती। बुद्धि-विद्यासे चलनेवाले दूरन्देश विदुरने यह सब जाना था, अब क्षत्रिय-प्राण-नाशी वह बड़ा भय दैववश आ खड़ा हुआ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि दैवसे चित्त खोये महाचित्त राजा धृतराष्ट्रने दैवहीको श्रेष्ठ और उससे पार पानेके अयोग्य समझके वह बातें कहके पुत्रकी बात पर ध्यान जमाय नौकर चाकरोंको विशेष आज्ञा दी, कि तुम ध्यान लगाय सहस्र खम्भेवाली, सुवर्ण वैदुर्य्य

आदिसे सुहावनी सौ द्वारवाली, लम्बाई में सौ सौ कोस फैली, तोरण-स्फटिक नामक शीघ्र एक बढ़िया सभा रचो। तब सहस्रों प्रज्ञावान शिल्पियोंने उनकी आज्ञा सुनके त्वरा लगाय शङ्का भगाय, ध्यान जमाय वे विलम्ब वैसी सभा बनाय, उसमें सब वस्तु लाय धरी। आगे प्रसन्न मनसे उस स्वल्प कालमें बनी, नाना रत्नोंसे बनी ठनी सुवर्णसे खची, नाना वरणोंके आसन बिछी मनहरणी तथा सुहावनी सभाकी बात राजासे कह सुनायी। आगे विद्यमान नरनाथ धृतराष्ट्र मन्त्रियोंमें प्रधान विदुरसे यह बोले, कि तुम मेरी आज्ञासे राजकुमार युधिष्ठिरके निकट जाय उनको शीघ्र यहां लेते आओ। वह भाइयोंसे मिलके मेरी यह बहुरत्नजटित मूल्यवान सेजआसनोंसे आच्छादित सुन्दरतासे सुशोभित सभाको निहारें और इसमें मित्र चौसड़ खेलें। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! नरनाथ धृतराष्ट्रने पुत्रका मत जान और दैवको अपार मान ऐसा किया। उस समय विप्रवर विदुर अनुचित रीति पर ऐसी कहे जाय भाईकी हांसे हां न मिलाय यह बोले, कि महाराज! आपकी यह आज्ञा मुझे अच्छी नहीं लगती; आप कदापि यह न कीजिये। मैं कुलका मूल उखड़नेका भय खाता हूं। हे नरनाथ! मुझको यह शङ्का होती है, कि चौसड़से आपके पुत्रोंमें भेद होके निःसन्देह बिगाड़ मचेगा।

धृतराष्ट्र बोले, कि विदुर! यदि दैव विरोधी न बनें, तो बिगाड़सेभी मुझको दुःख नहीं पहुंचेगा। देखो, यह विश्व स्वाधीन नहीं है, दैववश स्थापित करनेहारे विधाताहीके नियमसे चेष्टित हो रहा है; सो मेरे शासनसे आज तुम कुन्तीकुमार अजेय राजा युधिष्ठिरके निकट जाय उनको तुरन्त ले आओ।

पचपन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा धृतराष्ट्रसे बलपूर्वक नियुक्त होकर विदुर सुशिक्षित बड़े वेगमण्डित, श्रेष्ठ, बलिष्ठ घोड़ोंके द्वारा इन्द्रप्रस्थको महानचित्त पाण्डवोंके निकट गये। वह बड़े बुद्धिमान धर्मात्मा नरनाथ युधिष्ठिरकी राजधानीकी बाट लेके उनके सम्मुख आय स्तुति गवइये द्विजोंसे पूजे जाय उसमें गये; आगे कुवेरभवनके सदृश राजभवनको पाय धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास जा पहुंचे। अजमीढ़नन्दन सत्य-सदन माहात्म्यवान राजा युधिष्ठिरने उनकी यथावत पूजाकर अन्तमें धृतराष्ट्र और उनके पुत्रोंकी कुशल-क्षेम पूछी। युधिष्ठिर बोले, कि हे क्षत्त! आपका चित्त उदास दीखता है, आप कुशलसे तो आये? धृतराष्ट्रके बेटे उनके विरोधी तो नहीं बने? प्रजा भी तो उनके वशमें है? विदुरजी बोले, कि हे महाराज! ज्ञातियोंसे घेरे इन्द्र समान भाग्य धरे महात्मके पूरे राजा धृतराष्ट्र पुत्रों सहित कुशलसे हैं; वह सिर नाये पुत्रोंसे मन मिलाये शोकसे हाथ धोये मन दृढ़ किये अपनी उन्नति पर सन्नद्ध हैं। पर कुरुनाथने तुम्हारी कुशल क्षेम और धनादिके व्यर्थ नाशका प्रश्न पूछके यह कहा है, कि ऐ बेटा! तुम्हारे भाइयोंकी यह सभा तुम्हारी सभाकीसी बनी है, सो तुम आय इसे निहारो। हे पार्थ! भाइयोंसे मिलकर इस सभामें मित्र-चौसड़ खेलो और आनन्द लूटो; तुम्हारे आनेसे हमभी प्रसन्न होंगे और सब एकत्रित कौरव भी सुख पावेंगे। हे महाराज! महात्मा राजा धृतराष्ट्रने वहां जिन चौसड़बाजोंको नियुक्त किया है, उन कपटियोंको तुम वहां बैठे पाओगे, इसीको कहनेके लिये यहां आया हूं। सो इस राजाज्ञाको पालन करो। युधिष्ठिर बोले, कि हे क्षत्त! चौसड़ खेलनेमें हममें बिगाड़ होना यदि निश्चय हो, तो कौन समझ बूझकर उस बिगाड़ पर मन चलावेगा? आपही क्या समझते हैं,

कह दीजिये; हम तो आपहीकी बात पर बने हैं। विदुरजी बोले, कि मैं भलेही जानता हूं चौसड़- अनर्थ की जड़ है, और इसे रोकनेके विषयमें बड़ा प्रयत्न भी किया था, तिस पर भी राजाने मुझको तुम्हारे यहां भेज दिया है; सो हे विद्वान! यह सुनके जो कुछ उचित हो करो। युधिष्ठिर बोले, कि राजा धृतराष्ट्रके अतिरिक्त पुत्रोंके वहां कौन कौन दूसरे कपटी खेलनेको बैठे हैं? जिन चौसड़बाजोंसे मिलके हमको अपरिमित धनसे खेलना होगा, उसकी बात पूछता हूं, कहिये। विदुरजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! चौसड़के बड़े जान-कार मर्य्यादा छोड़के खेलनेहारे फेंकनेमें तेज हाथ गान्धारनाथ शकुनि, राजा विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र, और जय यह सब चौसड़बाज वहां उपस्थित हैं। युधिष्ठिर बोले, तब तो वहां बड़े बड़े कपटी धूर्त्त चौसड़बाज जा मिले हैं; पर मैं क्या कर सकता हूं, विधाताकी आज्ञासे दैववश यह सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है, यह कदापि स्वाधीन नहीं है। हे कवे! पिता सदा पुत्रको इच्छासे चलते हैं; सो मैं पुत्रका पक्षपात करनेवाले राजा धृत-राष्ट्रकी आज्ञासे झगड़ीले चौसड़में फसना नहीं चाहता, पर आप मुझको जैसा कहेंगे, अवश्य वही करूंगा; फिर यदि शकुनि गाल बजाय मुझे सभामें न बुलावे तो मैं बिना इच्छा उससे न खेलूगा; मेरा सदासे यह निश्चय है, कि बुलाने से कदापि मुह नहीं मोड़ता।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मनाथ विदुरसे ऐसा कहके यात्रा योग्य सजने धजनेकी आज्ञा देकर दूसरे दिन स्वजन, द्रौपदी आदि नारी और सहचरों सहित पधारे; कोई तेजयुक्त पदार्थ गिर कर जैसे नेत्रोंकी शक्ति हर लेता है, वैसे दैवही मनुष्यकी बुद्धि सुझा देता है; मनुष्य मानो जालमें फंसके विधाताके वशमें हो जाता है।" यह पृथानन्दन शत्रुदमन युधिष्ठिर उस बुलावेका कुछ विचार न कर विदुरके साथ चले। कालके नियमानुसार धृतराष्ट्रसे बुलाये जाकर शत्रुनाशी राजापाण्डुकुमार वाह्लीकदत्त रथ पर चढ़के वेश पहिरके और राजलक्ष्मीसे प्रकाशित होके ब्राह्मणोंको आगे कर भाइयों-सहित हस्तिनापुरको गये। वहां पहुंचकर वह धर्म्मात्मा वीर्य्यवन्त महाभुज प्रभु, धृतराष्ट्रके भवनमें जाय उनसे मिले। पहिले उन्होंने भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप और अश्वत्थामासे मिलके यथारीति वन्दन आलिङ्गनादि किये, पीछे सोमदत्त, दुर्य्योधन, शल्य, शकुनि, दुःशासन आदि भाइयों, जयद्रथ, सब कुरुओं, तथा जितने भूप वहां पहिलेसे आये हुए थे, उन सबोंसे भेंट की। तिसके पीछे वह महाभुज सब भाइयोंसे मिलके धीमान महाराज धृत-राष्ट्रके वासगृहमें गये। वहां वह तारोंसे सदा घिरी रोहिणीकी भांति पुत्रवधुओंसे घिरी पतिव्रता सती गान्धारीसे भेंट कर उनके पांव लगे। और गान्धारीनेभी उनको अशीस दिया। अन्तमें युधिष्ठिरने वृद्ध पिता प्रभु धृतराष्ट्रको भेंट की। हे महाराज! राजा धृतराष्ट्रने उनके और भीमसेन आदि दूसरे चार पाण्डवोंके सिरका घ्राण लिया। कौरव-लोग सुन्दर दर्शनीय पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंको निहार कर सब प्रसन्न हुए। अनन्तर पाण्डव-गण सबोंकी आज्ञासे रत्न-मण्डित गृहमें गये, वहां पहुंचने पर दुःशला आदि नारियें ने उनकी भेंट। द्रौपदीकी परम प्रकाशमती उन्नति देखकर धृतराष्ट्रकी पुत्रबधुओंकी आंखें पीरायीं। पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंने स्त्रियोंसे वार्त्तालापकर व्यायामपूर्व्वक नित्य कृत्य कर सजधज लिया। आगे दिव्य चन्दन लगाय आन्हिक कर लेकर कल्याणकी इच्छा पर ब्राह्म-णोंसे स्वस्ति कहवाय, सुन्दर अन्न भोजन कर सोनेके घरको गये; आगे जो कुछ पाना योग्य है,सब पाय प्रीति सहित नारियोंके गीत सुनते

हुए सोगये! शत्रुपुरजयी कुरुश्रेष्ठ वह शुभरात रतिविहारसे कटी,वे सुखसे सोय,थकावट मिटाय, वन्दियोंसे स्तुति किये जाय, सबेरे उचित समय पर नींदसे जग उठे और आह्निक कृत्य कर जुयाड़ियोंके प्रणाम नमस्कार लेते हुए सुहावने सभा-मण्डपमें गये।

छप्पन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि युधिष्ठिरादि पाण्डव सभामें जाय, भूपोंसे मिल, पूजनीय जनोंको पूज और अवस्थाके अनुसार सभोंको गले लगाय और सम्भाषणादि कर बड़े मूल्यवान चादरोंसे ढंपे आसनों पर विराजे। उनके और सब दूसरे नरेशोंके आसनों पर बैठने पर सुबलकुमार शकुनि युधिष्ठिरको पुकारके यह बोला, कि महाराज! चौसड़ खेलने और तुमको देखनेको आये भूपोंसे सभा छागयी है; सब तुम्हारी बाट ताकते हैं, सो अब चौसड़ गिराय खेलका नियम बना लेना चाहिये।

युधिष्ठिर बोले, कि हे राजन्! कपटचौसड़ बड़ा पाप है, इसमें नतो चात्रियधर्म्म दीख पड़ता और न कोई निश्चित नीति है, फिर आप जूएकी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? देखिये ठग-नेमें जुआड़ी जैसे बड़ाई मानते हैं, बुद्धिमान लोग उसकी टुकभी प्रशंसा नहीं करते हैं? सो हे शकुने! निष्ठुरके समान हमको अनुचित रीतिसे मत हराना? शकुनि बोला, जो बड़े बड़े जूआड़ी हार जीतकी समझ रखते हैं, बिपचीकी चतुरता पकड़ लेते हैं और जूएकी बहुविध चेष्टासे नहीं थकते हैं, वही जूएका स्वाद जानते हैं और उसकी सब चाल सह लेते हैं। हे पार्थ! जूएमें हार जीतकी बाजी हमको भय दिखा सकती है और वही इसमें दोषयुक्त गिना जाता है, इस लिये हे महाराज! तुम मत डरो, आओ हम खेलें; अधिक बिलम्बका प्रयोजन नहीं है, अब ठहरा लो, क्या बाजी बदोगे। युधिष्ठिर बोले, कि जो स्वर्गादि लोक दिखानेहारे इन सब कर्म्म ज्ञानादिके विषयमें सदा घूमा करते हैं, उस असित मुनिपुत्र मुनिश्रेष्ठ देवलने यह कहा है, कि जूआड़ियोंके साथ कपट करके चौसड़ खेलना बड़ा पाप है, धर्म्मसहित युद्ध जीतनाही अच्छा खेल है, जूआ अच्छा नहीं है। आर्य्यपुरुष म्लेच्छ भाषा नहीं कहते और और छल नहीं करते; कुटिलता और जूआ-चोरी बिना लड़नाही अच्छे पुरुषका व्रत है। हे शकुन! हम जिस धनसे शक्तानुसार ब्राह्म-णोंका उपकार पहुंचानेको सीखनेका बड़ा प्रयत्न करते हैं, आप मर्य्यादा तजके खेल कर उसे मत हरलीजिये, शत्रुओंको व्यर्थ पराजय मत कीजिये। ठगकर सुख वा धन पाना मैं नहीं चाहता; ठगनेकी इच्छा न रहने परभी जूआड़ियोंकी यह रीत सराही नहीं जाती।

शकुनि बोला, कि हे युधिष्ठिर! देखो जयकी इच्छारूपी शठताके साथ श्रोत्रिय श्रोत्रिय के पास जाते हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष शठताहीके साथ तलके अज्ञानीके पास पहुंचते हैं, और विद्वान पुरुषभी शठताके साथ अल्पज्ञानी जनोंके निकट जाते हैं; वसी शठताको लोग शठताही नहीं कहते। उसी प्रकार चौसड़में सुशिक्षित जन चौसड़ लेकर शठताके साथ उन जनोंके समीप जाते हैं, सो वहभी शठता गिनी नहीं जा सक्ती। हे युधिष्ठिर! शठ-ताहीके साथ अस्त्रज्ञ पुरुष अस्त्र न जानने वालेके पास और बलशाली, दुर्ब्बलके पास उपस्थित होते हैं, इसी प्रकार सब कार्य्योंहीमें शठतापूर्ब्बक व्यवहार होता है; सो तुमभी इस प्रकारसे मेरे पास आकर यदि शठताही समझते हो—यदि जूएमें तुमको भय होता हो, तो मत खेलो। युधिष्ठिर बोले, कि मेरा यह व्रत निरूपित है, कि बुलाये जाने पर नहीं लौटता हूं; हे राजन्! विधाताही बलवान

है, मैंभी दैवके वशमें आगया हूं; साम्प्रत यह कहो कि इस जनसमाजमें किससे मेरा खेल होगा और मुझसे हरवार बाजी रख सके ऐसा कौन विद्यमान है; आगे खेलो। दुर्य्योधन बोला, कि हे पृथ्वीनाथ! मैं धनरत्न सब देता हूं, मेरे यह मामा शकुनि मेरे लिये खेलेंगे। युधिष्ठिर बोले, कि एकके लिये दूसरेका खेलना मुझको अनुचित जंचता है, हे विद्वन्! तुमभी यह बात मानते होगे, पर यदि विशेष इच्छा हुई हो, तो खेल आरम्भ करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जूआ आरम्भ करनेकी बात ठहर जाने पर, वे सब उपस्थित राजा धृतराष्ट्रको सामने बैठाकर सभा-मण्डलमें बैठे। हे भरतनन्दन! भीष्म, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, और महामति विदुर अति अप्रसन्न चित्तसे उनके पीछे बैठे। महाभाग देवोंके एकत्र मिलित होनेसे स्वर्गकी जैसी शोभा होती है, उन सब सिंह-समान गर्द्दनवाले, अति तेजस्वी नरेशोंके एकत्रित होकर अनेकानेक विचित्र आसनों पर पृथक पृथक और एक एकमें दो दोके बैठनेपर उस सभाकी वैसीही शोभा हुई। वास्तवमें वे सब कोई सूर्य्य-मूर्त्ति, शूरतासे सुशोभित और वेदज्ञ थे। दर्श-कोंके बैठने पर, मित्रद्यूत आरम्भ हुआ। युधिष्ठिर बोले, कि राजन् दुर्य्योधन! मैं सागर जलसे उत्पन्न श्रेष्ठ सुवर्णसे सुशोभित इस सुन्दर बहुमूल्यमणिमय हारको बाजी रखता हूं, इसके बदलेमें तुम किस धनकी बाजी रखोगे, दुर्य्योधन बोला, कि मेरे पास भी सब मणि हैं, और धन अपरिमित है, पर मुझे धनका अह-ङ्कार नहीं है; चाहे जो द्रव्य हो, आप यह बाजी मार लीजिये। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि आगे चौसड़के अच्छे जानकर शकुनिने पाशाओंको लिया और उसीक्षण युधिष्ठिरसे कहा, कि यह मैं जीता।

सतावन अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कि शकुने! केवल कपट-चौसड़होसे बाजी जीतली, क्या इसीलिये अह-ङ्कार कर रहे हो? बहुत अच्छा आओ, हम सहस्रों बाजी रखकर खेलेंगे; मेरे सहस्रों सुवर्ण मुद्रा-भरे अनेक सन्दूक, कोष, अक्षय धन और अनेक सुवर्ण चांदीकी धातु हैं, हे राजन्! मैं इस धनकी बाजी रखता हूं, मैं इससे तुम्हारे साथ खेलता हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर शकुनिने कुरुकुलमें श्रेष्ठ अक्षय धनवान पृथ्वीनाथ ज्येष्ठ पाण्डवसे कहा, यह मैं जीता। महाराज युधिष्ठिर बोले, कि बादल और समुद्रके समान प्रतिष्ठाप्रचारी, सुन्दर चक्र और उपकरणधारी, घुंघुरु-जालसे बहारी और हृदयानन्द-कारी जो राजरथ हमको यहां लाया है और जिसे अपने पद-विक्रमसे किसी भूचर जीवको न बचाने-हारे, श्वेत पद्मोंकेसमान कान्ति-धरे, राज्यभरके प्यारे आठ श्रेष्ठ घोड़े खींचते हैं, मैं इस बार उसी जयशील पवित्र रथराजकी बाजी रखता हूं। राजन्! उसीसे मैं तुम्हारे साथ खेल रहा हूं। यह सुन-कर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि भद्रिका, शंखके कड़े तथा जुगनू आदि भांति भांतिके मणि-काञ्चनयुक्त अलङ्कारोंसे सजा-वनी, महामूल्य माल्यभरणधारिणी, सुन्दर वस्त्र पहिनी, चन्दनरागसे सुवासिनी, चौसठ कलाओंसे सुहासिनी, विशेष नृत्य गीतमें अति गुणी मेरी एकलक्ष युवती दासी हैं; मेरी आज्ञासे वे देव, द्विज और राजोंकी सेवा करती हैं; हे राजन्! इसवार उस दासीरूपी धनकी बाजी रखता हूं, मैं उसीसे तुम्हारे साथ खेलता हूं। यह सुनकर, छलपूर्व्वक पाशा फेंककर शकुनि युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि मेरे सदावस्त्र पहिरे हुए, कुण्डल-धारी, कार्य्यदक्ष, अनुकूल, प्राज्ञ, बुद्धि-मान, और जितेन्द्रिय सैकड़ों अल्प अवस्थावाले

दास हैं; वे निशदिन हाथोंमें पात्र लेके अतिथियोंको भोजन कराते हैं; हे राजन्! इसबार मेरी उसी दासरूपी धनकी बाजी रही, उसीको लेके मैं तुमसे खेलता हूं। यह सुनके छलपूर्व्वक पाशा फेककर शकुनि युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले कि हे सुबलकुमार! मेरे सुवर्णके हौदावाले, अलंकृत पद्मरागसे रङ्गे हुए, हेममाली, अच्छे दांतवाले राजोंकी चढ़नेयोग्य, युद्धमें सर्व्व प्रकारके शब्द सहनेवाले, हरकी लकड़ीके समान दन्तयुक्त, बड़ेभारी शरीरधारी, घने मेघके समान एक सहस्र मत्तहस्ती हैं। वे सब पुरोंको भेदनेमें समर्थ हैं; और प्रत्येककी आठ आठ हस्तिनी हैं। हे राजन्! अबको मैं उसी धनकी बाजी रखता हूं। उसीसे मैं तुमसे खेलता हूं।

युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर सुबलकुमार शकुनि मानों उनकी हंसी करके बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि मेरे जितने हाथी हैं, रथभी उतनेही हैं; वे सब सुवर्ण दण्डीवाले, भण्डोंसे सुहावने, सुशिक्षित घोड़ोंसे बने ठने और अयुत युद्ध करनेवाले, रथियोंसे सुशोभित हैं। उन सब रथियोंमेंसे हरएकको चाहे युद्ध करना पड़े वा नहीं सहस्र सुद्रातककी मासिक वेतन मिलती है; हे राजन्! इसबार मेरी उस रथरूपी धनकी बाजी रही; उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। युधिष्ठिरके इतनी बात कहनेपर, खिलाड़ियोंमें मन्दबुद्धि शकुनिने उनसे कहा, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि शत्रुनाशी चित्ररथने युद्धमें हारके धनञ्जयको प्रसन्न होकर, जो गन्धर्व्वसम्बन्धी सुवर्णसे सुशोभित तित्तिरि, कल्माष घोड़े दिये थे, अबकी मेरी उन्होंकी बाजी रही; हे राजन्! उसी धनसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। यह सुनकर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेककर युधिष्ठिरसे बोला, यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि मेरे दश सहस्र अच्छे रथ और गाड़ी हैं; उनमें सदा अनेक प्रकारके वाहन जुते रहते हैं; और प्रत्येक वर्णसे सहस्र सहस्र वीर पुरुष चुनके साठ सहस्र योद्धे नियुक्त किये गये हैं। वे सब महाबली, और-पराक्रमी, खीर पीनेवाले और शाली चावल भोजन करनेवाले हैं; हे राजन्! इसबार मेरी उसी धनकी बाजी रही; मैं उससे तुम्हारे साथ खेलता हूं।

यह सुनकर शकुनि छल-पूर्व्वक पाशा गिराके युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता युधिष्ठिर बोले, कि तामेके पात्रोंसे आच्छादित मेरे चारसौ निधि हैं; उनमेंसे प्रत्येक अमूल्य श्रेष्ठ, विशुद्ध, जातरूप और सुवर्णके पांच द्रोणके समान हैं। हे राजन्! इसबार मेरी उसी धनकी बाजी रही। मैं उससे तुम्हारे साथ खेलता हूं। यह सुनकर शकुनि छल-पूर्व्वक पाशा फेककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता।

अठावन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकार सर्व्वनाशी भयावना चौसड़ आरम्भ होने पर सर्व्व शङ्काओंके हरनेवाले विदुर पुकार कर धृतराष्ट्रसे यह बोले, कि महाराज! मृत्युके द्वार पर पहुंचे-हुए मनुष्यको जैसे औषध पीनेकी रुचि नहीं होती, वैसेही आपको मेरी बात सुननेकी इच्छा नहीं होसकती है, तिस परभी मैं जो कुछ कहता हूं, उसपर विशेष ध्यान दीजिये! भरतकुलका नाश करनेवाले दुर्य्योधनने जब जन्म लेतेही गोमायुके समान विकट खरसे शब्द किया। था, तब इसमें सन्देह नहीं है, कि वह अपने सबलोगोंको ध्वंश करेगा। दुर्य्योधनरूपी गोमायु गृहमें वास कर रहा है, आप मोहवश वह नहीं समझते हैं; साम्प्रत शुक्राचार्य्यके नीति पूरित वचन मुझसे सुनिये। मधुका व्योपारी मधु पाके टीलेको समझ नहीं सक्ता है, मधुके लोभसे पर्व्वतके उस ऊंचले भागमें चढ़के वह मधुमेंही मग्न रहता है; सो पतनकोभी प्राप्त

करता है। यह दुर्य्योधनभी मधुके समान चौसड़में उन्मत्त होकर भले बुरेकी आलोचना नहीं करता है; यह समझ नहीं सकता है, कि महारथियोंसे शत्रुता-साधनके लिये शीघ्रही नष्ट हो जायगा। महाराज! आप जानते होंगे, पहिले भोजोंसे विरोध रखते हुए कंशको अन्धक यादव और भोजोंने एकामिल होके त्याग दिया था; उनकी आज्ञासे जब शत्रु-विनाशी श्रीकृष्णचन्द्रने उसका नाश किया था, तब सब ज्ञातियोंने आनन्दित हाके सैकड़ों वर्षकी वृद्धिको प्राप्त किया था! उसी प्रकार आपकी आज्ञासे अर्जुन सुयोधनका नाश करें; इस पापात्माका नाश होनेसे कौरवगण सुखसे आनन्द अनुभव करते रहेंगे। हे महाराज! एक कौएके बदले इन पाण्डवरूपी मयूरोंको प्राप्त कीजिये। सियारके बदले शार्दूलोंको मोल लीजिये, विना कारण शोक-समुद्रमें मत डूबिये। देखिये, सब जीवोंके अभिप्रायोंके जानने-वाले, सर्व्वज्ञ, सर्व्व शत्रुओंको भय दिखानेवाले शुक्राचार्य्य जम्भासुरको त्यागनेके लिये महा-सुरोंसे यह वचन बोले थे, कि "वंशकी रक्षाके लिये एक पुरुषको त्याग देना चाहिये, ग्रामकी रक्षाके लिये वंशको त्याग देना चाहिये, जन-पदके लिये ग्राम और अपने लिये पृथ्वी तकको त्यागना चाहिये।' हे शत्रुनाशी! किसी राजाने वनसे सुवर्ण उगलनेवाले कई एक पक्षियोंको अपने गृहमें लाकर मारा था। भोग और लोभवश अन्धा बनकर उसने सुवर्णकी आशा-से वर्त्तमान और भविष्यत् दोनों कालोंके मङ्गलको एकही समयमें नष्ट किया था। अत-एव हे कुरुश्रेष्ठ! आप मोहवश और धनकी कामनासे पाण्डवोंके साथ द्रोह न कीजिये; यदि करेंगे, तो उस पक्षीनाशी पुरुषके समान पीछे क्लेशित होंगे। हे भारत! माली जैसे फुलवाड़ीमें वृक्षोंपर स्नेह दिखाकर वार वार फूल तोड़ता है, वैसेही आप पाण्डवरूपी वृक्षोंसे क्रमशः जमते हुए फूलोंको लीजिये; अङ्गार बनानेवालेको भांति उन्हें जड़से न जलाइये! हे राजन्! एकत्रित पृथा-पुत्रोंके साथ ऐसा कौन है, जो लड़ सकता है? दूसरोंकी बात छोड़ दीजिये, इन शूरोंके साथ स्वयं इन्द्रभी नहीं लड़ सकते हैं।

उनसठ अध्याय समाप्त।

विदुर बोले, जूआ झगड़ेकी जड़ है, उससे आपसमें बिगाड़ होता है, इस लिये वह केवल भय लानेके लियेही खेला जाता है; धृतराष्ट्र-का यह पुत्र दुर्य्योधन उसकी शरण लेकर भयावनी शत्रुता रच रहा है। बड़ी भारी सेना रखनेवाले प्रतीप वंशी शान्तनुके पुत्रगण तथा वाह्लिक आदि राजसमूह सब दुर्य्योधनके दोषसे क्लेशकी दशा प्राप्त करेंगे। जैसे मद-माता हुआ बैल आप अपना सिंग तोड़ डालता है, वैसेही इस दुर्य्योधनके पागलपनके कारण राज्यसे मङ्गल दूर होता जाता है। हे महाराज! जैसे बालकसे चलाये जानेवाली नाव पर चढ़के मनुष्य बीच समुद्रमें भारी विपदकी दशामें होता है, उसी प्रकार जो पुरुष स्वयं वीर और कवि होके अपनी बुद्धिका अपमान करके पराये इच्छानुसार कार्य्य करता है, उसकीभी वैसीही दशा हो जाती है। दुर्य्योधन युधि-ष्ठिर से बाजी रखके खेलकर जयको प्राप्त करता है, इससे आप बड़े प्रसन्न होते हैं; पर ऐसीही जयसे लड़ाई और उसीसे पुरुषोंका नाश होता है। आपने यह जो द्यूत-रूपी बुरे कार्य्यका प्रारम्भ किया है, इसका फल केवल नीचेको ओर गिरना है; यह युक्ति करके सम्पूर्ण मन-पीड़ाओंसे आपके चित्तको अधिकार करनेका कारण हुआ है। यद्यपि आपने यह नहीं सोचा होगा, कि आपके मित्र युधिष्ठिरसे झगड़ा मचेगा, तौभी यह आपके लिये अनुचित हुआ है। हे प्रतीप-वंशी शान्तनु-

कुमारो! तुम कौरवोंकी सभामें पण्डितोंके योग्य इन वचनोंको श्रवण करो; दुष्ट दुर्य्योधनकी हां में हां मिलाके भयानक-रूपसे प्रज्वलित अग्निमें मत गिरो। अजातशत्रु युधिष्ठिर यदि चौसड़के नशेमें डूबके क्रोधको न रोकें, तो जब हकोदर, अर्जुन और नकुल तथा सहदेव क्रोधित होंगे, तब उस घोर लड़ाईमें तुममेंसे कौन द्वीप अर्थात् आश्रयका स्थान बनेगा? हे महाराज! आप धनकी खानि हैं; चौसड़ न खेलके भी आपको चाहे जितने धनकी इच्छा हो उतनाही पासक्ते हैं; पाण्डवोंसे यदि बहुत धन जीत लें, तो उससे आपका क्या होगा? आप तुच्छ धनके अभिलाषी न होकर पाण्डवोंकोही अनमोल धनकी समान प्राप्त कीजिये। सुबल-पुत्रके खेलका वृत्तान्त हम जानते हैं; यह पर्व्वतका रहनेवाला चौसड़से अच्छी रीति ठगना जानता है; हे भारत! शकुनि जहांसे आया है, वहीं चला जावे, आप पाण्डवोंको लड़ाईमें सन्नद्ध न कीजिये!

दुर्य्योधन बोला, कि हे चत्त! तुम धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी निन्दा करके सदा शत्रुओंके यशके घमण्डमें रहते हो! हे विदुर! हम जानते हैं किसको तुम प्रिय समझते हो, तुम सदा हमको मूर्खोंके समान घृणा करते हो। प्रिय जय और अप्रिय पराजयमें जिसकी इच्छा है, वह उसकी निन्दा और प्रशंसा करनेकी रीतिसेही विशेष रूपसे जानी जाती है; तुम्हारी जिह्वा और चित्तहीसे तुम्हारे हृदयका आशय प्रगट होता है; तुम मनही मनमें हमारे प्रतिकूल तो होही, पर भीतरी प्रतिकूलतासे तुम्हारी बाहरी प्रतिकूलता बहुत अधिक है। हे चत्त! तुमको मानों सर्पके समान हमने गोदमें स्थान दिया है, तुम बिल्लीकी तरह पालनेवालेकी हिंसा करते हो। देखो, पण्डित-लोग कहते हैं, कि पालनेवालेके विरुद्ध खड़े होनेके समान अधिक पाप नहीं है; उस घोर पापसे तुम्हे क्यों नहीं भय होता है? हे चत्त! हम शत्रुओंको जीतकर बड़ा भारी फल पाचुके हैं, इससे तुम हमको कठोर वचन मत कहो; शत्रुओंसे मित्रता करनेको तुम बहुत उद्यत हो, उस मोहके लियेही वारम्बार हमारी हिंसा करते हो, मनुष्य अनुचित वचन कहके लोगोंका शत्रु बन जाता है; और शत्रुको प्रशंसाके स्थानमें गुप्त विषयको गुप्त रखता है। अतएव हे निर्लज्ज! तुम हमारे आश्रयमें रहके क्यों हमारे कार्य्यमें बाधा देते हो? तुम्हारा जो मन चाहता है, तुम यहां वही कह देते हो। अजी विदुर! तुम हमे तुच्छ मत समझो, तुम्हारा मन हम जान चुके हैं, तुम बड़ोंसे ज्ञान सीखो, लोकोंमें जो यश प्राप्त कर चुके हो उसकी रक्षा कर दूसरोंके कार्य्यमें मत बझो। अजी विदुर! यह समझके, कि मैं कर्त्ता हूं, तुम आगे हमारा अपमान मत करना और अहङ्कारकी बातें भी न प्रगट करना; मैं यह तो नहीं पूछता हूं, कि क्योंकर हमारा हित होगा, सो हे चत्त! तुम सहनशील पुरुषोंको अब मत क्रोधी बनाओ। एकही पुरुष सबका शासन करता है, दूसरा शासनेहारा नहीं है; वह शासनेहारा गर्भरूपी विस्तर पर लेटे हुए पुरुषकाभी शासन करता है, मैं उसका शासन मानता हूं। जल जैसे नीचेकी ओर जाता है, वैसेही वह मुझे जैसे नियुक्त करता है, मैं वैसेही कार्य्य करता हूं। जो पुरुष सिरसे पहाड़ फोड़ता है, और सर्पको भोजन देता है, उसको बुद्धिही उन कार्य्योंका शासन करती है, उसी प्रकार जूआ हानिकारी होने परभी मेरी बुद्धिहीने मुझे उसमें प्रवृत्त कराया है। पर जो पुरुष बलसे औरोंका शासन करता है, वह वैसे अनुचित शासनसे शत्रुओंको प्राप्त करता है; मित्रता दिखाने परभी पण्डितलोग उसको तुच्छ समझते हैं। जो मनुष्य तेज जलनेवाले पदार्थ कपूरको

जलाके बड़े बेगसे उसे बुझानेको दौड़ता है, वह कहीं उसका भस्मभी शेष नहीं देख सक्ता है; उसी प्रकार हमलोग पाण्डवोंसे बैरकी अग्नि बालके यदि शीघ्र उसे बुझानेकी चेष्टा न करें, तो वे जड़-सहित नष्ट होंगे। अजी चत्त! अन्य पचवाले, डाह करनेवाले और विशेष अहित चाहनेवाले मनुष्यको कदापि गृहमें स्थान न देना चाहिये; इसलिये हे विदुर! जहां मन चले, तुम वहीं चले जाओ; असती नारीको भली रीतिसे समझाने बुझाने परभी वह पतिको छोड़ देती है।

विदुर बोले, कि महाराज! ऐसे कारण से अर्थात् अहङ्कारके वचनोंसे नीतिशिक्षा देकर जो लोग आश्रय लिये हुए पुरुषको त्याग देते हैं, तुम बिना पचपात यह प्रगट करो, कि तुम्हारा चरित्र कैसा है! वास्तवमें राजोंका चित्त बहुत चञ्चल है, वह पहिले समझाके पीछे मूषल मारते हैं, अरे मन्दबुद्धि राजपुत्र! तुम अपनेको पण्डित और मुझको मूर्ख समझते हो, पर विचारके देखा, कि जो पुरुष शरण लिये हुए मनुष्यको पहिले मित्रके समान पूजकर पीछे दोष लगाता है, उसीको लोग मूर्ख कहते हैं। वास्तवमें श्रोत्रियके गृहमें रहती हुई बुरे चरित्रवाली स्त्रीके समान दुष्टबुद्धि जनको कभी हित पथमें नहीं ले जाया जाता है। हे भरतश्रेष्ठ! साठ वर्षके पति पर जैसे कुमारीका मन नहीं चलता है, वैसेही हितउपदेश करनेवाले पर तुम्हारी रुचि नहीं हुआ है। हे राजन! अबसे यदि तुम हित तथा अहित सब कार्य्योंमें प्यारी बातें सुना चाहते हो, तो स्त्री, जड़, लकवेसे जकड़े और वैसेही मनुष्योंसे पूछना! संसारमें पाप चिन्तायुक्त प्रिय बोलनेवाले मनुष्य सहजहीमें मिलते हैं, पर चाहे कड़ी हो, परन्तु हितकारी वाणीके कहनेवाले तथा सुननेवाले दोनों ही बहुत कम मिलते हैं। जो मनुष्य प्रिय तथा अप्रिय पर ध्यान देकर धर्म्मानुसार कार्य्य करता है और अप्रिय होने परभी हितकारी वाणी कहता है, उसीसे राजाकी सहायता होती है। महाराज! जो मन्यु दवाके समान व्याधि हरनेवाली, कड़वी वस्तुओंसे बनी, दुःखदायी, सन्ताप लानेवाली कीर्त्तिनाशकारी, रूखी और दुर्गन्धी है तथा जिसे साधुलोगही पीते हैं असाधु नहीं पी सके, उसेही पीकर शान्त हो जाओ। मैं सदा पुत्रोंसहित धृतराष्ट्रके यश धनकी कामना करता हूं, अब तुमको जो होना है, वही होवे; तुमको मैं यह दण्डवत करता हूं; ब्राह्मणलोग मेरी स्वस्ति निर्णय करें। हे कुरुनन्दन! पण्डित पुरुष देखनेमें विषसमान सर्पको कदापि क्रोधित नहीं करते, मैं यत्नपूर्व्वक तुमसे केवल इसी उपदेश-वचनको कहता था।

साठ अध्याय समाप्त।

शकुनि बोला, कि हे कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर! तुम पाण्डवोंका बहुत धन हार चुके हो, अब यदि कोई धन हारनेमें बाकी हो, तो प्रगट करो। युधिष्ठिर बोले, कि हे सुबलकुमार शकुनि! मैं जानता हूं, मेरा अपरिमित धन है, तुम क्यों धनकी बात पूछते हो? तुम दश सहस्र, लच्च, करोड़, अर्व्बुद, खर्व्व निखर्व्व, शंख, पद्म, महापद्म, मध्य, परार्द्ध, वा उससे भी अधिकको बाजी रखो। हे महाराज! मैं इस धनकी बाजी रखता हूं, उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि हे सुबलकुमार! पर्णाशासे लेकर सिन्धुनदीके पूर्व्वतक मेरे अनेक गौ, घोड़े, बैल और अगणित बकरे, भेड़ आदि जो कुछ धन रखे हैं, इसपारी उन सबकी बाजी रखता हूं, उसीसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर

युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज! पुर, जनपद, भूमि, ब्राह्मणोंके बिना औरोंका धन और ब्राह्मणोंके बिना अन्य सब पुरुष मेरे शेष धन बचे हैं, इसवार मेरी इसी धनको वाजी रही; उसीसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला कि, यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज! यह सब राजकुमार जिनसे अलंकृत होकर शोभा पाते हैं, इसपारी मेरी उन्ही कुण्डल, निष्क आदि सब राजअलङ्कारोंकी वाजी रही, इस धनसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि श्याम देहयुक्त, लाल नेत्र, सिंहसमान गर्द्दनवाले महाभुज युवापुरुष एकले नकुल को मैं इसवार बाजीमें रखता हूं इन्हीको मेरा धन समझो। शकुनि बोला, कि महाराज युधिष्ठिर! तुम्हारे प्यारे राजकुमार नकुल हमारे वशमें होगये, अब तुम किस वस्तुकी वाजी रखकर खेलोगे? श्रीवैशम्पायनजी बोले,कि यह कहके शकुनिने पाशाओंको लेलिया और युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि यह सहदेव धर्म्मपूर्व्वक शासन करते हैं, और इस लोकमें पण्डित नामसे प्रसिद्धभी हैं, मेरे बड़े प्रियपात्र होने परभी अप्रियके समान बाजी रखनेके अयोग्य, उसी राजपुत्रकी बाजी रखकर मैं खेलता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि छल पूर्व्वक पाशा फेंकके युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। महाराज! तुम्हारे प्यारे इस माद्रीकुमारको मैंने जीत लिया; जान पड़ता है, कि भीमसेन और अर्ज्जुन इनसे भी अधिक प्रिय हैं। युधिष्ठिर बोले, कि रे मूर्ख! नीतिकी ओर दृष्टि न देकर, प्रेमसे बंधे हुए हम भाइयोंमें बिगाड़की चेष्टा करना तेरे लिये बड़ेही अधर्म्मका कार्य्य है; शकुनि बोला, कि हे महाराज! उन्मत्त होनेसे मनुष्य गड्ढेमें गिर जाता है, वहां स्थाणुके समान जड़ताको प्राप्त करता है। हे भरत-श्रेष्ठ! तुम मुझसे बड़े और गुणवान हो, सो मैं तुम्हे नमस्कार करता हूं। तुम मेरी अनुचित वाणीको क्षमा करो। युधिष्ठिर! जुआड़ी लोग खेलते समय उन्मत्तके समान जो सब पागलपनकी बातोंको कह देते हैं, उन्हे जागनेकी बात न समझिये; सोनेकी दशामें भी कभी उनकी चिन्ता नहीं करते। युधिष्ठिर बोले, कि हे शकुने! शत्रुओंके जयकारी बलशाली जो राजपुत्र नौकाके समान बनकर हमको युद्ध-सागरके पार पहुंचाते हैं, बाजीके अयोग्य होने परभी लोकोंमें उन महावीर अर्ज्जुनकी बाजी रखकर मैं खेलता हूं।

श्रीवैशम्पानजी बोले, कि शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। महाराज युधिष्ठिर! पाण्डवोंमें प्रधान चापधारी इस सव्यसाची धनञ्जयको तो मैं जीत चुका। अब तुम्हारी बाजीके योग्य जो शेष बचा है, तुम्हारे प्यारे उस भीमसेनकी बाजी रखकर खेल। युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज दानवोंके शत्रु इन्द्रके समान जो एकले हमारे पथ दिखानेवाले तथा युद्धमें सबसे पूर्व्व चलने वाले हैं, जो वक्र-दर्शी, धन्वाकी भांति भौंवाले महात्मा, सिंहसमान गर्द्दनवाले और सदा अमर्षसे पूरित हैं, बाहुबलमें जिनके समान कोई दूसरे पुरुष विद्यमान नहीं हैं, जो शत्रुनाशी इसभूमण्डलके गदा-धारियोंमेंसे सबके अगुए हैं, बाजीके अयोग्य होने पर भी उस राजकुमार भीमसेनकी बाजी रखकर मैं खेलता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शकुनि छलपूर्व्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। हे कुन्तीपुत्र तुम बहुत धन, घोड़े,

हारी यहांतक कि भाइयों तकको भी हार चुके ; अब यदि तुम्हारा कोई धन जीतनेमें शेष हो, तो कहो। युधिष्ठिर बोले, कि मैं सब भाइयोंसे बड़ा और उनका प्रेम-पात्र हूं, साम्प्रतमें स्वयं पराजित होने पर जो कार्य्य करना होता है, मैं स्वयं जीते जाकर उसी कार्य्यके करनेको प्रस्तुत हूं !

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर छलपूर्व्वक शकुनि पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। महाराज! तुम्हारा अपनेको पराजित करना बड़ा पाप हुआ, इसमें सन्देह नहीं है, कि शेष धन रहते अपनेको पराजित करना पापका कारण है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि बड़ा भारी जुआड़ी शकुनि बाजीके विषयमें युधिष्ठिरसे इतनी बातें कहके वहां बैठे हुए, प्रसिद्ध वीरोंके साथ पाण्डवोंमेंसे प्रत्येककी हारका वृत्तान्त कहकर फिर युधिष्ठिरसे बोला, कि महाराज! अबभी तुम्हारी प्यारी स्त्री हारजानेमें शेष बची है, सो तुम पाञ्चालकी कन्या कृष्णाकी बाजी रखो, उस बाजीसे खेलकर अपनेको फिर जीतलो। युधिष्ठिर बोले, कि जो न नाटी न लम्बी, न दुबली न मोटी है, उस नीले घुघरीले बाल-वाली शरदकालके पद्म-समान नेत्रवती, शारदीय पद्मसदृश गन्धवती, शारदीय पद्मपर बैठी लक्ष्मीके समान रूपवती और लावण्य तथा सौभाग्य आदिमें लक्ष्मीरूपिणी है, उसी पाञ्चालकुमारीकी बाजी रखकर तुमसे खेलता हूं। हे सुबल-पुत्र! लक्ष्मीके समान गुणवती जैसी स्त्रीकी पुरुष कामना करता है, चाहे दया, चाहे रूप-सम्पद, चाहे शील-सम्पद, जिस किसी बातको कहिये, हर विषयमें जो कामनाके योग्य है ; अनुकूल तथा प्रिय-कहनेवाली और धर्म्म-अर्थ तथा कामको सिद्ध करनेवाली जैसी स्त्री की मनुष्य इच्छा करता है, वैसे सब गुणोंसे जो सुशोभित है ; जो सबके पीछे सोती और सबसे पहिले जागती है और गौ तथा भेड़ चरानेवाले तक सबलोगोंका समाचार लेती है ; पसीनेके बूंदोंसे जिसका मुखमण्डल कमल और बेलाके समान शोभा धारण करता है ; जो वेदीसदृश सुमध्यमा दीर्घकेशा ताम्रवदना तथा न बहुत लोमयुक्त है, इसी प्रकारकी सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी पाञ्चाल कुमारी द्रौपदीकी बाजी रखकर खेलता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान धर्म्मराजके इतनी बात कहने पर सभामें बैठे बूढ़ोंके मुखसे "धिक्कार है" ऐसे शब्द निकलने लगे। हे महाराज! सम्पूर्ण सभा एकही वार हिलोड़ उठी ; राजोंको शोकने घेर लिया ; भीष्म, द्रोण, कृप, आदिको पसीना निकलने लगा ; विदुर सिर थामकर मानों चेत खोके नीचे मुंह किये सर्पकी भांति स्वासा छोड़ते हुए चिन्तामें मग्न हुए। परन्तु धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न होके वार वार यह पूछने लगे, कि क्या जीता, क्या जीता? बाहरके भावसे चित्तके भावको छुपा नहीं सके। कर्ण दुःशासन आदिके साथ बहुत हर्षयुक्त हुए ; पर दूसरे सभ्योंके नेत्रोंसे वारिधारा निकलने लगी। जीतनेके अहङ्कारसे उछलता हुआ सुबलकुमार यह कहके, कि यह जीता उन पाशाओंको फिर ले लिया।

एकसठ अध्याय समाप्त।

दुर्य्योधन बोला, कि हे चत्त! आओ, पाण्डवोंकी मनमोहनेवाली प्यारी नारी द्रौपदीको लेते आओ ; वह पुण्यरहित स्त्री शीघ्र आके घर झाड़े और वहां दासियोंके साथ साथ रहे। विदुर बोले, कि रे मन्द-बुद्धे! तुम बड़े मूर्ख हो ; इसीसे ऐसी कठोर बात कहो। तुम जिस बन्धनमें अपनेको फंसा रहे हो, तुम्हे उसकी समझ नहीं होती ; तुम जिस जलधारा पर लटक रहे हो, उसका बोध तुम्हे नहीं होता है ; तुम मृग होके व्याघ्रोंको क्रोधित

कर रहे हो। रे दुरात्मा! सम्पूर्ण क्रोध-पूरित महाविषयुक्त सर्पसमूह तुम्हारे सिर पर बैठे हैं; उनको अब अधिक क्रोधित करके तुम यमराजका पाहुना मत बनो। मेरी समझमें कृष्णा किसी प्रकारसे दासीपन प्राप्त नहीं कर सक्ती है, क्योंकि युधिष्ठिरने अपनी प्रभुताई खोकर उसे बाजीमें रखा था। बांस जैसे अपने नाशके लिये फल धारण करता है, वैसेही यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्य्योधन चौसड़ खेलता है; इस विनाश-कालमें वह नहीं समझ सक्ता है, कि चौसड़ बड़े भयावने बैरका कारण होता है। अन्य जनके मर्म्मस्थानमें आघात और पुरुषार्थ पर अहङ्कार न करना चाहिये; चौसड़ आदि नीच कार्य्योंसे शत्रुको वशमें नहीं लाना चाहिये; और मनुष्योंके जिन वाक्योंसे दूसरोंके चित्तमें हलचल मच सक्ती है, ऐसी जलानेवाली, नरकलानेवाली वाणी कदापि न कहनी चाहिये। एक मनुष्यके मुखसे लम्बी चौड़ी बातें उच्चारी जाती हैं, पर उससे घायल होकर दूसरा मनुष्य निशदिन शोकमें डूबा रहता है; वह सब वाक्यरूपी शेल अन्य मनुष्योंके मर्म्मस्थानमें ही जा गिरते हैं; इसलिये पण्डित पुरुषको औरोंसे कदापि वैसी बातें न कहनी चाहिये; यह प्रसिद्ध है कि एक बकरा किसी मकुहका बार लगी हुई मछली पकड़नेकी बंसीको निगल गया था; इसपर मकुहने ज्योंही उस बकरेके सिरको धरती पर रखके उक्त अस्त्रको खींचा, त्योंही बकरेका गला कट गया; अतएव तुम पाण्डवोंसे वैसी भयावनी शत्रुता मत करो; तुम जैसी कड़ी बातें कहते हो, पृथा-पुत्र वैसी एकभी बात नहीं कहते। नीच मनुष्य कुत्तोंकी तरह क्या वानप्रस्थ क्या गृहमेधी क्या पूर्ण विद्यावान तपस्वी, सबको ऐसा कठोर वचन कहा करता है। धृतराष्ट्रका पुत्र अब यह नहीं समझ सक्ता है, कि ठगपन नरकके भयावने द्वारोंके समान है; चौसड़के प्रबन्धमें कुरुओंके बहुतेरे दुःशासन के साथ उसके साथी बने हैं। यदि लौकी सदा जलमें डूबे, पत्थर जल पर बहता रहे और नाव जलमें डूब जावे तथापि धृतराष्ट्रका मूर्ख पुत्र दुर्य्योधन मेरे पथ्यरूपी वचनोंपर ध्यान नहीं देता है; इससे निश्चय जान पड़ता है, कि यह कुरुओंका नाशकारी होगा; जब मित्रोंके युक्तिपूर्ण हितकारी पथ्य-समान वचन सुने नहीं जाते हैं, केवल लोभकी ही वृद्धि होती है, तब अवश्यही कठोर सर्व्वनाशी विनाश उपस्थित होगा।

बासठ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धृतराष्ट्रकुमार दुर्य्योधनने अहङ्कारसे उन्मत्त होकर "क्षत्तापर धिक्कार है" यह कटुवचन कहके सभामें स्थित आज्ञावाहीकी ओर निरीक्षण किया और प्रधान आर्य्योंके समाजमें उससे यह वचन बोला, कि आज्ञावाही! तुम जाके द्रौपदीको ले आओ, पाण्डवोंसे तुम्हें कोई भय नहीं है, यह क्षत्ता केवल भयवशही विपरीत बातें कहा करते हैं, विशेष यह सदा हमारी अवनतिकी कामना करते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुत्ता जैसे सिंहके भवनमें प्रवेश करता है, वह सूतपुत्र आज्ञावाही राजाकी आज्ञा पाय वैसेही पाण्डवोंके वासगृहमें शीघ्र जाके उनकी रानी द्रौपदीके निकट जाकर उससे यह वचन बोला, कि द्रौपदि! युधिष्ठिरके चौसड़से उन्मत्त होने पर दुर्य्योधनने तुम्हें जीत लिया है, सो तुम धृतराष्ट्रके भवनमें चलो। हे याज्ञसेनि! दासीका कार्य्य करानेके निमित्त मैं तुम्हें ले जाऊंगा। द्रौपदी बोली, कि आज्ञावाही! तुम ऐसी बातें क्योंकर कहते हो? कौन राज-कुमार स्त्रीको दाव रखकर खेलता है? चौसड़-के नशेमें उन्मत्त होने पर राजा युधिष्ठिर

निःसन्देह मुग्ध बने थे, नहीं तो क्या उनको कोई दूसरी दावकी वस्तु नहीं थी. आज्ञावाही बोला, कि जब उनको कोई दूसरी वस्तु शेष नहीं थी, तभी अजातशत्रु युधिष्ठिरने तुम्हें दाव लगा-कर खेला था। हे राजपुत्री! उस राजाने पहिले भाइयोंको, पीछे अपनेको, आगे तुमको दावमें रखा था। द्रौपदी बोली, कि हे सूत-पुत्र! तुम एकवार जाओ, सभामें उस जौसड़िये से पूछो, कि उन्होंने पहिले अपने का हारा, वा मुझे? हे सूतपुत्र! तुम पहिले यह बूझ आओ, पीछे ले जाना, मैं राजाका अभिप्राय जानकर अन्तको दुःखी चित्तसे जाऊंगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उस समय आज्ञा-वाहीने सभामें लौटकर द्रौपदीका वह वचन कह सुनाया; नरेन्द्रोंमें बैठे हुए युधिष्ठिरसे यह कहा, कि द्रौपदीने आपसे पूछा है, कि किसके प्रभु बनके तुमने हमें जौसड़में हारा है? क्या पहिले अपनेको हारा है, वा मुझे? आज्ञावाहीने यह बात कही, पर युधिष्ठिर मानों चेतन तथा जीवन-वर्जितके समान बैठे रहे; उसकी बातोंका न भला, न बुरा कोई उत्तर नहीं दिया। तब दुर्य्योधन बोला, कि पाञ्चाली यहीं आके इस प्रश्नको कहे, उसके और इनके बीच जो कुछ बातें हों वह सब लोग सुनें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि सूत आज्ञावाही दुर्य्योधनकी आज्ञाके वशमें चलकर मानों दुःखी हृदयसे बोला, कि राजपुत्री! वहां सभ्यगण तुम्हें बुलाते हैं; समझ पड़ता है, कि कौरवोंके नाशकी दशा आ पहुंची है। हे राजकुमारी! लघुचित्त दुर्य्योधन जब तुमको सभामें लेजानेका सङ्कल्प करते हैं, तब वह फिर सम्पद की रक्षा नहीं कर सकेंगे। द्रौपदी बोली, कि विधिने ऐसीही विधि रची है। पण्डित तथा मूर्खको सुख वा दुःख घेरता है; पर लोग धर्म्महीको एक मात्र परम पदार्थ कहते हैं। वह रक्षित होवे, तो अवश्यही हमारे लिये शान्तिका विधान करेगा। वह धर्म्म कौरवोंको न त्याग देवे। तुम कौरवोंके निकट जाकर हमारा यह धर्म्मानुसारी-वचन पूछो, वे सब नीतिमान श्रेष्ठ धर्म्मात्मा लोग निश्चय करके जो कहेंगे, मैं अवश्य वही करूंगी आज्ञावाहीने द्रौपदीका वह वचन सुनकर सभामें जाके प्रकाश किया; पर सभ्यगण दुर्य्योधनका बड़ा आग्रह देखकर नीचे मुंह किये बैठे रहे, कुछ नहीं बोले।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ! इस बीचमें युधिष्ठिरने दुर्य्योधनके उस अभिप्रायको सुनकर द्रौपदीके पास एक विश्वासी दूतको यह कहके भेज दिया, कि पाञ्चाली यद्यपि रजस्वला होनेके कारण अधोनीवी तथा एक वस्त्र पहिने हुई है, तथापि रोते रोते ससुरके सामने आवे। हे महाराज! उस बुद्धिमान दूतने कृष्णाके भवनमें शीघ्र जाकर धर्म्मराजके निश्चय किये हुए मतको प्रकाश किया। इधर आज्ञावाहीका वचन सुनकर दुःखसे आच्छा-दित, दीनभावयुक्त पाण्डवगण प्रतिज्ञाद्वारा बंधे रहनेके कारण कुछ निश्चय नहीं कर सके, कि क्या करना चाहिये। अनन्तर राजा दुर्य्योधनने उन्हें दुःखी देखकर प्रसन्न होके सूतको आज्ञा की, कि आज्ञावाही! उसे यहीं ले आओ, कौरवगण प्रत्यक्षमें उसके प्रश्नोंका उत्तर देवें।

दुर्य्योधनके यह वचन कहने पर उसके वशीभूत आज्ञावाही सूतपुत्र द्रुपदकुमारीके क्रोधसे भीत होकर फिर सभ्योंसे बोला, कि मैं कृष्णासे क्या कहूंगा? तब दुर्य्योधनने कहा, दुःशासन! मेरा यह बुद्धिहीन सूतपुत्र भीमका भय कर रहा है, सो तुम स्वयं द्रौपदीको पकड़ कर ले आओ; स्वाधीनतासे हाथ धोये हुए शत्रु तुम्हारा क्या कर सक्ते हैं? अनन्तर वह राज-पुत्र भ्राताकी

आज्ञा सुनकर, नेत्रोंको लाल किये उठा, और महारथी पाण्डवोंके वासगृहमें प्रवेश करके राजपुत्री द्रौपदीसे यह बोला, कि पाञ्चाली! आओ, आओ तुम हारी गयी हो, हे कृष्णा! अब लज्जा तज दुर्य्योधनको निहारो; हे विशाल कमल-नयना! अब कुरुओंकी सेवा करो, हमने धर्म्मानुसार तुम्हे प्राप्त किया है; आओ सभामें चलो। दुःशासनके इस प्रकार कहने पर द्रौपदी अति कातर होकर उठी अश्रुद्वारा मैले हुए मुखमण्डलको हाथोंसे पोछ कर जिधर कुरुश्रेष्ठ वृद्ध राजा धृतराष्ट्रकी नारी-गण थीं, उसी ओर कातर भावसे चली। तब दुःशासन क्रोधसे भरकर बेगपूर्व्वक राजेन्द्रपत्नी द्रौपदीके पीछे कहता हुआ दौड़ा और उसके काले लम्बे घुघराले बालको पकड़ लिया। जो केश राजसूय महायज्ञमें मंत्रोंसे पवित्र किये हुए जलद्वारा सिक्त हुए थे; उन्हे धृतराष्ट्रके पुत्रने पाण्डवोंके बलका निरादर करके पकड़ लिया। दुःशासन अति लम्बे बालवाली, दुःखिनी नाथवाली द्रौपदीको अनाथवतीके समान सभाके पास लाकर जैसे वायु केलेको खींचता है, वैसेही खीचने लगा। वह खींची जाती हुई मुड़े शरीरवाली द्रौपदी धीरेसे बोली, कि मैं रजस्वला हूं और भक्तोंके दुःखहारी जयशील कृष्णको बचाने अर्थ पुकारने लगी।

दुःशासन बोला, कि हे याज्ञसेनि! चाहे तुम रजस्वला-हो, वा एकवस्त्रा हो अथवा वस्त्र रहितहो क्यों न हो, जुएमें जीती गयी हो, अतएव दासी बनी हो, दासियोंकी स्वामीकी इच्छानुसार वस्त्रादि दिया जाता है।

वैशम्पायन बोले, बिखरेकेशवाली आध-गिरे वस्त्र-वाली दुःशासनसे खींचीजाती हुई लज्जा-क्रोधसे जलती हुई द्रौपदी धीरेसे यह बोली:—

सभामें ये सब शास्त्रज्ञ कृपावान् इन्द्रके समान मेरे बड़े लोग बैठे हैं, इनके आगे मैं ऐसी नहीं खड़ी रह सकती हूं। रे दुष्टकर्म्मकारिन्! अनार्य्य कर्म्म मत कर, मुझे सभामें वस्त्रहीन मत कर; रेदुष्ट! यदि इन्द्रादि देवभी तेरी सहायता करेंगे, तौभी पाण्डव तुझे क्षमा न करेंगे। महात्मा धर्म्मपुत्र धर्म्ममें स्थित हैं, और धर्म्म सूक्ष्म है, उसे महात्माही जान सकते हैं, मैं गुणोंके अतिरिक्त अपने पतिके दोषोंको वचनसे भी सुनना नहीं चाहती। कुरुवीरोंके मध्यमें जो तू मुझ रजस्वलाको खींचता है, सो कर्त्तव्य नहीं है, तुझे कोई भी कुत्सित नहीं कहता है; निश्चय ये सब तेरे मतमें हैं। धिक्कार है, भरत वंशी क्षत्रियोंको, निश्चय इनसे धर्म्म नष्ट होगया और क्षत्रियोंका चरित्रभी नष्ट होगया जो आज सभामें बैठे सब कुरुवंशी कुरु-समुद्रवेलाको नष्ट देख रहे हैं। द्रोण, भीष्म महात्मा विदुर और राजा धृतराष्ट्र इन सबको कुछ भी वीर्य्यबल नहीं है, जो मुख्यलोग मेरे परम धर्म्मकी कुछभी नहीं सुनते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, इस प्रकारसे रोती हुई वह सुमध्यमा कुपितपतियोंको कटाक्षोंसे देखने लगी, और अपने कटाक्षसे पाण्डवोंका क्रोध प्रदीप्त कर दिया। पाण्डवोंको राज्य, धन, रत्न और मुख्य वस्तुओंके नाश होनेसे ऐसा दुःख नहीं हुआ था, जैसे लज्जा और क्रोधभरे द्रौपदीके कटाक्षोंसे हुआ। दुःशासनने जब देखा, द्रौपदी अपने पति पाण्डवोंको देखती है, तब संज्ञाशून्य द्रौपदीको बलसे खींचकर शब्द सहित हंसकर बोला, तू तो दासी है। कर्ण यह वचन सुनकर शब्दसहित हंसता हुआ प्रसन्न होकर दुःशासनकी प्रशंसा करने लगा और गान्धारदेशके सुबलराजाका पुत्र शकुनि भी दुःशासनकी प्रशंसा करने लगा। कर्ण शकुनि और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको छोड़कर वहां और जितने सभासद थे सबको सभामें द्रौपदीको खिंचती देखकर महादुःख हुआ।

भीष्म बोले, हे सुभगे ! धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव तुम्हारे प्रश्नका ठीक विवेक हम नहीं कर सकते ; जो पुरुष स्वामी नहीं है, सो पराये धनको पण नहीं कर सकता ; पत्नी स्वामीके आधीन है ; युधिष्ठिर ऋद्धिभरी सब पृथिवीको छोड़ सकते हैं, परन्तु धर्म्मको नहीं छोड़ेंगे ; इन्होंने पहिले कहा था, मैं जीता गया इसलिये हम तुम्हारे प्रश्नका उत्तर ठीक नहीं दे सकते हैं; पर जुएमें अद्वितीय (असामान्य) शकुनिने तुम्हें पण करनेकी कहा अर्थात् राजाने अपनी इच्छासे तुम्हें पण नहीं किया और युधिष्ठिर उस कृत्यको छल नहीं मानते ; अतएव हम ठीक नहीं कह सकते।

द्रौपदी बोली,राजाने जुएमें अभ्यासरहित हो करभी, जुएमें निपुण अनार्य्य द्यूतप्रिय दुष्टात्मा छलियोंसे अपने आपको हार करभी मुझे सभामें क्यों बुलाया और शत्रुओंके मनोरथ सफल किये ? कौरव और पाण्डवोंमें अग्रगण्य धर्म्मराजने, अशुद्ध भावयुक्त, छलमें प्रवृत्त, ज्ञान रहित और निरादर सहित होकर पहिले अपने शरीरको हारा, पीछे यह जुआ खेला ! इस सभामें ये जितने कुरुवंशी बैठे हैं, यह पुत्र और बहुओंके नाथ हैं, सो सब लोग मेरे प्रश्नका उत्तर यथायोग्य दें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, इस प्रकारसे रोती हुई और अपने दुःखी पतियोंको देखती हुई द्रौपदीसे दुःशासन कठिन, कड़ुवा, अप्यारावचन बोला। उस खिंचती हुई, रजस्वला, पतित-वस्त्रा, उसकार्य्यके अयोग्य, द्रौपदीको देखकर भीमको युधिष्ठिर पर महाक्रोध हुआ।

६३ अध्याय समाप्त।

भीमसेन बोले, हे युधिष्ठिर ! जुआरीलोगोंके घरमें भी दासी रहती हैं, तो वे उनको जुएमें नहीं लगा देते हैं, उनपरभी कृपा करते हैं। जो धन काशने दिया था और जो द्रव्य उत्तम था इसी प्रकारसे और राजोंने जो जो धन भेट किया था, वाहन, धन, कवच, अस्त्र, राज्य, अपना शरीर और हम सबको जुएमें आप हारगये, तब इतना क्रोध हमको नहीं भया ; क्योंकि हमारे सर्व्वस्वके आप स्वामी हैं ; हम इसको अधर्म्म मानते हैं, जो आपने द्रौपदीको पण किया ; यह बाला इस कर्म्ममें अयोग्य थी, यह पाण्डवोंका पति प्राप्त करकेभी आपके कारण क्षुद्र दुरात्मा पापी कौरवोंसे क्लेश पा रही है, हे राजन् ! इसके कारण मैं अपना क्रोध तुम्हारे पर डालता हूं, हे सहदेव ! अग्नि ले आओ हम तुम्हारे सामने बलसे इनका हाथ जलावेंगे।

अर्ज्जुन बोले, हे भीमसेन ! तुमने पहिले ऐसी वाणी कभी नहीं कही थी ; निश्चय ज्ञात होता है, कि तुम्हारा धर्म्म लज्जारहित शत्रुओंने नाश कर दिया, शत्रुओंका मनोरथ सफल करने योग्य नहीं हैं ; तुम उत्तम धर्म्महीका आचरण करो ; धर्म्मात्माओंको ज्येष्ठभाईका अनादर करना नहीं चाहिये, राजा क्षत्रियोंके धर्म्मको स्मरण करके शत्रुओंकी (उन्हीकी) इच्छानुसार जुआ खेलते हैं ; सो कर्म्म हमारी कीर्त्तिको बढ़ानेवाला है।

भीमसेन बोले, हे अर्ज्जुन ! यदि हम ऐसा न समझते, तो जलती हुई अग्निमें बलसे इनके हाथोंको जला देते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले इस प्रकार से पाण्डवोंको दुःखित और द्रौपदीको खिंचती हुई देखकर धृतराष्ट्रका पुत्र विकर्ण यह बोला, हे राजालोगो ! द्रौपदीने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर दो, क्योंकि प्रश्नका विवेक न करनेसे शीघ्र ही नरक होता है, ये भीष्म और धृतराष्ट्र दोनोंही कुरुकुलके वृद्ध हैं और ये महाबुद्धिमान विदुर, ये लोग कुछभी नहीं कहते हैं, सबके गुरु द्रोणाचार्य्य और कृपाचार्य्य ये दोनो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं, प्रश्नका कुछभी उत्तर

क्यों नहीं देते? और, और जो अन्यदेशोंके राजालोग हैं, सो काम और क्रोधको छोड़कर मतिके अनुसार उत्तर दें; द्रौपदीने सभामें यह वाक्य कहे। इस प्रकारसे विकर्णने बहुतवार सभासदोंसे कहा परन्तु किसीने अच्छा वा बुरा कुछभी उत्तर न दिया। विकर्णने सब राजोंसे पुनः कहकर हाथसे हाथको लगाकर सांस लेकर ऐसा कहा, हे पृथिवीपालगण! आपलोग इस प्रश्नको कहो वा मत कहो, मैं यहां जो न्याय समझता हूं सो कहता हूं। राजोंके निमित्त चार दुष्कर्म कहे हैं, मृगया (शिकार), मद्यपान, जुआ, और स्त्रियोंपर अधिक आसक्ति; जब पुरुष इनकामोंमें आसक्त होता है, तो धर्मको छोड़कर गमन करता है और इन सबके किये काम जगत्में पण नहीं माने जाते। सो यह द्रौपदी-पण युधिष्ठिरने मत्त होकर और जुआरियोंसे प्रेरित होकर किया है, ये अनिन्दिता द्रौपदी साधारण रूपसे सब पाण्डवोंकी स्त्री हैं और राजा अपने शरीरको हार चुके; तब इसको पण किया, और शकुनिने कहा, तब युधिष्ठिरने इसे पण-किया, ये सब हेतु विचारकर मैं जानता हूं कि द्रौपदी जीती नहीं गयी। विकर्णके ये वचन सुनकर सब सभासद विकर्णकी प्रशंसा और शकुनिकी निन्दा करने लगे। ये शब्द बहुत समय तक रहा, जब समाप्त भया तो राधापुत्र कर्ण महाक्रोध करके हाथ पकड़कर बोला :—

विकर्णके अनेक प्रकारके विपरीत लक्षण दीखते हैं, जो उसीके विनाशके मूल हैं, जैसे वनमेंसे उत्पन्न अग्नि वन ही को नाश करती है। ये सब राजालोग द्रौपदीसे पूछनेपरभी कुछ न बोले, क्योंकि वे जानते हैं, कि द्रौपदी धर्मसे जीती गयी है, हे धृतराष्ट्रके पुत्र! तुम केवल मूर्खतासे बकते हो, क्योंकि तुम बालक होकर सभाके बीचमें बूढ़ोंकोसी बात करते हो। हे दुर्य्योधनानुज! तुम धर्मको ठीक नहीं जानते, इसीसे जितो हुई द्रौपदीको बिन-जिती बताते हो, हे धृतराष्ट्रपुत्र! जब पाण्डवाग्रज युधिष्ठिरने जुवेमें अपना सर्व्वस्व लगादिया तब द्रौपदीको बिना जिती कैसे कहते हो? हे भरतर्षभ! द्रौपदीको युधिष्ठिरके सर्व्वस्वमेंही थी तब तुम द्रौपदीको अजिता किस हेतुसे मानते हो; द्रौपदी पाण्डवोंके वचनसे क्रीत हुई और अनुज्ञात हुई तब कैसे अजिता हो सकती है; यदि तुम कहो कि इसको एक वस्त्र धारण किये सभामें लाना अधर्म्म हुआ; सोभी मैं कहता हूं तुम सुनो। हे कुरुनन्दन देवतोंने स्त्रियोंके निमित्त एकही पति कहा है और यह अनेक की स्त्री है अतएव निश्चय वेश्या है, इसको सभामें लाना एकवस्त्रा वा नङ्गीही होना हमारी बुद्धिमें कोई भी आश्चर्य्य नहीं है। जो पाण्डवोंका धन था, उसमें यह भी थी; इस कारणसे शकुनीने इसे धर्म्मसेही जीता है, हे दुःशासन! यह विकर्ण बालक है और पण्डितोंकी ऐसा बाद करता है। अतएव तुम पाण्डव और द्रौपदीके वस्त्र उतार लो।

हे जन्मेजय! पाण्डवलोग यह वचन सुनकर अपना वस्त्र उतार कर सभामें बैठ गये; हे राजन् तब दुःशासन सभाके बीचमें बलसे द्रौपदीका वस्त्र खींचने लगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जब द्रौपदीका वस्त्र खींचा गया, तब उसने कृष्णको स्मरण किया। हे गोविन्द! हे द्वारिकावासिन्! हे गोपीजन-प्रिय! हे केशव! क्या तुम नहीं जानते हो, कि कौरवोंने मेरा अपमान किया है! हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे दुःखनाशन! हे जनार्दन! कौरवसमुद्रमें डूबती हुई मेरी रक्षा करो! हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वात्मन्! हे विश्वभावन! हे गोविन्द!

कौरवोंके बीचमें मुझ दासोकी रक्षा कीजिये । हे राजन् ! इस प्रकारसे जगदीश्वर कृष्णको स्मरण कर अपना मुख आच्छादित करके द्रौपदी सभामें रोयी । उसी समय द्रौपदीका वचन सुनकर कृष्ण करुणासे आर्द्र हो गये; अपनी शय्याको छोड़ पैरोंहो दौड़े । जब द्रौपदी छूटनेके लिये कृष्ण ! विष्णु ! नरनारायण ! इस प्रकारसे रक्षाके निमित्त पुकारने लगी, तब महात्मा धर्म्मरूपी कृष्णने आकर उसके वस्त्रमें वास किया । हे राजन ! जब द्रौपदीका वस्त्र खींचा गया, तो वस्त्रके भीतरसे अन्यवस्त्र और उसमेंसे अन्य, इस प्रकारसे रंग बिरंगके अनेक वस्त्र निकलने लगे । यह फल धर्म्म पालनका था, तब सभामें महा हाहाकारका महाशब्द उठा ; इस महा अद्भुत कार्य्यको देखकर सब राजालोग द्रौपदीकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रपुत्रकी निन्दा करने लगे, तब राजोंके मध्यमें क्रोधसे ओष्ठ फरकाते हुए,हाथसे हाथको मलकर, और शब्दसे भीमने यह प्रतिज्ञाकी ।

भीमसेन बोले, हे लोकके वासी क्षत्रियो ! तुम सब मेरे यह वचन सुनो जो पहले किसोने नहीं कहे और न कोई कहैगा, यदि मैं इस पापी दुर्य्योधन,भरतकुलकलङ्क, दुःशासनका हृदय क्रोधसे चीरकर युद्धमें रुधिर न पीयूं तो हे राजालोगो ! मैं अपने पुरुषालोगोंकी गति को प्राप्त न होऊं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, भीमके ऐसा कठिन रोमहर्षण वचन सुनकर सब लोग उनकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रपुत्रकी निन्दा करने लगे, जब सभाके बीचमें द्रौपदीके वस्त्रोंका ढेर होगया तब दुःशासन थक कर और लज्जित होकर बैठ रहा ; इसप्रकारसे पाण्डवोंको देखकर सब सभासदोंके मुखसे धृतराष्ट्रपुत्रको धिक्कार है, ऐसा महाशब्द निकला ; धृतराष्ट्रकी निन्दा करते हुए सब सभासद कहने लगे, कि द्रौपदीका प्रश्न कौरवलोग क्यों नहीं कहते हैं ? तब हाथ उठाकर सब सभासदोंको निवारण करके सब धर्म्मज्ञोंमें श्रेष्ठ विदुर यह बोले, हे सभासदो ! द्रौपदी प्रश्न करके अनाथके समान रोती है, तुम लोग उत्तर नहीं देते ; इससे धर्म्मनष्ट होता है । राजसभामें दुःखी, जलते अग्निके समान प्रवेश करता है, परन्तु सभासद सत्य और धर्म्मसे उसको शांत करते हैं, अतएव आर्य्य पुरुष सत्यधर्म्मसे सत्य प्रश्नको काम क्रोध त्याग कर वर्णन करें । हे राजालोगो ! जिस प्रकारसे विकर्णने प्रश्नका उत्तर दिया था, वैसेही आपलोगभी बुद्धिके अनुसार उत्तर कहिये, जो सभासद धर्म्मको जानकर सभामें प्रश्नका उत्तर न दे, सो उस पापके आधे फलका भागी होता है, और जो धर्म्मदर्शी सभासद प्रश्नके उत्तर को झूठा वा उलटा कहे, सो झूठके पूरे फलको प्राप्त करता है । पण्डित लोग इसही स्थानमें इस प्रह्लाद और आंगिरस मुनिके इतिहासका उदाहरण देते हैं । प्रह्लाद नामक दैत्यराज थे और उनके पुत्रका नाम विरोचन था, सो एक कन्याके निमित्त अङ्गिराके पुत्र सुधन्वासे उसका विवाद हुआ ; हमने सुना है, कि उन दोनोंसे ऐसा विवाद हुआ कि, एक कहता था हम कुलीन हैं और दूसरा कहता था हम कुलीन हैं । इसबादमें दोनोंने प्राण पर्य्यन्त पण किया, तब उन दोनोंने जाकर प्रह्लादसे पूछा, कि तुम सत्य कहो हम दोनोंमेंसे कुलीन कौन है ? प्रह्लाद सुधन्वाको देखकर असत्य बोलनेसे डरे ; तब सुधन्वा क्रोधसे ब्रह्मदण्डके समान जलता हुआ बोला, हे प्रह्लाद ! यदि तुम झूठ कहोगे,वा कुछ न कहोगे, तो इन्द्र तुम्हारे शिरकोवज्रसे सौखण्ड कर देगा । प्रह्लाद सुधन्वाका यह वचन सुनकर पीपलके पत्तेके समान कांपने लगे, तब प्रह्लाद महातेजस्वी कश्यप मुनिके पास यह पूछने गये । प्रह्लाद बोले, हे महाभाग । तुम देव, असुर और ब्राह्मणोंके

सब धर्म्मोंको जाननेवाले हो ; यह धर्म्मकष्ट उपस्थित है ; इससे कहिये कि जो प्रश्नके उत्तरको न दे अथवा उलटा उसको कौन लोक मिलते हैं।

कश्यप बोले, हे प्रह्लाद ! जो प्रश्नके उत्तरको जानता हो और काम क्रोध वा भयसे न कहे उसके गलेमें वरुणकी फांसी सहस्रबार पड़ती है और जो साक्षी दोनों पक्षोंकी बात कहे सोभी अपने निमित्त हजार वरुणपाश ग्रहण करता है ; उसको एक वर्ष पूर्ण होनेसे एकपाश छूटता है ; अतएव जाननेवाले पुरुषको सत्यही कहना चाहिये। जिस सभामें अधर्म्मसे धर्म्म बद्ध हो और सभासद उस असत्यको न निकाले, वहां सभासद अधर्म्मसे विद्ध होते हैं। उस पापका आधाभाग सभापतिको प्राप्त होता है, एक चरण कर्त्ताको और एक चरण उन सभासदोंको प्राप्त होता है, जो निन्दितकी निन्दा नहीं करते। जहां निन्दायोग्यकी निन्दा करी जाती है, वहां सभापति और सभासद पापसे मुक्त हो जाते हैं, और वह पाप केवल कर्त्ताहीको प्राप्त होता है। हे प्रह्लाद! जो पूछनेवालेसे मिथ्या कहते हैं, सो सात पहले और सात आगेके यज्ञादिको नष्ट करते हैं; जो दुःख छीनेहुए धनवालेको होता है, जो पुत्र मारनेवालेको, ऋणीको, अपने धनसे नष्टको, पतिसे हीन स्त्रीको, राजासे पकड़े हुए का, अपुत्र स्त्रीको, व्याघ्रसे आहतको, साक्षियोंसे नष्टको, और जो दुःख सौतवाली स्त्री को होता है, वह सब दुःख देवतोंमें समान कहे हैं, जो झूठ कहता है,उसको यह सब दुःख प्राप्त होते हैं। सुननेसे, धारण करनेसे, और प्रत्यक्ष देखनेसे साक्षी कहता है, अतएव साक्षी सत्य कहनेसे धर्म्म और अर्थसे नष्ट नहीं होता है।

कश्यपका ऐसा वचन सुनकर प्रह्लादने अपने पुत्रसे कहा, तुझसे सुधन्वा श्रेष्ठ हैं, मुझसे अङ्गिरा श्रेष्ठ हैं, और सुधन्वाको माता तेरी मातासे श्रेष्ठ हैं ; हे विरोचन ! यह सुधन्वा अब तेरे प्राणोंका स्वामी है।

सुधन्वा बोले, तुमने पुत्र स्नेह छोड़कर धर्म्मको ग्रहण किया; अतएव मैं तुम्हारे पुत्रको तुम्हे देता हूं, अब ये सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवें।

विदुर बोले, हे सभासदो ! आप इस प्रकारसे धर्म्मको जान कर द्रौपदी के प्रश्नका उत्तर दीजिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विदुरके वचनको सुनकर राजालोग कुछ न बोले,कर्णने दुःशासनसे कहा, तुम इस दासीको घरमें पहुंचा दो। तब कांपती हुई, लज्जावती, पाण्डवोंको देखती हुई तपस्विनी द्रौपदीको सभाके बीचमें दुःशासन खींचने लगा।

६४ अध्याय समाप्त।

द्रौपदी बोली, पहिले मेरे प्रश्नका उत्तर देना उचित था, सो किसीने न दिया। मुझे यह बलवान् बलसे खींचता है, अतएव मैं अत्यन्त व्याकुल हुई हूं, इस कुरु-सभामें सब कौरवोंको प्रणाम करती हूं। यह अपराध मेरा नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब दुःशासनने उसे खींचा तब वह तपस्विनी द्रौपदी सभामें गिर गयी और यों कहकर रोने लगी।

द्रौपदी बोली, जिस मुझे स्वयंवरके रंगस्थानमें आये राजोंके अतिरिक्त किसीने भी कहीं नहीं देखा था, सो मैं आज सभामें प्राप्त हुई हूं,जिसको घरमें कभी सूर्य्य और वायुनेभी नहीं देखा था, इस मुझे आज सभामें सब देख रहे हैं, जो पाण्डव कभी मुझे छूते हुए वायु परभी क्षमा नहीं करते थे,सो इस दुष्टपर क्षमा कर रहे हैं ; जान पड़ता है, कि कुछ समयही विपरीत हो गया, जो सब कौरव लोग इस दुःखके अयोग्य बहूका ऐसा क्लेश देख रहे हैं, इससे अधिक नीचकर्म्म क्या होगा ? जो मैं

सतीस्त्री सभाके मध्यमें आयी, अब राजोंका धर्म्म कहां गया ? मैंने पहले सुना था कि स्त्री धर्म्मसभामें नहीं बुलायी जातों, सो सनातन धर्म्म कुरुवंशसे नष्ट होगया ; पाण्डवोंकी स्त्री, धृतद्युम्नकी बहिन, श्रीकृष्णकी सखी ! होकर सभामें कैसे रहूं। हे कौरव लोगो ! धर्म्मराजकी सदृशवर्णामें उत्पन्न धर्म्मपत्नी हूं, सो तुम सब मुझे दासी वा अदासी जो कहा सोई मैं करूं, यह कौरवोंका यश नाशक चुद्र दुःशासन मुझे बलसे क्लेश देरहा है, जिसे मैं बहुतकाल पर्य्यन्त नहीं सह सकती। हे राजा लोगो ! हे कुरुवंशियो ! मुझे तुम जिती वा बिनाजिती जो मानते हो, सो मैं सुनना चाहती हूं, सुनकर वैसाही करूंगी।

भीष्म बोले, कि हे कल्याणि ! हम पहलेहो धर्म्मकी गति कह चुके हैं, कि उसे महात्मा विप्र लोगभो नहीं जान सकते; लोकमें बलवान् पुरुष जिसे धर्म्म कहे, सोई धर्म्म है ; चाहे वह मर्य्यादाके बाहरभो हो तोभो उत्तम कहा जाता है, धर्म्मकार्य्य भारो कठिन और सूक्ष्म है ; इससे हम तुम्हारे प्रश्नका निश्चय नहीं कर सकते। हम निश्चय करके कह सकते हैं, कि बहुत शोघ्र इस कुलका नाश होनेवाला है, देखो इस समय, ये सब कौरवलोग लोभ मोहमें परायण होगये ; जिन हम लोगोंको तुम बहू हो, सो सब इस बड़े कुलमें उत्पन्न हुए हैं, हम सबही धर्म्ममार्गसे पतित हो गये। हे पाञ्चालि ! तुमको यह समय ऐसा कठिन उपस्थित है, तोभो तुम धर्म्महोको देखती हो ; देखो ये द्रोणादिक सबही धर्म्मके जाननेवाले हैं, पर वेभो इस समय बिना प्राणके ऐसे बैठे हैं, मेरी बुद्धिमें इस प्रश्नमें युधिष्ठिर ही प्रमाण हैं, ये ही तुम्हें जिती वा बिनाजिती कह सकते हैं।

६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे कुररीके समान बहुत रोती हुई देवी द्रौपदीको देखकर कोईभी राजा दुर्य्योधनके भयसे न बोला, जब दुर्य्योधनने सब राजपुत्र और राजपौत्रोंको चुप देखा, तो हंसता हुआ द्रौपदीसे ऐसा बोला।

दुर्य्योधन बोला, कि हे याज्ञसेनि ! यह तेरा प्रश्न उदारवीर्य्य भीमसेन, अर्ज्जुन, सहदेव और तेरे पति नकुलके अधीन रहे, ये लोग इसका उत्तर कहें, हे पाञ्चालि ! ये सब लोग आचार्य्योंके मध्यमें कहें, कि युधिष्ठिर द्रौपदीके स्वामी नहीं हैं, तेरे निमित्त ये सब युधिष्ठिरको झूठा कह दें, तो तू दासीभावसे छूट जायगी, अथवा धर्म्ममें स्थित इन्द्रके समान महात्मा धर्म्मराजही कहें, कि ये तुम्हारे स्वामी हैं वा नहीं ? इनके कहनेके पश्चात् तुम शीघ्रही एकको पति बनालो, इस सभामें ये सब कुरुवंशी लोग तुम्हारे ही दुःखसे दुःखित हो रहे हैं, तुम्हारे मन्दभाग्य पतियोंको देखकर ये आर्य्यसत्व कुछ भी नहीं बोलते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुरुराज दुर्य्योधनके ये वचन सुनकर सब सभासद उनकी प्रशंसा करने लगे, परस्पर वस्त्र चालनभो करने लगे, और तब उस सभामें महा हाहाकार शब्द उठा, उस बातको सुनकर कौरवोंकी सभामें महा आनन्द हुआ, सब राजालोग प्रसन्न होकर धार्म्मिक कुरुराजकी प्रशंसा करने लगे, उन सब राजालोगोंने युधिष्ठिरकी ओर देखकर ये क्या कहेंगे, इस अपेक्षासे मुखको नीचा किया, अथवा संग्राममें अपराजित अर्ज्जुन, भीम, नकुल वा सहदेव क्या कहेंगे ऐसाही सबको कौतूहल हुआ। जब यह शब्द समाप्त हो गया, तो चन्दनचर्चित दिव्य सुन्दर बाहुको ग्रहण करके भीमसेन बोले।

भीमसेन बोले, यदि ये महामति धर्म्मराज हमारे गुरु और इस कुलके प्रभु न होते

तो हम कदापि क्षमा न करते; हमारे पुण्य, तप और प्राणोंके भी ये ईश्वर हैं, यदि ये अपनेको अजित मानें, तो हम सबही विनाजित हैं, भूमिमें चलनेवाला कोई भी मनुष्य द्रौपदीके केशको स्पर्श करके मुझसे जीता नहीं छूट सकता, तुम लोग इन मोटे और लम्बे मेरे हाथोंको देखो, इनके बीचमें आकर इन्द्रभी छूट नहीं सकता, मैं धर्मपाशमें बंधा हुआ हूं, धर्म्मराजके गौरव और अर्जुनके निरोधसे ये सङ्कट भोगता हूं, यदि धर्म्मराज मुझको आज्ञा दें तो जैसे सिंह क्षुद्र हरिणोंको नाश करता है, वैसेही इन पापी धृतराष्ट्रपुत्रों-को चरणसे पीस डालूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब भीमसे भीष्म द्रोणाचार्य्य और विदुर कहने लगे कि जो तुम कहते हो, सो सब यथार्थ है, तुम सब कुछ कर सकते हो; पर इस समय क्षमा करो।

६६ अध्याय समाप्त।

कर्ण बोला, कि हे भद्रे! ये तीन पुरुष-निर्धन होते हैं; दास, पुत्र, और पराधीन स्त्री; नियम है, दासकी स्त्री, हीन पतिवाली और दासका धन ये स्वामीहोके होते है, हे राज-पुत्रि! राजा दुर्य्योधनके घरमें जाकर जो काम मिले सो करो, अब तुम्हारे पति धृत-राष्ट्रके सब पुत्र हैं, पाण्डव नहीं। हे भामिनि! तू दूसरा पति कर ले जिससे दासीका दुःख प्राप्त न हो; दास-भावमें स्त्रियों-को पतियोंमे कामवृत्ति अवाध्य है, यह तुम्हें मालूम है; कि नकुल, भीमसेन, अर्ज्जुन, सहदेव और युधिष्ठिर ये सब हार गये। हे याज्ञसेनि तुम दासी होगयो और ये पराजित पाण्डव तुम्हारे पति नहीं रहे। क्या कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर धर्म्ममें प्रयोजन, पराक्रम और कुरु-षार्थको नहीं मानते, जो पाञ्चालराज द्रुपद-की पुत्रीको जुएमें लगा दिया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि परम क्रोधी भीमसेन कर्णके ये वचन सुनकर, दुःखी होकर राजाके वशवर्त्ती और धर्म्मपाशसे बद्ध होनेके कारण लालनेत्र करके कर्णको जलाते हुएके समान सांस लेकर ऐसा कहने लगे।

भीमसेन बोले, कि हे राजन्! हम कर्णके ऊपर कुछभी क्रोध नहीं करते; क्योंकि इसने ठीक वैसाही कहा, जैसा दासको कहना चाहिये। हे नरेन्द्र! यदि आप द्रौपदीको पण न करते, तो क्या शत्रु लोग मेरे आगे ऐसा बोलते।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेनके ऐसे वचन सुनके राजा दुर्य्योधनने चुप बैठे अचेतन युधिष्ठिरसे ऐसा कहा। हे महाराज! भीम-सेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव आपको आज्ञामें स्थित हैं, सो आप यदि द्रौपदीको अजित मानते हैं, तो इसके प्रश्नका उत्तर दो। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर, ऐश्वर्य्यके मदसे मोहित दुर्य्योधन अपने वस्त्रको उठाकर हंसते हुए द्रौपदीको ओर देखकर कर्णका उत्साह बढ़ानेके निमित्त और भीमको घर्षित करनेके वास्ते केलेके खंभके समान, सब लक्षणयुक्त हाथीके सूंड़के समान सुन्दर वज्रके समान कठिन द्रौपदीके सामने बाईजङ्घा दिखलाने लगा। भीमसेन उसको देखकर लाल लाल नेत्रोंको फैलाकर सब सभाको सुनाते हुए राजोंके मध्यमें दुर्य्योधनसे ऐसा बोला, यदि मैं महायुद्धमें इसकी जांघको गदासे न तोड़ूं, तो जिन लोकोंमें मेरे पितामह लोग गये हैं उसमें न जाऊं। जैसे जलते हुए वृक्षकी जलती हुई खोखरोंमेंसे अग्नि निकलती है, तैसेही क्रोधभरे भीमसेनके सब रोम-छिद्रोंसे अग्नि निकलने लगी। विदुर बोले, हे प्रतिपिय-वंशोत्पन्न राजा लोगो! अब जो भीमसेनसे महाभय उत्पन्न हुआ, उसे देखो और जानो कि प्रारब्धवशसे कुरुवंशमें यह भयानक नीति उत्पन्न हुई है; धृतराष्ट्रके पुत्रोंने महा अन्याय

किया, जो सभामें स्त्रीसे ऐसा प्रलाप करते हैं, कुरुवंशके योगु और कुशल सब नष्ट हो गये; क्योंकि यह लोग पापयुक्त मन्त्रोंका विचार करते हैं, हे कौरवो! तुम यह धर्म्म जानो, कि जहां धर्म्म नष्ट होता है, सो सभा दूषित होती है, यदि राजा अपने हारनेके पहिले द्रौपदीको हारते, तो इसके ईश होते, जिस धनको अनीश जुएमें लगावे, सो स्वप्नके ऐसा धन है अर्थात् जोतनेवालेको मिल नहीं सकता, शकुनीके इस वचन को सुनकर कौरव नष्टमति होगये। दुर्य्योधन बोला, कि हे याज्ञसेनि! मैं भीमसेन अर्जुन, नकुल और सहदेवके वाक्यमें स्थित हूं, ये लोग यदि युधिष्ठिरको अनीश कह दें, तो तू दासभावसे छूट जायगी।

अर्जुन बोले, हे कौरवो! ये महात्मा कुन्तीपुत्र धर्म्मराज जुएसे पहिले हमारे स्वामी थे, परन्तु जब अपने को हार गये तब किसके ईशहो सकते हैं। आपही लोग जान लीजिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, उसी समय महाराज धृतराष्ट्रके घरमें और यज्ञशालामें एक सियार (गीदड़) आकर उच्चस्वरसे बोलने लगा; तब हो गधे और भयानक पक्षी भी घोर शब्द करने लगे, उस शब्दको तत्वज्ञ विदुर और गान्धारीने सुना, भीष्म द्रोणाचार्य्य और विद्वान कृपाचार्य्य उच्चस्वरसे स्वस्ति स्वस्ति ऐसा कहने लगे। तब विद्वान् विदुर और गान्धारीने इसे घोर उत्पात जान दुःखी होकर राजा धृतराष्ट्र से कहा; वह ऐसा बोले।

धृतराष्ट्र बोले, हे मन्दबुद्धे दुर्व्विनीत दुर्य्योधन! तू नष्ट हुआ, तू कुरुश्रेष्ठोंकी सभाके बीचमें स्त्रीसे ऐसे वचन कहता है, विशेष कर धर्म्मपत्नी द्रौपदीसे! ऐसा कहकर दुःखसे बान्धवोंके हित-चाहनेवाले महात्मा तत्वबुद्धि धृतराष्ट्र सान्त्वनापूर्व्वक पाञ्चाली द्रौपदीसे ऐसा बोले, कि हे पाञ्चालि! तुम मेरी सब बहुओंमें उत्तम हो, तुम धर्म्मपरायण और पतिव्रता हो, जो तुम्हारी इच्छा हो, हमसे वर मांगो।

द्रौपदी बोली, हे भरतर्षभ! यदि आप मुझको वर देना चाहते हो, तो मैं मांगती हूं, दीजिये। सर्व्वधर्म्मकर्त्ता श्रीमान् युधिष्ठिर दासभावसे छूटें और मनस्वी मेरेपुत्र प्रतिबिंध्यको कोई राजकुमार यह न कहे, कि ये दासपुत्र हैं; पहले राजपुत्र होकर राजोंसे लालित होकर इसको दासपुत्र होना अयोग्य है।

धृतराष्ट्र बोले, हे कल्याणि! हे भद्रे! जो तुमने मांगा, सो हमने दिया, परन्तु हमारे मनमें यह होता है कि तुम एक वरदानके योग्य नहीं हो, अतएव दूसरा वर मांगो हम देंगे।

द्रौपदी बोली, हे राजन्! भीमसेन, अर्जुन नकुल और सहदेव इन चारोंको धनुष और रथके समेत मांगती हूं, ये दास भावसे मुक्त हों।

धृतराष्ट्र बोले, हे महाभागे! हे नन्दिनि! जो तू चाहती सो, ऐसाही हो, अब तीसरा वर मांगो, तुम मेरी सब बहुओंमें उत्तम और धर्म्मचारिणी हो।

द्रौपदी बोली, हे भगवान्! लोभ पापका मूल है, मैं उसे करना नहीं चाहती, हे राजसत्तम! मैं तृतीय वर मांगनेमें अयोग्य हूं, वैश्यको एकवर क्षत्री और स्त्रीको दो राजाको तीन और ब्राह्मणको सौ वर मांगनेका अधिकार है, हे राजन्! मेरे पति पाप दासकर्म्मसे उत्तीर्ण हुए; अब अपने पुण्य कर्म्मोंसे अनेक कल्याणोंको प्राप्त करलेंगे।

६७ अध्याय समाप्त।

कर्ण बोले, कि हमने मनुष्योंमें जितनी रूपवती स्त्री सुनी थी, उनमेंसे ऐसा कर्म्म किसीका भी नहीं सुना था, अत्यन्त क्रोधप्राप्त पाण्डव और कौरवोंको द्रौपदी ही शांतिरूप

हुई ; बिनानावकी जलमें डूबते हुए पाण्डवोंकी यह पाञ्चाली पार लेजानेकी नौका होगयी ।

श्रीवैशम्पायनजो बोले, परम क्रोधो भीमसेनने जब सब कौरवोंके मध्यमें ऐसे बचन सुने, पाण्डवोंकी उनको स्त्री गति भई तो दुर्म्मन होकर ऐसा कहने लगे।

भीमसेन बोले, कि देवल मुनिने पुरुषमें तीनज्योति लोक प्रकाशक कही है ; पुत्र, कर्म्म और विद्या, इन तीनों ज्योतियोंसे प्रजा सृष्ट हुई है, अशर्या अपनो अशून्य प्राणहोन और जाति च्युत होता है तब ये ही तीनो पुरुषको गति हैं। हे धनञ्जय सो सभामें हमारी स्त्रीके स्पर्ष करनेसे हमने इनकी ज्योति जान ली तब ऐसे पुत्र नीच कैसे न हों ?

अर्ज्जुन बोले, कि हे भारत ! उत्तम पुरुष नीचसे उक्त वा अनुक्त कठिन बातोंका उत्तर नहीं देते, महात्मा केवल सतहीका स्मरण करते हैं, और को स्मरणभी नहीं करते पूजनेयोग्य महात्मा स्वयंही प्रत्युपकारको जान लेते हैं।

भीमसेन बोले, कि हे राजेन्द्र ! हे भारत युधिष्ठिर ! मैं यहांसे निकलता हूं इन सब आये हुए शत्रुओंको समूल नाश करता हूं। हे भारत ! इनसे बादबिवाद करनेसे क्या लाभ, अभी हम मारे देते हैं, आप सब पृथिवीका राज्य कीजिये। भीमसेन ऐसा कह कर छोटे तीनों भाइयोंके सङ्ग जैसे सिंहलोग क्षुद्र हरिणोंको देखते हैं, वैसेही सबको बार बार देखने लगे, उस समय अक्लिष्टकर्म्मा अर्ज्जुनने उनकी ओर देखकर शान्त किया, परन्तु अतःकरणमें जलने लगे सब कान आदि कुछ मार्गोंसे भीमसेनके पतङ्गे निकलने लगे ; उस समय उनका मुख टेढ़ी भौंहयुक्त तथा ऐसा कठिन होगया जैसा युगके अन्तमें रूधधारी यमराजका हो ; तब युधिष्ठिरने उस बाहुशालीको हाथसे निवारण किया और कहा, कि ऐसा मत करो शान्त होकरबैठो ! भीमसेनको निवारण करके हाथ जोड़कर धृतराष्ट्र पिताके पास गये ।

६८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज ! हे भारत ! हमको आज्ञा दीजिये, हम आपका कौन प्रियकार्य करें, आप हमारे स्वामी हैं हम सदा आपकी आज्ञामें रहना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम निर्व्विघ्न कल्याणपूर्व्वक हमसे आज्ञा लेकर धनके समेत अपने राज्यका शासन करो, और मुझ बूढ़े इस पथ्य रूप कल्याणमय शासनको स्मरण रखो ; हे प्यारे युधिष्ठिर तुम धर्म्मकी गतिको जानते हो तुम विनीत और बड़ोंके उपासक हो। हे भारत ! जहां बुद्धि है, तहां शान्ति है, तुम शान्त हो जाओ क्योंकि शस्त्र काठहीमें लगता है, पत्थरमें नहीं ; जो उत्तम पुरुष हैं सो बैरको नहीं जानते ; गुणहीको देखते हैं, दोषोंको नहीं विरोधभी नहीं करते ; पराय कल्याण करनेवाले साधु सुकृतहीको स्मरण करते हैं, बैरको कदापि नहीं ; देषक्रियाको भी महात्मा नहीं देखते, हे युधिष्ठिर ! विवादमें जो कठोर बात कहे, सो पुरुष अधम है, जो उसके उत्तरमें कठोर बोले सो मध्यम है, जो उसे सुनकर भी कुछ न कहे सो उत्तम पुरुष हैं,, कही वा बिना कही कठोर बातोंके धीर पुरुष उत्तर नहीं देते, महात्मा लोग जाननेवाले आत्मज्ञान पाकर सुकृतहीको स्मरण करते हैं, और किये हुए बैरकोभी भूल जाते हैं। साधुलोग धर्म्मकी मर्य्यादाको छोड़नेवाले नहीं होते और प्रियदर्शन होते हैं, ऐसाही तुमने इस समागममें आचरण किया, हे तात ! मेरी और गान्धारीकी ओर ध्यान देकर दुर्योधनकी कठोर बातोंको हृदयमें मत रहने देना। हे भारत ! मुझ अध

हुआ है, हे राजन्! मित्रोंके देखनेकी ओर पुत्रोंके बल अबलको हम जानते हैं, इससे कौरवोंको कुछभी सोच नहीं हैं जिनके तुम शासन करनेवाले हो। जहां सब शास्त्र जाननेवाले बुद्धिमान् विदुर मन्त्री हैं, तुममें धर्म्म अर्ज्जुनमें धैर्य, भीमसेनमें पराक्रम पुरुषाग्रगण्य नकुल और सहदेवमें विनय है, वहां क्या शोच है। हे अजातशत्रो! आपका कल्याण हो, खाण्डवप्रस्थको जाओ, तुम्हारे भाइयोंमें स्नेह हो, तुम्हारा मन धर्म्मकी धारणा करे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ! (जन्मेजय) उस प्रकार से धृतराष्ट्रकी बात सुनकर और "जो आपने कहा सो सब वैसाही होगा" यही प्रतिज्ञा करके भाइयोंके सङ्ग चले, वे लोग द्रौपदीके सङ्ग मेघके समान रथोंमें बैठकर नगरश्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थको प्रसन्न मनसे चले।

६९ अध्याय समाप्त। द्यूतपर्व्व समाप्त।

अथ अनुद्यूतपर्व्वारम्भः।

जन्मेजय बोले, कि रत्नधनसञ्चय और बान्धवोंके समेत सब पाण्डवोंके धृतराष्ट्रकी आज्ञा सुनकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका मत कैसा हुआ!

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! जब बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको जानेकी आज्ञा दी, तब सुनतेही दुःशासन शीघ्रतासे अपने भाई दुर्य्योधनके पास गया, हे भरतर्षभ! वहां जाकर मन्त्रियोंके समेत बैठे हुए राजा दुर्य्योधनसे दुःखित होकर यह वचन बोला।

दुःशासन बोला, कि हे महारथलोगों! जो दुःखसे यह सब धन उपार्ज्जन किया था, सो सब इस बुड्ढेने नष्ट कर दिया, यह सब धन शत्रुओंके वशमें होगया; तब दुर्य्योधन कर्ण और सुबलपुत्र शकुनी यह सब पाण्डवोंके प्रतिमानी होकर परस्पर मन्त्रणा करके विचित्रवीर्य्यमनीषी धृतराष्ट्रके पास शीघ्र जाकर मीठी-वाणीसे ऐसा कहने लगे। दुर्य्योधन बोले, हे राजन्! आपने क्या बृहस्पतिकी कही यह नीति नहीं सुनी है जो देवतोंके विद्वान् पुरोहितने इन्द्रसे कही थी, हे शत्रुसूदन! शत्रुलोग सब प्रकारसे नाश करने योग्य हैं, क्योंकि ये तुम्हारे युद्धादिसे अहित करेंगे सो हम लोग पाण्डवोंकेही धनसे राजालोगोंकी पूजा करते अर्थात् पाण्डवोंका धन और राजोंको देकर यदि पाण्डवोंसे लड़ेंगे, तो क्या वे, राजा हमारी ओर न होंगे? कठिन विषभरे क्रोधयुक्त नाशकी उपस्थित सर्पोंको कंठ और पीठमें धारण करके कौन त्याग सकता है? हे तात! शस्त्र और रथ प्राप्त करके, सर्पके समान क्रुद्ध पाण्डव हमारा नाश कर देंगे, अर्ज्जुन महातुणीर धारण करके गाण्डीव धनुषको लेता हुआ, क्रोधसे देखता हुआ भीम भारी गदाको उद्यत करके शीघ्रता सहित अपने रथमें बैठकर, नकुल खड्ग और अर्द्धचंन्द्र तुल्य ढाल लेकर, सहदेव और राजाभी इङ्गिताकार करते गये हैं, ऐसा हमने सुना है, वे लोग अपने रथोंके वेगसे रथ समूहोंकी पीछे करते हुए बहु-शस्त्र सहित सेना इकट्ठी करनेको यहांसे गये हैं; वे हमसे बहुतही अपमानित हुए हैं, क्षमा न करेंगे; भला द्रौपदीका क्लेश उनमेंसे कौन सह सकता है? हे पुरुषर्षभ! हम बनवासके अर्थ पाण्डवोंसे जुआ खेलें, यही उनको वशमें करनेका एक उपाय है, जुएमें हारनेसे वे या हम बारहवर्ष पर्य्यन्त मृगछाल धारण करके बनमें बसें और तेरहवें वर्ष पुरुषमय स्थानमें रहें पर कोई जान न सके, यदि जान ले तो पुनः बारहवर्ष बनमें रहें, ऐसा जुआ पुनः होय फांसे छोड़कर पाण्डव लोग पुनः जुआ खेलें; हे राजन्! हे भरतर्षभ! हमको यह परम कर्तव्य है क्योंकि शकुनि अक्षविद्याको अच्छी प्रकारसे जानता है, हे राजन्! हे परन्तप! यदि वे लोग १२ वर्षतक बनवास रूप व्रतको धारण

करेंगे, तो इतने राज्यमें हमारी जड़ जम जायगी, तब अपने मित्रोंको लेकर बलवान् महासेना टीक करके उनको जीत लेंगे, यह मन्त्र आपको प्रिय लगना उचित है।

धृतराष्ट्र बोले, कि यदि वे दूरभी निकल गये हों तौभी उन्हें शीघ्र लौटाके ले आओ, पाण्डव आकर पुनः जुआ खेलें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, उस समय द्रोण, भीष्म, कृप, सोमदत्त, बाह्लीक, विदुर, अश्वत्थामा बलवान् युयुत्सु, भूरिश्रवा, और महारथ विकर्ण, ये सब एकबार कहने लगे, अब जुआ न होना चाहिये और अब शान्ति हो परन्तु पुत्रप्रिय धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके बुलानेमें अर्थदर्शी काम-रहित बान्धवोंकी कोईभी बात न सुनी।

७० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! अनन्तर शोकसे पीड़ित पुत्रस्नेहयुक्ता धर्मवती गान्धारी राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहने लगी, जब यह दुर्य्योधन उत्पन्न हुआ था, तबही विदुरने कहा था कि इस कुलकलङ्कको मार डालो। हे भारत! जो उत्पन्न होतेही शियारके समान शब्द करने लगा था कौरवोंमें निश्चय करके इस कुलका नाशक है, हे भारत! हे प्रभो! आप अपने दोषसे मत डूबिये, बालकोंके समान बुद्धि धारण मत कीजिये।

अब आप घोर कुलक्षयमें कारण मत हूजिये; कौन वैध्य सेतुको तोड़ता कौन बुझी आगको धौंकता है, हे भरतर्षभ! शान्त पाण्डवोंको कौन कुपित कर सकता है, आप अजामीढवंशमें उत्पन्नको स्मरण करते कुन्ती-पुत्रको कौन कुपित कर सकता है और मैंभी स्मरण कराऊंगी। हे राजन्! दुर्बुद्धिको कल्याण वा हानि शास्त्रभी नहीं जता सकता है और बूढ़ा बालकोंके ऐसी बुद्धिवाला नहीं होता। तुम्हारे पुत्रोंको तुम्हारी आज्ञामें रहना चाहिये, तुमसे भिन्न होकर वे नष्ट होंगे। हे सञ्जय! इसही लिये इस कुलकलङ्कको मेरे बचनसे तुम त्यागदो; परन्तु हे नराधिप! तुमने पुत्रस्नेहसे विदुरका कहना नहीं माना, उसका कुलनाशरूप यह फल अब प्राप्त भया, मनसे धर्मसे और नीतिसे युक्त जो तुम्हारी बुद्धि है, सो वैसीही रहनी चाहिये, उन्मत्त मत हो। जो लक्ष्मी दुष्टकर्मसे प्राप्त होती है,सो नाश-कारिणी है, और जो उत्तमतासे प्राप्त होती है, वह प्रौढ है,पुत्र और पौत्र पर्य्यन्त स्थिर रहती है।

हे महाराज! यह सुनकर महाराज धृतराष्ट्र धर्मदर्शिनी गान्धारीसे बोले,कि भलेही इस कुलका नाश होजाय, मैं निवारण नहीं कर सकता हूं,उनको जैसी इच्छा है वैसाही हो, पाण्डव पुनः आवें औ इनके सङ्ग जुआ खेलें।

७१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब बहुत दूर गये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे प्रातिकामी सूत ऐसा कहने लगा, हे राजन् युधिष्ठिर! आपके पिताने ऐसा कहा है कि सभा उपस्थित है, यहां आओ और अक्ष फेंककर जुआ खेलो।

युधिष्ठिर बोले, कि प्रारब्धके बल पुरुष शुभ अशुभ सबको प्राप्त करता है, यदि पुनः हमको जुआ खेलनाही तो यह निश्चय है कि पुरुष शुभ और अशुभ कर्मसे निवृत्त नहीं हो सकता है, बूढ़े की आज्ञासे पुनः जुवेमें जाना है, यद्यपि मैं जानता हूं कि, जुआ नाशकर है तथापि निवृत्त होनेसे असमर्थ हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यद्यपि सुवर्णका जन्तु होना असम्भव है, तथापि राम हिरनके प्रति लोभी हुए, इससे निश्चय होता है कि, जिन पुरुषोंका निरादर होनेको होता है, उनकी बुद्धि प्रायः विपरीत हो जाती हैं। इस प्रकारसे कहते हुए और शकुनीकी मायाको

जानते हुए भी युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पुनः जुएके स्थानमें पहुंचे। वे पांचो महारथ भरतकुल-सिंह अपने मित्रोंके हृदयोंको कंपाते हुए पुनः उस सभामें प्राप्त हुए, दैवसे पीड़ित सर्व्वलोक विनाशार्थ पुनः जुएके निमित्त सुखसे बैठे।

शकुनि बोले, कि हे भरतर्षभ युधिष्ठिर! जो धन बूढ़ेने आपको दे दिया, सो तुमनेभी मान लिया, अब सो महाधन एकही दावपर इस प्रकार से लगाइये, यदि आपलोग जीतें तो हमलोग हरिणका चर्म्म ओढ़कर बारहवर्ष बनमें रहें और तेरहवें वर्ष मनुष्यमय स्थानमें छिपकर रहें यदि कोई जानले तो पुनः बारहवर्ष बनमें रहें। अथवा यदि हम जीतें तो आप भाइयोंके सहित मृगचर्म्म धारण करके बारह वर्ष बनमें रहें और तेरहवें वर्षमें पुरुषमय स्थानमें छिपकर एक वर्ष वास करें, यदि प्रगट हो जाय तो पुनः बनमें बारह वर्ष रहें, जब ऐसे तेरह वर्ष बीत जायं तो पुनः अपना राज्य पावें! हम या आप, हे युधिष्ठिर! हे भारत! इसी नियमसे पुनः पाशा फेंक कर जुआ खेलिये। तब सब सभासद घबड़ा कर हाथ उठा कर वेगसे कहने लगे।

सभासद बोले, कि अः धिक्कार है बान्धवोंको, जो युधिष्ठिरको उपस्थित भय बता नहीं देते हैं, यह अपनी बुद्धिसे समझें वा न समझें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे महाराज युधिष्ठिर अनेक प्रकारके पुरुषोंके दुर्व्वचन सुनते हुए भी लज्जा और धर्म्मके वशमें होकर पुनः द्यूत खेलने लगे। युधिष्ठिर जानते भी थे तौभी यह निश्चय करके कि कुरुवंशका नाशकाल समीप है, पुनः जुआ खेलने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे शकुने! मेरे समान धर्म्मको पालनेवाला राजा बुलाये जाकर निवृत्त नहीं होसकता है, अतएव मैं तुमसे जुआ खेलता हूं।

शकुनी बोले, कि हे पाण्डवो! गाय घोड़ा बैल अनन्त बकरी भैंसे हाथी कोष सुवर्ण सब दासी दास यह सब हम एकही दावपर बनवासार्थ लगाते हैं, तुम या हम जो हारे सो बनमें रहे और तेरहवें वर्ष मनुष्यमय स्थानमें छिपकर रहे। हे पुरुषर्षभ! हम इसी प्रतिज्ञासे जुआ खेलते हैं; हे भारत! एकही वारके पाशा फेंकनेसे ऐसा हो जाय। युधिष्ठिरने यह सब स्वीकार किया। और शकुनीने पाशा उठाया, बस शकुनीने कह दिया, कि युधिष्ठिर हार गये।

७२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब हारे हुए कुन्तीपुत्रोंने वनवास के वास्ते दीक्षित होकर क्रमसे चर्म्म और वस्त्रोंको धारण किया। शत्रुओंको दमन करनेवाले पाण्डवोंको राज्यसे भ्रष्ट और चर्म्मधारी बनको जाते हुए देखके दुःशासन बोला, कि महात्मा दुर्य्योधनका राज्य अखण्ड हुआ पाण्डवलोग हारकर महाविपतको प्राप्त हुए हैं। आज सब देवता हमारे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि हमलोग शत्रुओंसे गुणमें बड़े, अवस्थामें बड़े और प्रशंसाके योग्य हैं। कुन्तीपुत्र अनन्त नरकमें बहुत कालके वास्ते गिराये गये, राज्य और सुखसे सदाके लिये रहित होगये। जो धनके अभिमानसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको हंसते थे वही-पाण्डव धनरहित होके बनको जायंगे। विचित्र कवच और प्रकाशयुक्त दिव्य वस्त्र इनके उतारे जाये, यह सब मृगचर्म्म पहिरें जैसा शकुनिके जुएमें इनको प्राप्त हुआ है। जो सदा यही बुद्धि रखतेथे कि हमारे समान जगतमें कोई नहीं है वह पाण्डव अब अपने आपको नपुंसक और वीर्य्यहीन समझें। जैसे मृगचर्म्म यज्ञोंमें महात्मा लोग धारण करते हैं वैसेही अबलवान् पाण्डवोंके मृगचर्म्मको देखिये।

महा बुद्धिमान् राजा द्रुपदने पाण्डवोंको

कन्यादान देके कुछ भला कार्य्य नहीं किया। आश्चर्य है कि याज्ञसेनीके नपुंसक पृथानन्दन पति हों! हे द्रौपदि! बनमें मलिन वस्त्र मृगचर्मधारी निर्द्धन तथा प्रतिष्ठारहित पाण्डवोंको देखकर तू क्या प्रसन्न होगी? यहां पर और जिसे तेरी इच्छा हो उसे पति कर ले। यह सब कुरुवंशी जो यहां इकट्ठे हैं, इनमेंसे एकको पति बनाले, जिससे तेरा समय वृथा न जाय। जैसे नपुंसक मनुष्य निष्फल, जैसे धानकी भूसी निष्फल होती है, वैसेही पाण्डव निष्फल हैं। नपुंसककी सेवा करनेसे केवल कष्टही होता है, पाण्डवोंकी सेवा करनेसे तुझे क्या मिलेगा? ऐसे निर्लज्ज वाक्य पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके पुत्रने सुनाये। महाक्रोधी भीमसेन उन बचनोंको सुनके ऊंचे स्वाससे उसकी निन्दा करके ऐसे बोले जैसे हिमाचलका सिंह सियारको दबाता है।

भीमसेन बोले, कि दुष्ट और पापियोंके समान तू निष्फल बकता है, शकुनिकी विद्यासे राजोंके बीचमें गाल बजाता है। जैसे तू बचनके बाणसे हमको बींधता है वैसेही मैं युद्धमें तुझे इनका स्मरण कराऊंगा। जो लोग क्रोध वा लोभके बशमें हो के तेरी रक्षा करने आवेंगे उनको साथियोंके सहित यमराजके घर भेजूगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मृगछाल पहिने भीमसेनके ऐसे कहने पर शकुनि कुरुवंशियोंके बीचमें निर्लज्ज होके नाचकर गौगौ कहने लगा। भीमसेन बोले, कि हे निर्लज्ज! तू करोड़ वाक्य कह सक्ता है, क्योंकि तेरे बिना कौन ऐसा है जो छलसे धनलेकर बकवाद करे। यदि तेरी छातीको चीरकर भीमसेन खून न पिये तो उत्तम लोकको प्राप्त न हो। धृतराष्ट्रके पुत्रोंको सब धनुर्द्धारियोंके सम्मुख मारकर शीघ्र ही शान्तिको पाऊंगा, यह मैं सत्य तुमसे कहता हूं। जब पाण्डव लोग सभासे चले तब राजा दुर्य्योधन सिंहके समान गतिवाले भीमसेनकी चालके समान चालसे चलने लगा। भीमसेनने तिरछा होके कहा, हे मूढ़! इससे क्या होता है, शीघ्रही तुझे साथियोंके सहित मारकर स्मरण कराऊंगा। ऐसे अपना अपमान देखके वा बलवान् अपने क्रोधको रोककर राजा युधिष्ठिरके पीछे चलते हुए सभाके बीचमें भीमसेनने यह वाक्य कहा।

भीमसेन बोले, कि मैं दुर्य्योधनको मारूंगा अर्ज्जुन कर्णको मारेंगे, पाशोंके छली शकुनिको सहदेव मारेंगे। फिर मैं सभाके बीचमें यह बड़ी बात कहता हूं, जब हमारा युद्ध होगा तब देवता उसे सत्य करेंगे। युद्धमें इस पापी दुर्य्योधन को गदासे मारूंगा, इसके सिरको अपने पैरसे पृथ्वीपर कुचलूगा। इस बचनवीर कटुवादी दुःशासनके खूनको सिंहके समान पीऊंगा।

अर्ज्जुन बोले, सज्जनोंके बीचमें भीमसेन जो कहते हैं, वह केवल बचनसेही नहीं कहते वरण अबसे तेरहवें वर्षमें जो होगा उसे आप लोग देखेंगे। भीमसेन बोले, दुर्य्योन, कर्ण, शकुनि और चौथे दुःशासनका रुधिर पृथिवी पीवेगी। अर्ज्जुन बोले, हे भीमसेन! निन्दा करनेवाले, दुःखदाइका मार्ग दिखानेवाले, कुबुद्धि और बकवादी कर्णको युद्धमें मैं मारूंगा। भीमकी प्रसन्नताके वास्ते अर्ज्जुन प्रतिज्ञा करने लगे, कि कर्णके साथियोंको मैं बाणोंसे मारूंगा। जो और राजा लोग बुद्धिके भ्रमसे मेरे साथ युद्ध करेंगे, उन सबका बाणोंके द्वारा मैं यमघरको भेजूंगा। यदि हिमाचल अपने स्थानसे चलायमान हो जाय, सूर्य्य प्रकाश रहित हो जाय, चन्द्रमाकी शीतलता नष्ट हो जाय। आजसे १३ वें वर्षमें यदि दुर्य्योधन आदर पूर्व्वक हमको राज्य न देगा तो यह सब सत्य होगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अर्ज्जुनके ऐसे कहने पर श्रीमान् माद्रीनन्दन सहदेव भारी भुजाको

हिलाकर क्रोधसे लालनेत्र करके सर्पके समान श्वास लेते हुए शकुनिको मारनेके इच्छुक होके ऐसा बचन बोले। हे मूढ़! हे गान्धार देशीय जनोंके यशनाशक! तू जो पाशोंको बहुत मानता है, यह युद्धमें तीक्ष्ण वाणोंसे तेरी रक्षा न करेंगे। जैसे भीमसेनने बन्धु-वान्धवोंके सहित तेरे वास्ते वचन कहा, मैं उस कर्म्मको करूंगा। हे शकुनि! यदि तू क्षत्रि-योंके धर्म्मानुसार युद्धमें खड़ा होगा, तो भाइयों सहित युद्धमें शीघ्रही तुझे मारूंगा। हे राजन्! सहदेवका वचन सुनके, परम सुन्दर नकुल यह वचन बोले, राजा द्रुपदकी कन्या द्रौपदी इस जुएमें धृतराष्ट्रके जिन पुत्रोंने दुर्य्यो-धनकी प्रसन्नताके वास्ते रूखे वचन सुनाये हैं, उन कुकर्मी कालप्रेरितोंको मैं यमके घरको भेजूंगा। महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्रौपदी की दशाको याद करके, बहुत शीघ्र पृथ्वीको धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे सूनी करूंगा। वैशम्पायन बोले इसप्रकारसे वह सब विशाल भुजधारी नरसिंह बहुत प्रतिज्ञा करके धृतराष्ट्रके पास पहुंचे।

७३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले मैं भरतवंशियों तथा वृद्ध-पितामहको, राजा सोमदत्तको तथा राजा बाह्लीकको प्रणाम करता हूं, द्रोणाचार्य्य, अश्वत्थामा तथा और राजोंको प्रणाम करता हूं, धृतराष्ट्रके पुत्रोंको, जुहार करता हूं। युयुत्सु, सञ्जय और अन्य सभासदोंसे भेट करके जाता हूं, फिर आकर आपलोगोंसे मिलूंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, सबलोग लज्जित हुए; किसीने युधिष्ठिरसे कुछ न कहा, किन्तु बुद्धिमान् युधिष्ठिरका सबने मनसे ही कल्याण चाहा। विदुर बोले, आर्य्या, राजपुत्री कुन्ती सुकुमारी और वृद्धा है, नित्यही उन्हें सुख करना उचित है, इस कारणसे वह बनको जानेके योग्य नहीं हैं। वह आदरके साथ यहीं मेरे घर रहेंगी, हे कुन्तीपुत्रो! आपलोग इसे समझावें आपका सदा कल्याण हो। पाण्डव बोले; जैसा आप कहते हैं, आपको वैसाही उचित है, आप हमारे चचा हैं, पिताके समान हैं। हे विद्वन्! जैसी आप आज्ञा करते हैं, वैसाही हम करेंगे, आप हमारे गुरु हैं, हम आपके सेवक हैं और जो हमारे करने योग्य हो वह भी आप बतलावें। विदुर बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! यही मेरा उपदेश समझो, कि कोईभी, अधर्म्मसे हारा हुआ अपनी हारमें दुःखी नहीं होता। तुम धर्म्मको जानते हो, युद्धमें जीतनेवाले अर्ज्जुन हैं भीमसेन शत्रुओंको मारनेवाले, नकुल धन इकट्ठा करनेवाले, नियममें चलानेवाले सहदेव, ब्रम्हको जाननेवालोंमें उत्तम धौम्य हैं। धर्म्म और अर्थमें चतुर धर्म्म करनेवाली द्रौपदी है। आप लोग आपसमें सबसे सब प्यारे हैं, सब सुन्दर हैं, शत्रु आप लोगोंमें फूट नहीं डाल सक्ता, आपको यहां कौन नहीं चाहेगा? यही आपका सब कल्याण है, जो आप मनको, स्थिर रखते हैं, शत्रु चाहे इन्द्रके तुल्यभी क्यों न हो, इसे नहीं जीत सक्ता है। पहिले समयमें हिमाचल पर्व्वतपर सावर्णि मनुने आपको शिक्षा दीनी हस्तिनापुरमें कृष्णद्वैपायन व्यासने आपको शिक्षा दीथी, भृगुतुङ्ग क्षेत्रमें परशुरामने, दृषद्वती नदीके तट पर महादेवने, महर्षि असितका उपदेश आपने सुना है। कल्माषी नदीके तटपर आप भृगु मुनिके शिष्य हुए थे, नारद आपको सदा देखते हैं। आपकी यह पुरोहित धौम्य ऋषि हैं। वह ऋषियोंसे पूजी बुद्धि परलोकमें भी तुम्हें त्याग न करे, हे पाण्डुपुत्र! आपने बुद्धिसे इलाके पुत्र पुरुरवाको जीत लिया है। और बलसे आपने राजोंको जीता है, धर्म्मके आचरणसे ऋषियोंको जीता है; मनकी धारणासे इन्द्रकी जय, क्रोधको जीतनेसे यमराजकी जय, दानसे कुबेरकी जय, और इन्द्रियोंको वश करनेमें वरुणकी जय

आपको प्राप्त हो। परोपकारके वास्ते अपने शरीरकोभी देदेना, चन्द्रसे सौम्यभाव, जलसे जीना, भूमिसे क्षमा, सम्पूर्ण तेज सूर्य्यमण्डलसे, वायुसे बल और सम्पूर्ण प्राणियोंसे तुम्हें सम्पत्ति प्राप्त हो। तुम निरोग रहो, तुम्हारा कल्यान हो, फिर तुम्हें लौटकर आशीरुश्रोंको मैं देखूंगा। हे युधिष्ठिर! धर्म्ममें तथा सब कामोंमें उचित कार्य्य करना। हे भरतवंशी जगतमें तुम्हारा कल्याण हो। कृतार्थ और कल्याणयुक्त तुमको फिर आया हुआ हम लोग देखें, तुम्हारे पिछले दुखोंको कोई नहीं जानता है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, विदुरके ऐसे कहे जाने पर सत्यप्रण युधिष्ठिरने तथास्तु कहके भीष्म और द्रोणाचार्य्यको प्रणाम करके प्रस्थान किया।

७४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, युधिष्ठिरके चलने पर द्रौपदी, यशोवती कुन्तीको वन्दना तथा और स्त्रियोंसे मिलकर चलने लगी, उस समय पाण्डवोंके रनिवासमें हाहाकारका शब्द भर गया। कुन्तीभी द्रौपदीको जाती हुई देखकर बहुत सन्तापयुक्त शोकसे विह्वल वाणीसे कष्टके साथ यह बोली। हे पुत्रि! दुःखको पाकर तुमको शोक करना न चाहिये, क्योंकि तुम स्त्रियोंके धर्म्मको जाननेवाली, शील और आचारसे युक्त हो। हे शुचिस्मिते! तुम्हें मैं क्या उपदेश करूं, तुम आपही साध्वी और गुणयुक्त हो, तुमने दोनों कुलोंको आभूषित किया। हे पापवर्जिते! यह कुरुलोग भाग्यवान् हैं जो तुमने इन्हें जलाया नहीं। तुम सुखसे जाओ मेरे ध्यानसे तुम्हारी वृद्धि हो। होनेवाले कार्य्योंमें स्त्रियोंको विकार नहीं होता है, बड़े जनोंके धर्म्मसे तुम रक्षित हो, शीघ्रही तुम्हें कल्याण प्राप्त होगा, मेरे पुत्र सहदेवकी बनमें सदा रखवाली करना, जिससे यह दुःख पाके शोक न करे। देवी द्रौपदी तथास्तु कहके नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई, रजसे भरे एक वस्त्रको पहिने हुए, शिर खोले चली। उसरीती चिल्लाती हुईके पीछे पीछे कुन्तीभी चली। पश्चात् अलङ्कार और वस्त्र रहित, मृगचर्म्म ओढ़े हुए, लज्जासे कुछ नीचा मुख किये हुए, अपने पुत्रोंको, प्रसन्नमुखवाले शत्रुओंसे और शोकयुक्त मित्रोंसे युक्त देखा। उस दशामें पुत्रोंको देखकर मातृ-प्रेमसे पुत्रोंको गलेसे लगाकर बहुत विलाप करने लगी। कुन्ती बोली, सत्यधर्म्मको करनेवाले शुद्ध-वृत्ति और स्थितिवालोंको, दृढ़भक्त तथा देवतोंको पूजा करने वालोंको दुःख कैसे प्राप्त हुआ, यह कैसी उलटी गति हुई। यह किसके क्रोधका पाप तुम्हारी बुद्धिमें मैं देखती हूं। यह मेरे ही भाग्यका दोष है, जो मैंने उत्तम गुणोंसे युक्त होकर भी दुःख भोगनेके वास्ते तुम्हें उत्पन्न किया था। तुम लोग सम्पत्तिके बिना, बनमें कैसे बसोगे; वीर्य्य सत्व, बल, उत्साह और तेजसे भरे कैसे दीन बनोगे। यदि मैं जानती कि बनमें रहनाही तुम्हारा निश्चय है, तो पाण्डुके मरनेके पश्चात् शतशृङ्ग पर्व्वतसे हस्तिनापुरमें न आती। मैं तुम्हारे तप और बुद्धियुक्त पिताको धन्य मानती हूं जो पुत्रशोकसे प्रथमही स्वर्गको चले गये। धर्म्मज्ञ कल्याणी माद्रीको भी मैं धन्य मानती हूं जो इन्द्रियोंसे जाननेके अयोग्य परम गतिको प्राप्त होगई। रति मति और गतिमें जो सदा-सङ्ग रहनेवाली जिसे केवल जीनाही प्यारा है, मुझ दुःखिनीको धिक्कार है। हे पुत्रो! तुम्हें नहीं छोड़ूगी बनको मैंभी चलूंगी, हाय! द्रौपदि! मुझे क्यों छोड़ती है? प्राणोंका धर्म्म नाशवान है, तो ब्रह्माने किस प्रमादसे मेरा अन्त नहीं बनाया, जो अवस्था मुझे नहीं छोड़ती है। हा! द्वारकावासी! बलरामके अनुज! मुझे और इन नरोत्तमोंको दुःखसे क्यों नहीं बचाते हो? जो मनुष्य तुम्हें अनादि और

अनन्त समझके तुम्हारा ध्यान करते हैं, उनकी तुम रक्षा करते हो यह कहावत अब झूठी कैसे होगई यह लोग सद्धर्म, माहात्म, यश और वलसे पूर्ण हैं, दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, इन पर दया कीजिये। नीतिके तत्वार्थोंको जाननेवाले कुल-नाथ भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य्य आदिके बैठे हुए यह विपद कैसे आगई। हाय महाराज पाण्डव! तुम कहां हो? शत्रुओंसे हारे हुए साधुपुत्रोंको क्यों त्यागते हो? हे सहदेव! तुम लौट आओ! तुम मुझे प्राणसेभी प्यारे हो, हे माद्रीनन्दन! कुपुत्रके समान मुझे मत त्यागो। यदि सत्यको पालनेवाले तेरे भाई वनको जाते हैं तो जाते हैं, तू मेरी रक्षाका धर्म्म यहीं प्राप्तकर। वैशम्पायन बोले, कि इस प्रकारसे विलाप करती हुई कुन्तीको प्रणाम करके, दुःखसे पूरित हो पाण्डवलोग वनको चले गये! विदुर उस दुखिनी कुन्तीको समझाकर और आपभी दुःखी वनके घरमें ले गये। धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी स्त्रियां जुएमें द्रौपदीके वस्त्र खींचने और वनको जानेकी कथा सुनके बहुत रोने और कुरु लोगोंकी निन्दा करने लगीं। अनेक स्त्रियां मुखपर हाथ रखके बहुत देर तक सोचती रह गईं। उस समय राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके अन्यायका ध्यान करके शान्तिको प्राप्त न हो सके।

राजा धृतराष्ट्रने शोकसे व्याकुल और चञ्चलचित्त होके विदुरको बुलाया। तब विदुर राजा धृतराष्ट्रके घर पर गये, नराधिप धृतराष्ट्रने विदुरसे पूछा।

७५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब आए हुए दीर्घदर्शी विदुरसे अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र शङ्का सहित ऐसा कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, हे क्षत्त! कुन्तीपुत्र धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पांचोपाण्डुपुत्र किस प्रकारसे वनको जाते हैं। धौम्य और यशस्विनी द्रौपदी कैसे वनको जाती है, सो सब सुननेकी हम इच्छा रखते हैं, तुम उनकी चेष्टा हमसे कहो।

विदुर बोले कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर वस्त्रसे अपने मुखको छिपाकर जाते हैं, भीम अपनी विशाल बाहुवोंको देखते, अर्जुन बालू उड़ाते उड़ाते राजाके पीछे गमन करते हैं, माद्रीके पुत्र सहदेव अपने मुखको लिप्त करके और अत्यन्त सुन्दर नकुल भी विह्वलचित्त होकर अपने सब शरीरको मिट्टीसे पोतकर राजाके पीछे जाते हैं। विशालनेत्रा सुन्दरी द्रौपदी बालोंसे मुखको छिपा कर राजाके पीछे रोती हुई जाती है। हे राजन्! हाथमें कुशलिये भयानक यम है देवता जिनका ऐसे सामवेदके मन्त्रोंको गाते हुए धौम्यभी जाते हैं।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर! पाण्डव लोग अनेक प्रकारके रूप बनाकर वनको जो जाते हैं, इसमें क्या कारण है, सो तुम मुझसे कहो।

विदुर बोले, यद्यपि तुम्हारे पुत्रोंसे छला गया है, राज्य और धन छीना गया है, तथापि बुद्धिमान् धर्म्मराजकी बुद्धि धर्म्मसे विचलित नहीं हुई; हे राजन्! महाराज युधिष्ठिर आपके पुत्रोंसे सदा घिन करते हैं, अतएव क्रोधसे आंख नहीं खोलते और पाण्डुपुत्र राजाने यह भी विचारा कि मेरे कठिन नेत्रोंसे प्रजा जल न जाय; अतएव वह अपना मुख आच्छादित करके जाते हैं; जिस निमित्त भीमसेन हाथोंको देखते हैं, हमसे सुनिये, बाहु-धन अभिमानी भीम अपनी विशाल बाहु दिखाते इसलिये जाते हैं, कि हमारे समान बाहुबली कोई नहीं है। अपने बल और द्रव्यके अनुसार कर्म्म बताते हुए और वाण वर्षाको बताते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन बालू उडाते राजाके पीछे जाते हैं, जैसे बालू परस्पर असंलग्न रूपसे उड़ता है, वैसेही अपने शत्रुओं

पर असंख्य बाण वर्षाते हैं, यह बतानेके निमित्त अर्जुन बारू वर्षाते जाते हैं। अब मेरे सुखको कोई न जान सके इस निमित्त नकुल सुख लेपकर जाते हैं। मार्गमें स्त्रियोंका मन मेरे ऊपर न आवे इसलिये सहदेव सब अङ्गमे मिट्टी पोतकर जाते हैं. एकवस्त्रा रोती हुई खुले केशवाली रजस्वला रुधिरसे भरे वस्त्रवाली द्रौपदी यह कहती जाती है, कि जिनके करनेसे मेरी यह दशा हुई है, अब से चौदहव वर्ष उनको स्त्रियांभी पति पुत्र भाई और प्यारे पुरुषोंके मर जानेसे बहुत रुधिरसे युक्तशरीरवाली, खुले केशवाली, रजस्वला इस प्रकारसे उनको जलदान करके हस्तिनापुरमें प्रवेश करेगी। हे भारत! नैऋत कुश बनाकर यमदेव देवतावाले साम वेदीय मन्त्रगाते धौम्य यों कहते हुए आगे जाते हैं, कि जब महा युद्धमें सब कौरव मारे जायंगे तब उनके गुरुभी इन्हीं मन्त्रोंका गान करेंगे। हे महाराज! नगरवासी प्रजागण यों कह कह रोते हैं, हाय हाय देखो यह हमारे स्वामी लोग बनको जाते हैं; धिक्कार हैं बूढ़े कुरुवंशियोंको जिनका मूर्ख लोगोंके समान कर्म है, धिक्कार है उनको जोलोभसे पाण्डुपुत्रोंको राज्यसे निकालते हैं, हाय हम सब पाण्डुनन्दनके विना आज अनाथ होगए, दुष्ट लोभी कौरवोंसे हमें कुछभी प्रीति नहीं है, इसप्रकारसे सब दुःखित होकर बार बार रो रहे हैं, इस प्रकारसे मनस्वी कुन्तीके पुत्र आकार और इङ्गितोंसे कहते हुए बनको जाते हैं, इस प्रकार से जब वे पुरुषव्याघ्र हस्तिना-पुरसे चले, तो विना बादर बिजुली चमकी कम्प हुआ। हे राजन्! विना समय सूर्य्य ग्रहण हुआ, नगरकी बाईं ओर उल्कापात हुआ, हे राजन्! मांसखानेवाले गिद्ध सियार और कव्वे देवतोंके स्थान स्मशान कोठे और अटारियों पर बोलते हैं, यह महाकठिन उत्पात सब भरतवंशके नाशके हेतु आपकी मन्त्रनासे प्रत्यक्ष होते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे वे दोनों राजा धृतराष्ट्र और बुद्धिमान विदुर जहां वार्त्ता कर रहेथे वहां कौरवोंकी सभामें नारद मुनि आये। महर्षि लोगोंके संयुक्त आतेही वह भयानक वार्त्ता कहने लगे; अबसे चौदहवें वर्ष दुर्योधनके अपराध और भीमसेन तथा अर्जुनके बलसे समस्त कुरुकुल नष्ट हो जायगा। इस प्रकारसे कहकर बहुत ब्राह्मलक्ष्मीको धारण किये हुए, ब्रह्मऋषियोंमें उत्तम भगवान् नारद आकाशमें जाकर अन्तर्ध्यान हो गए, तब दुर्योधन कर्ण और सुबलपुत्र शकुनी इन सबने द्रोणाचार्य्यको आश्रय जानकर सब राज्य उनको अर्पण कर दिया। अनन्तर द्रोणाचार्य्यने क्रोधी दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और सब कौर-वोंसे कहा, ब्राह्मणोंने देवपुत्र पाण्डवोंको अवध्य कहा है, परन्तु मैं अपने बलके अनुसार भक्ति पूर्वक सब प्रकारसे शरणागत राज-सहित धृतराष्ट्रपुत्रका अनुगामी हूं; परन्तु प्रारब्धबलको छोड़ नहीं सकता हूं, आज पाण्डवलोग जुएमें हारकर धर्मपूर्वक बनको जारहे हैं, वे बारह वर्ष बनमें रहेंगे, वे इस ब्रह्मचर्य्यव्रतका आचरण करके क्रोधके वशमें हो वैर निकालेंगे; सो वैर महादुःखका कारण होगा; हे राजन्! मैंने सखाभावके युद्धमें द्रुपदको भ्रष्ट किया है, अतएव उसने एक यज्ञ किया जिसमें मेरे मारनेवाला पुत्र हो। यज्ञ और उपयज्ञ करके बहुतपसे उसने अग्निवेदीके मध्यसे धृष्टद्युम्न पुत्र और सुमध्यमा द्रौपदीपुत्री प्राप्त की! सो धृष्टद्युम्न सम्बन्धसे पाण्डवोंका साला हुआ है, अतएव पाण्डवोंके प्रियकाममें निरत है, मुझे उससे बहुतही भय है, अग्निवर्ण देवदत्तक चक्रधनुष और बाणयुक्त धृष्टद्युम्नसे मुझे मूर्त्तिमान् मृत्युके ऐसा भय भान होता है, सो शत्रुनाशक धृष्टद्युम्न पाण्डवोंके पक्षमें है, जो युवा अर्जुन रथी और महारथी वीरोंकी संख्यामें अगाड़ी गिना जाता है, यदि उससे मेरा युद्ध हो तो, हे कौरवो!

जगत्में इससे अधिक और क्या दुःख होगा? धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य्यकी मृत्यु है, यहबात जगत्में प्रसिद्ध है, और धृष्टद्युम्नभी मेरे मारनेको प्रसिद्ध और बलसे भी जगत्में बहुतही प्रसिद्ध है। सो निश्चय करके तुम्हारे कारण अब वह उत्तमकाल आगया, सो अब शीघ्र कल्याणका यत्न करो, पाण्डवोंके वनमें जानेसे अच्छा नहीं हुआ, यह तुम्हारा सब सुख वैसाही चणभंगी है, जैसी हेमन्तऋतुमें तौड़की छाया। महायज्ञोंको करो, भोगो, दान दो, अबसे चौदहवें वर्ष महा नाशमें पड़ोगे। द्रोणाचार्य्यके ऐसे वचन सुनकर धृतराष्ट्र ऐसा कहने लगे।

हे विदुर! गुरुजीने सत्य कहा, तुम पाण्डवोंको लौटा लाओ और यदि वे न फिरें तो अच्छी रीतिसे जांय, शस्त्र, रथ पदाति और सब भोगकी वस्तु उनकेसङ्ग रहें।

७६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले,हे महाराज जब पाण्डव हारकरवनको चलेगए, तब धृतराष्ट्रको चिन्ता हुई। चिन्ता सहित श्वांस लेते हुए उद्विग्न बैठे उस राजा धृतराष्ट्रसे सञ्जय ऐसा कहने लगे। सञ्जय बोले हे पृथिवीनाथ! धनसे पूर्ण पृथिवीको प्राप्त करके और हे राजन्! पाण्डवोंको राज्यसे निकालकर अब कौन बात सोचते हो।

धृतराष्ट्र बोले, कि जिसकी युद्ध विशारद, महारथ बलवान् पाण्डवोंसे वैर होनेवाला है, वह बिना सोच कैसे रह सकता है?

सञ्जय बोले, हे राजन् यहमहावैर जिससे लोकोंका नाश जड़समेत होगा, सो आपहीके करनेसे हुआ है, भीष्म द्रोण विदुरके निवारण करने परभी तुम्हारे निर्लज्ज मूर्ख पुत्र दुर्य्योधनने प्रतिकामी से कहा कि धर्म्मचारिणी पाण्डवोंकी प्यारी स्त्रीको सभामें लेही आओ। देवता जिसकी पराभव चाहते हैं, उसकी बुद्धि नष्ट कर देते हैं, सो उसे बिपरीतही दीख पड़ता है, जब बुद्धि बिपरीत होती है और नाश उपस्थित होता है, तब अन्याय हृदयमें न्यायको स्थान ही नहीं देता है, उस पुरुषको अनर्थ अर्थरूप और अर्थ अनर्थरूप दीखने लगते हैं, और वेही उसे प्रिय लगते हैं; काल लाठी लेकर किसीका शिर नहीं फोड़ता है, बिपरीत दिखलाना यही कालका बल है, तपस्विनी अयोनिसे उत्पन्न रूपवती अग्निसे उत्पन्न पाञ्चाली द्रौपदीको सभाके बीचमें परिकर्षणकरके यह महालोमहर्षण भयानक वैर उत्पन्न किया गया है, जुआरियोंके बिना कौन उस सब धर्म्मकी जाननेवली यशस्विनीको सभामें लासकता है, ऋतुमती उत्तम सुमुखी रुधिरसे भरेहुए एकवस्त्रवाली द्रौपदीने नष्ट होने धनवाले राज्यसे भ्रष्ट हृतवस्त्र नष्टश्री सब कामोंसे हीन दासत्वको प्राप्त धर्म्मकी फांसीमें बंधे हुए पराक्रमके असमर्थ पाण्डवोंको देखा; क्रोधयुक्त अयोग्या दुःखी कृष्णाको कौरवोंकी सभामें दुर्य्योधन,कर्णने अनेक कडुवी बातें कही, हे राजन्! यह सब मुझे कठिन भान होता है।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे सञ्जय! द्रौपदीके दुःखार्त्तहोनेहीसे पृथिवी भस्म होजा सकती है, मेरे पुत्रोंका अब नाश होगा, धर्म्मिष्ठा धर्म्मराजकी स्त्री, रूप और यौवनसे संयुता द्रौपदीको सभामें आते देखकर कुरुकुलकी सब स्त्री गान्धारीके समेत रोती थीं, अब भी वे नित्य प्रजाकी स्त्रियोंके सङ्ग बैठकर सोचती हैं। संध्या समय सब और अग्निहोत्र नहीं होते। सभामें द्रौपदीके कर्षण करनेसे ब्राह्मण क्रुद्ध होगए, वायु घोर चलने लगा, आकाशमें वज्रका शब्द होने लगा, आकाशसे बिजली गिरने लगी प्रजाको भय उत्पन्न करते हुए, राहुने बिना समय सूर्य्यको ग्रहण किया,रथ शालाओंमें आग लग गई, भरतवंशियोंके अकल्याणके निमित्त ध्वजा टूट गई, दूर्य्योधनकी अग्निशालामें सियारो घोर शब्द करने लगो, सब ओर से उनके शब्द सुनकर गधे बोलने लगे। हे सञ्जय!

द्रोण भीष्म, कृपाचार्य्य, वाह्लीक और महात्मा सोमदत्त मेरे पास आए; तब मैंने विदुरसे प्रेरित होकर कहा कि मैं द्रौपदीको इच्छा-नुसार वर देता हूं, तब द्रौपदीने पाण्डवोंकी अदासत्व मांगी रथ धनुषके समेत मैंनेभी उन्हें देनेकी आज्ञा दी, उसी समय महापण्डित सब धर्मोंके जाननेवाले विदुरने कहा कि बस जब द्रौपदी सभामें आई कुरुकुल तब वहींतक था, यह जो पाञ्चालराजकी पुत्री द्रौपदी है, सो लक्ष्मी है, प्रारम्भसे पाण्डवोंके पीछे फिरती है, उसका दुःख पाण्डव, महाबलवान् सत्यसन्ध वासुदेवसे रक्षित महाबल धनुर्धारी और पाञ्चाल नहीं सह सकेंगे. जब प्रज्वलियोंसे वेष्टित अर्ज्जुन और उनके बीचमें महाबाहु भीमसेन कालदण्डके समान गदा को घुमाता हुआ पहुंचेगा, तब अर्ज्जुनके गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर भीमकी गदाके वेगको सहनेमें कोई भी राजा समर्थ न होगा। कौरवोंसे मैं पाण्डवोंको सदा बलवान् मानता हूं, अतएव उनसे सन्धि चाहता हूं युद्ध नहीं। देखो, तेजस्वी महाबल-वान् राजा जरासन्धको भीमने युद्धमें हाथोंहीसे मार दिया। हे सञ्जय! उस भीमसे हमारी संधि हो ऐसा यत्न शङ्का छोड़कर दोनो पक्षमें कीजिये। हे महाराज! ऐसा करनेसे तो परम कल्याणकी आशा होगी, इस प्रकारसे विदुरने कहा।

७७ अध्याय समाप्त।

सभापर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारत।

वनपर्व्व।

नारायणको, नरश्रेष्ठ नरको, सरस्वती देवीको और व्यासको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करें।

जनमेजय बोले, कि हे द्विजोत्तम! धृतराष्ट्रके पुत्र और उनके मन्त्रीवर्गसे जुएमें छल द्वारा हारकर और उन दुरात्माओंके, अत्यन्त शत्रुताको उत्पन्न करनेवाले दुर्व्वाक्य सुनकर क्रोधसे भरे कुरुकुलको बढ़ानेवाले पाण्डुपुत्र मेरे प्रपितामहोंने क्या किया था? इन्द्रके समान तेजोवान् वह कुन्तीपुत्र अचानक ऐश्वर्य्यसे भ्रष्ठ और सहनेके अयोग्य दुःखको पाकर वनमें कैसे विहार करते थे? उस विपदके समयमें कौन कौनसे मनुष्य उनके सङ्ग गये थे? अथवा किस रीतिसे उनको भोजन आदि प्राप्त होता था? यहां वह महात्मा लोग कैसे आचरणसे कहां निवास करते थे? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उन शत्रुघाती वीर महात्माओंके बारहवर्ष कैसे कटे थे? अथवा नारियोंमें मुख्य, पतिव्रता, राजपुत्री, महाभाग्यवती, सदा सत्य बोलनेवाली द्रौपदी, दुःख भोगनेमें अयोग्य होकरभी वनवासके कठोर दुःखभोगमें समयको कैसे बिताती थी? हे तपोधन ब्राह्मण! यह सब कथा आप मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। उन महाधनी और महावीर्य्यवान पाण्डवोंके सम्पूर्ण चरित्र आपसे सुननेके लिये मेरा चित्त बहुत चञ्चल हो रहा है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! धृतराष्ट्रके मन्त्रीवर्ग और दुरात्मा पुत्रोंसे हारकर और कुपित होकर पाण्डवलोग हस्तिनापुरसे चले। वे सब शस्त्रधारण करके द्रौपदीके सहित ऋद्धि सिद्धिसे भरे नगरके द्वारसे निकलकर उत्तर दिशाको चलने लगे। इन्द्रसेन आदि १५ राजमन्त्री स्त्रियोंको सङ्ग लेकर रथमें चढ़के शीघ्रताके साथ उनके पीछे चले; पुरवासी प्रजागण पाण्डवोंके वनगमनको सुनके, शोकसे व्याकुल होकर, सब लोग परस्पर मिलके और भयको त्यागकर, भीष्म, द्रोण कृप और विदुरकी निन्दा करके कहने लगे, कि जहांपर सुबलराजाका पुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासनके मतमें रहके पापात्मा दुर्य्योधन राज्य करनेकी इच्छा करता है, वहांपर हम समस्त प्रजागण, हमारा कुल, हमारे घर और धन आदि सबही नष्ट भये। जहांपर पापियोंकी सहायतासे पापात्मा दुर्य्योधन राज्य करनेकी इच्छा करता है वहांपर हमारा कुल, आचार, धर्म्म और धन कुछभी नहीं बचेगा; बस सुखकी सम्भावना कहां! यह दुर्य्योधन गुरुद्रोही आचारभ्रष्ट, स्वजनत्यागी, धनका लोभी, अभिमानी, नीचस्वभाव तथा दयारहित है; यह जहांपर राजा होगा, वहांपर सम्पूर्ण पृथ्वीका नाश होजायगा, इस कारणसे जितेन्द्रिय, शत्रुओंको जीतनेवाले, लज्जाशील, कीर्त्तिमान्,

धर्म्मके आचरण करनेवाले, दयाके सागर, महात्मा पाण्डवगण जिस देशको जाते हैं, हमलोगोंकोभी उसी देशमें जाना अच्छा जान पड़ता है, चलो हमलोग उसी देशको चलें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रजागण इस प्रकारसे कहके कुन्तीपुत्र और माद्रीनन्दनोंके पीछे चले। पश्चात् उन्होंने पाण्डवोंके समीप जाकर, हाथ जोड़के कहा, कि आप का कल्याण हो, आप इस दुःखी प्रजागणको त्यागकर कहां जायंगे? आपने जिस स्थानमें जानेको मनमें विचारा है, हमभी वहीं चलेंगे। दयारहित वैरियोंने अधर्म्मसे आपके राज्यको जुएमें जीत लिया है, इसको सुनके हम सब लोगोंका चित्त बहुत व्याकुल हो गया है; हम लोग आपके भक्त अनुरक्त, मित्र, आपका प्रिय और हित करनेवाले हैं, इस लिये हमलोगोंको त्याग देना आपके योग्य नहीं है, हमलोग कुराजाके राज्यमें बसकर विनाशको प्राप्त होना नहीं चाहते हैं। हे मनुष्यश्रेष्ठगण! अच्छे और बुरेके सङ्ग जो गुण और दोष मनुष्यमें उत्पन्न होते हैं उनका व्योरा हमलोग आपसे कहते हैं, आप लोग सुनिये। जिन प्रकारसे वस्त्र,जल और तिल यह सब वस्तु जिन फूलोंके सङ्गमें रहती हैं उन्हीको सुगन्धसे युक्त हो जाती हैं, ऐसेही मनुष्योंमेंभो अच्छे और बुरेके सङ्गसे शुभ और अशुभगुण उत्पन्न होजाते हैं। क्योंकि मूढ़ मनुष्यके प्रतिदिन सङ्ग करनेसे मोह रासिको वृद्ध होती है, ऐसेही सज्जनका सङ्ग धर्म्मका उत्पन्न करनेका कारण होता; इसो हेतुसे शान्तिपरायण मनुष्यको बुद्धिमान्, उत्तम चरित्रवाले, वृद्ध और तपस्वियोंका सङ्ग करना चाहिये। जिन लोगोंको विद्या, कुल और धर्म्म यह तीनों निर्म्मल हैं, उनका सङ्ग करना-शास्त्रके पढ़नेसे भो उत्तम है, कारण उनकी हो सेवा करनी चाहिये। हम लोग शास्त्रमें लिखे किसी कर्म्मका अनुष्ठान विना कियेही साधुलोगोंके सङ्गमें रहके पुण्यको प्राप्त कर सकेंगे। पापियोंको सेवा करनेसे हम लोगोंको केवल पापही मिलेगा। मनुष्यलोग धर्म्मात्मा होकर भी यदि असाधु मनुष्यका दर्शन, स्पर्श अथवा बातचीत, यहा एक स्थानमें निवास करें, तो वह भी नीच हो जाते हैं; और चित्तकी शुद्धिरूप सिद्धिको नहीं पा सक्ते हैं। पुरुषको बुद्धि नीचके सङ्गसे नीच होती है, मध्यमके सङ्गसे मध्यम और उत्तमके सङ्गसे उत्तम बुद्धि होती है, जो सब उत्तम गुण वेदमें कहे हैं, लोकाचारमें चलित हैं, जो सज्जनोंके द्वारा माने जातेहैं, जो धर्म्म, काम और अर्थको देनेवाले हैं, और लोकमें प्रसिद्ध हैं वह सबही संक्षेप और विस्तार रूपसे आपलोगोंमें वर्त्तमान हैं, इस कारणसे हम लोग अपने अपने कल्याणकी इच्छा करके ऐसेशुभ गुणयुक्त लोगोंके पास रहनेके अभिलाषी हुए हैं!

युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मणादि प्रजागण! जिस कारणसे आपलोग हमारी ओर स्नेह और दयायुक्त होकर हमलोगोंमें कोई गुण न होने परभी हमें गुणवान् कह कर वर्णन करते हैं, इसी कारणसे हमलोग धन्यहुए हैं। हम अपने भाइयोंके सहित जो कुछ आपसे कहते हैं, उसे आपलोग हमारे स्नेह और दयाके वश होके मिथ्या नहीं करेंगे। हस्तिनापुरमें हमलोगोंके पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, विदुर, हमारी माता, और मित्र हमलोगोंके वास्ते शोकसे व्याकुल हो रहे हैं, आपलोग हमारे हित करनेको इच्छासे उन सबको बड़े यत्नसे पालन करना। आपलोग हमारे वनको जानेके कारण बहुत सन्तापयुक्त होकर बहुत दूर चले आये हैं, इसलिये हमारे वाक्यसे आपलोग फिरके घर जाके हम लोगोंके आत्मीयजनोंको ऐसा समझा कर कि हम उन्हे आपलोगोंको सौंपे जाते हैं, उनलोगों पर प्रीति रखियेगा; इसहीसे हमलो-

गोंके मनका परम कार्य्य और सत्कार तथा सन्तोष होगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वह प्रजा धर्म्मराजके द्वारा ऊपर लिखी रीतिसे समझायी जाकर, हा महाराज! हा महाराज! कहके भयानक आर्तस्वरसे विलाप करने लगी; क्या करे, विना आज्ञाके कोई सङ्ग नहीं जा सक्ता है, कुन्तीपुत्रोंके गुणोंको स्मरण करते हुए, महादुःखी होकर पाण्डवोंका सङ्ग छोड़नेकी इच्छा न रहने परभी प्रजागण विवश होके लौटे। पुरवासियोंके लौट जाने पर पाण्डवलोग जुदे जुदे रथोंपर चढके गङ्गातट पर जहां प्रमाण नामक बड़ा भारी बटवृक्ष था, वहां पहुंचे। वहलोग जिस समय गङ्गाके तटपर खड़े उक्त महावटके पास आये, उसी समय सन्ध्या होगयी, उन वीरोंने गङ्गाके शुद्ध जलको स्पर्श करके उस रात्रिको वहीं निवास किया; उन्होंने रात्रिको गङ्गाजलके सिवाय और कुछ भोजन न किया। इसी प्रकारके दुःखसे उन्होंने वह रात्रि व्यतीत करी, पाण्डवोंके स्नेहसे कितने ही अग्निहोत्र करनेवाले और कितनेही विना अग्निहोत्रवाले ब्राह्मण अपने शिष्य और बन्धु बान्धवों सहित उनके सङ्ग चले आये थे। महाराज युधिष्ठिर उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके मध्यमें अत्यन्त शोभायमान हुए, वह भयानक सन्ध्याकाल ब्राह्मणोंको प्रकाशित होमकी अग्नि, वेद पाठ और आपसकी बोलचालसे मनोहर हो गया, उन ब्रह्मणश्रेष्ठोंने हंसोंके समान मीठे स्वरसे कुरुकुल-प्रधान युधिष्ठिरको धैर्य्य देकर उनका चित्त बहलाते वह सब रात बिता दी।

वनपर्व्वमें पहिली अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि रातके बीतनेपर सवेरा होतेही भिक्षाके अन्नको खानेवाले ब्राह्मणलोग, वनमें जानेको उद्यत हुए पाण्डवोंके आगे जाकर खड़े हुए। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने उन्हें सम्मुख खड़े देखकर कहा, कि इस समय हमारा सर्व्वस्व हरा गया, हमारा राज्य छिन गया, हम श्रीरहित हैं, और हम, फल मूल तथा मांस भोजन करके वनको जायंगे, इसलिये निश्चय जान पड़ता है कि, यदि आपलोग हमारे सङ्गमें अनेक दोषोंसे भरे व्याघ्र और हिंसा करनेवाले जन्तुओंसे सेवित वनमें चलेंगे, तो आपलोगोंको अनेक दुःख होंगे। जिसके आश्रयमें रहके ब्राह्मणलोग दुःख पाते हैं, चाहे वह देवताभी हो, तौभी उसका नाश हो जाता है, हमतो मनुष्यही हैं, हमारे आश्रयमें यदि आप लोग क्लेश पावेंगे तो हमलोग अवश्य नष्ट हो जायंगे, इस वास्ते आपलोग यहांसे लौटकर जहां इच्छा हो, वहां चले जाइये। ब्राह्मण लोग बोले, कि हे महाराज! आपलोगोंकी जो गति होगी हमलोगभी उसी गतिको प्राप्त होनेकी इच्छा करते हैं, हमलोग सद्धर्म्मको जाननेवाले और आपके प्रेमी हैं, हमें छोड़ना आपको योग्य नहीं है, देखिये देवतालोगभी अपने भक्तोंपर दया करते हैं, विशेषतः हमलोग सदाचारयुक्त ब्राह्मण हैं, हमपर आपको दया करना अवश्य चाहिये। युधिष्ठिर बोले, कि हे ब्राह्मणवृन्द! हमारीभी ब्राह्मणोंपर सदा परम भक्ति रहती है, किन्तु क्या करें इस समय सहायहीन होनेसे हमको शिथिल होना पड़ा है; यह हमारे भाई लोग आपकी सेवाके वास्ते जो फल मूल और मृगोंका मांस लावेंगे वही शोकसे उत्पन्न दुःखसे मोहित होरहे हैं, औरोंसे अपने राज्यका छिना जाना तथा द्रौपदीके अपमानसे वह लोग बहुत घबड़ा रहे हैं, इस कारणसे इस कालमें उन लोगोंको फल-मूल आदिको लानेके वास्ते नियुक्त करनेमें मेरा उत्साह नहीं होता है। ब्राह्मण बोले, महाराज! आपको हमारे पालनकेवास्ते चिन्ता करनी नहीं होगी, हम लोग अपने भोजनको आपही लाकर समय बितावेंगे। ईश्वरके ध्यान

और जपसे आपके कल्याण करनेमें तत्पर रहेंगे तथा मनोहर कथा कहके आपके साथ सन्तोष पावेंगे। युधिष्ठिर बोले, ऐसा होनेसे हम ब्राह्मणोंके साथ सदा आनन्दसे रह सक्ते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं, हम अपनी हीनतासे आपकी हीनताभी देखते हैं, कारण कि आप दुःख भोगनेके योग्य नहीं, तोभी हमारे प्रेमके वश होके, दुःख सहकर आपही भोजनके पदार्थ लाकर आहार करेंगे, यह हम कैसे देख सकेंगे; धृतराष्ट्रके पापी पुत्रोंको धिक्कार है, जिनके कुकर्म्मोंसे इस प्रकारकी दुर्घटना हुई।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इसप्रकारसे कहकर महाराज युधिष्ठिर शोकसे व्याकुल हो धरती पर बैठ गये, पश्चात् अध्यात्म तत्वके जाननेवाले तथा सांख्ययोगमें निपुण शौनक नामक एक विद्वान् राजासे कहने लगे, हे महाराज! सहस्रों शोकके स्थान और सैकड़ों भयके स्थान मूर्खहीको आश्रय करते हैं, पण्डितको आश्रय नहीं कर सक्ते हैं। जो कर्म्म ज्ञानके विरोधी, मुक्तिमें विघ्न करनेवाले और बहुत दोषयुक्त हैं, ऐसे कर्म्मोंमें आपके समान बुद्धिमान् नहीं लगते हैं। हे महाराज! पण्डितलोग जिस बुद्धिको सब दुःखोंकी नाश करनेवाली कहके वर्णन करते हैं वही श्रुति और स्मृतिसे भरी, आठ अङ्गवाली बुद्धि आपमें विराजमान है; इससे आपसे पुरुषोंको धनके कष्टसे वा दुःखसे चलने योग्य मार्ग, वा अपने सम्बन्धियोंके आपत कालमें, अथवा मन सम्बन्धी वा शरीरसम्बन्धी दुःखने दुःखी होना उचित नहीं है। पहिले समयमें महात्मा लोगोंने चित्तको स्थिर करनेवाले सिद्धान्त कहे हैं, उन्हें मैं कहता हूं सुनिये। यह जगत् मन और देह इन दोनोंके निमित्तही दुःखसे पोड़ित होता रहता है। इसी मानसिक और देह सम्बन्धी दुःखोंकी शान्तिका उपाय संक्षेप और विस्तारसे कहता हूं, सुननेको तयार हूजिये। व्याधि, अनिष्ट प्राप्त, श्रम और प्यारी वस्तुकी अप्राप्ति, इन चार कारणोंसे शरीरमें दुःख उत्पन्न होता है, औषधादिके सेवनसे व्याधि और सदाचिन्तासे दूर रहने रूप योगसे आधा "मनका दुःख" दूर होता है। बुद्धिमान वैद्यलोग पहिलेही प्यारी बात, सुखभोग और प्रसङ्गसे रोगी मनुष्यके मनोगत दुःखको शान्त करते हैं, जैसे तपेहुए लोहेके टुकड़ेसे घड़ेमें भरा जल तप जाता है, ऐसेही मनके दुःखसे शरीरभी तप जाता है; इस कारणसे ज्ञान रूपी जलसे मनके दुःखकी अग्निको बुझा देनाही कर्त्तव्य है। मनका सन्ताप दूर होनेसे शरीरकी ताप बुझ जाती है। मनुष्योंका स्नेह ही दुःख भय, शोक, हर्ष और राग इन सबका कारण है; प्रीति होनेसे ही विषयोंकी चिन्ता और विषयोंमें प्रीति यह दो विकार मनमें उत्पन्न होते हैं, यह दोनों विकार कल्याणकी नाश करनेमें यद्यपि एक से हैं, तौभी पहिली विषय-चिन्ता बहुत बड़ी है। जैसे वृक्षकी खोखरके भीतर रहनेवाली अग्नि वृक्षको जड़के सहित नाश करदेती है, ऐसेही थोड़ीभी विषय-प्रीति मनुष्यके धर्म्म और अर्थका नाश करदेती है। जो मनुष्य विषयका त्यागी हो उसे, विषयसे विरक्त नहीं कहते हैं, किन्तु जो मनुष्य विषय प्राप्तिमें दोषोंको समझता है, वही विषय-त्यागी कहाता है, वह त्यागीही वैराग्यका पात्र है, वही शत्रुता रहित स्वतन्त्र होता है। इस हेतुसे धन इकट्ठा करके मित्रोंसे प्रेम करनेकीभी इच्छा मत करना; तथा अपने शरीरसे उत्पन्न हुए स्नेहको ज्ञानसे निवारण करना। जैसे कमलके पत्ते पर जल नहीं लगता है, वैसेही उन नित्य वस्तुओं पानेमें उद्योग करनेवाले, शास्त्रज्ञ शुद्धचित्त और प्रसिद्ध विवेकी मनुष्योंके अन्तःकरणमें स्नेह नहीं लग सक्ता है। जो मनुष्य विषय प्रीतिमें फंसता है, उसी मनुष्यके अन्तःकरणमें विषयकी अभिलाषा उत्पन्न होकर उसे दुःख होता है; अनन्तर उसके चित्तमें विषय भोगकी इच्छा उत्पन्न होती है, उसके पीछे

विषयमें तृष्णा बढ़ती है। महापापिनी विषयतृष्णाही प्रतिदिन मनुष्यको पीड़ा देती है और पाप कर्म्ममें लगाती है; इस विषयतृष्णाको दुर्वुद्धि लोग नहीं छोड़ सकते हैं; मनुष्यका शरीर वृद्ध होजाता है,पर तृष्णा वृद्ध नहीं होती है,इस लिये तृष्णाको प्राणनाशक रोग कहसकते हैं; जो मनुष्य विषयतृष्णाको त्याग कर सक्ता है वही सुखी होता है। इस विषयतृष्णाका आदि और अन्त नहीं है, यह प्राणियोंके अन्तःकरणमें वैठके अग्निके समान उन्हें नाश करती है। जिस प्रकारसे काठ अपने अङ्गसे उत्पन्न हुए अग्निसे विनाश होता है, वैसेही अपनी आत्माकी वुराई चाहनेवाला मनुष्य अपने अङ्गसे उत्पन्न हुए लोभसे नष्ठ होता है। जैसा मृत्युसे सब प्राणियोंको भय होता है, वैसाहि चोरसे, राजासे, आगसे, जलसे और अपने कुटुम्बियोंसे धनवान् मनुष्यको डर होता है। जिस प्रकारसे मांस यदि आकाशमें रहे, तो पचीगण, पृथ्वीमें रहे, तो मांस खानेवाले जन्तु, और जलमें रहे, तो मछली उसे खाती हैं; वैसेही धनाढ्य लोग जहां रहते हैं, वहीं उन्हें विपत्ति घेरती है, धनही अनेक मनुष्योंकेवास्ते अनर्थकी जड़ होता है; इस कारणसे जो मनुष्य धनको कल्याणकारी समझके उसमें लिप्त होता है, वह सच्चे सुखको नहीं पासकता है। वुद्धिमान् मनुष्य जानता है, कि धनकी प्राप्ति, लोभ मोहका कारण तथा कृपणता अभिमान डर, और घवराहट इनसव दुःखोंकी जड़ केवल धनही है। देखिये धनको कमानेमें जैसा दुःख सहना पड़ता है, वैसाही दुःख धनकी रखवाली और देखभाल तथा धनके नाशमें सहना पड़ता है। धनसे दुःख दूर करनेवास्ते लोग पाले जाते हैं, वह लोगभी धनकेवास्ते दुःखके कारण हो जाते हैं; इसलिये धनके नाशकी चिन्ता करना उचित नहीं है। जा लोग मूर्ख होते हैं, वह असन्तोषसे समयको विताते हैं, और पण्डित लोग सदा सन्तोषके अमृतमें अन्तःकरणको भिगाये रहते हैं; कोई भी मनुष्य कभी विषयतृष्णाके पार नहीं जा सक्ता है, वस सन्तोषही परम सुख वर्णन किया गया है। पण्डितलोग, जीवन यौवन, रूप, रत्नोंका इकट्ठा करना, प्रभुता और प्यारे मनुष्यके पास रहना, इन सब वस्तुओंकी अनित्य जानकर उनमें इच्छा नहीं रखते हैं। इस कारणसे दुःख सहकरभी धनके कमानेकी त्यागना योग्य है। जिस कारणसे धनके कमाने वाले मनुष्य कभी उपद्रवरहित नहीं देखे जाते हैं, इसी निमित्त धर्म्मात्मा लोग उसीकी प्रशंसा करते हैं, जिसकी धनमें प्रीति नहीं रहती है। जो पुरुष धर्म्मकेवास्ते धन कमानेका उद्योग करते हैं, उस उद्योगकी अपेचा क्रियारहित होना उत्तम है, क्योंकि अंगमें लगी हुई कीचको कीचसे धोनेकी अपेचा कोचको न छूनाही उत्तम है। हे युधिष्ठिर! जो आपको धर्म्ममें प्रीति हो तो धनमें इच्छारहित बनो। युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण! मैं ब्राह्मणोंके पालनेकेवास्ते ही धनकी इच्छा करता हूं, लोभसे वा अपने भोगविलासकेवास्ते मुझे धनकी कामना नहीं हैं! हमारे ऐसे पुरुष गृहस्थाश्रममें रहके अपने आश्रममें रहनेवालोंको विना पालन किये कैसे निश्चिन्त रहसक्ते हैं! जैसे सब प्राणियोंको अपने कुटुम्बोंको भोजन बांट देना उचित है, वैसेही गृहस्थको सन्यासी और ब्रह्मचारी पाकक्रियारहित मनुष्योंको भोजन देना आवश्यक है। यदि भले मनुष्यके घरमें अतिथि और अभ्यागत लोगोंकेवास्ते और कोई देने योग्य वस्तु न हो, तो आसनकेवास्ते तृण, रहनेको स्थान पीर पीनेको जल और सन्तोष देनेको मीठेवचन इन सबकाकभी अभाव नहीं होता है। गृहस्थ मनुष्य रोगीको शय्या, थकेमांदेको आसन, प्यासेको जल, और भूखेको भोजन

देता है। जो घरपर कोई अतिथि आवे तो उस पर स्नेहदृष्टि रखना, बड़ी श्रद्धासे मनही मनमें प्रसन्न होना, मीठे वचनसे उसे सन्तुष्ट करना, खड़े होकर आसन देना, हाथ उठाकर उनके सम्मुख जाना और यथायोग्य उसकी पूजा करना यह सब गृहस्थके नित्यधर्म्म हैं। जो मनुष्य अग्निहोत्र, गौकी सेवा, तथा पुत्र, स्त्री सेवक, जाति और अयिथिका पालन पोषण न करें वेही मनुष्य अधर्म्मके कर्म्मसे उत्पन्न हुए पापद्वारा भस्म होते हैं, इसी कारणसे गृहस्थ मनुष्य अपने भोजनकेवास्ते पाक और पितर देवता, और अतिथोंकी पूजाके उद्देश्यको छोड़के पशुको न मारे, तथा पितर, देवता और अतिथि को विनादिये मारे हुए पशुका मांस न खाय; वरन सायंकाले और प्रातःकाल कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंके वास्ते पृथ्वीमें अन्न रखके वैस्व-देव नामक वलि प्रदान करे, जो मनुष्य प्रतिदिन पितर देवता और अतिथिको भोजन करानेके पश्चात यज्ञसे बचा भोजन करता है वही मनुष्य अमृत भोजन करता है, इस अतिथिसेवनरूपी यज्ञमें अतिथिको स्नेह भरी दृष्टिसे देखना, मनको प्रसन्न और मिठिवाणीसे प्रसन्न करना, अतिथिके पीछे जाना, अन्न आदिसे अतिथिसेवा करना यह पांच प्रकारको दक्षिणा देनी चाहिये। जो गृहस्थ राहसे थके हुए मनुष्यको कृपणताको छोड़के भोजन कराता है वही महा पुण्यको पाता है; पण्डितलोग कहते हैं, कि जो लोग गृहस्थाश्रममें रहके इस प्रकारसे आचारको पालन करते हैं, उनकी परम धर्म्म होता है; हे दिजवर! इससे आपका प्रयोजन क्या है उसे प्रकाश कीजिये।

शौनक वोले, हा कष्ट! हा शोक! इस संसारका स्वभावही उलटा है, देखिये, भले मनुष्य जिस कार्य्यसे लज्जित होते हैं, दुष्ट मनुष्य उसीसे प्रसन्न होते हैं, वुद्धिहीन मनुष्य मोह, और प्रीतिके वशमें तथा इन्द्रियोंके प्यारे काममें फंसके लिङ्ग और पेटकेवास्ते अनेक लोगोंकी अन्न और जल दिया करते हैं। जैसे दुष्ट और विगड़े हुए घोड़ोंके द्वारा सारथी राहमें गिरता है, वैसेही हरनेवाली इन्द्रियोंके द्वारा खिंचकर परमार्थ ज्ञानसे विहीन होकर वही वुद्धिहीन मनुष्य नष्ट होता है। छहो इन्द्रियोंमेंसे कोई इन्द्रिय अपने विषयकी ओर जाती है, उस समय मनुष्यका अन्तःकरण उसी विषय भोगकी कामना करता है; इस प्रकारसे जिस मनुष्य का अन्तःकरण विषय-भोगकी ओर दौड़ता है, उसी मनुष्यको उस विषयको भोगनेमें इच्छा और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय, जैसे पतङ्ग अग्निकी लौयके रूपसे मोहित होकर उसमें गिरता है, उसी प्रकारसे विषय-भोगके सङ्कल्प रूप कामनाके वाणसे विंधकर लोभकी अग्निमें गिरता है, पश्चात् वह मूर्ख मनुष्य इच्छाके अनुसार आहार विहारसे महामोहसे भरे सुखमें डूवकर आत्मतत्वको नहीं जानता है; वस कर्म्म, अविद्या और विषय तृष्णासे चक्रके समान भ्रमित होकर इस संसारमें ब्रह्मासे तिनकेतक भूमिमें फिरने वाले आकाश-में चरनेवाले, और जलचर आदि योनियोंमें वारम्वार जन्म लेते हैं; महाराज! अज्ञानी जीवोंको ऐसीही गति होती है। जो मनुष्य कल्याणकारी धर्म्मके आचरणसे मुक्ति पानेके पात्र हैं, उनको गति सुनिये। कर्म्म करने योग्य हैं और कर्म्मत्यागने योग्य हैं, यह दोनों प्रकारके वेदवाक्य हैं, इस कारणसे यह सब धर्म्म अभि-मान रहित होके करे :—यज्ञ, वेद-पढ़ना, दान, तपस्या, सत्यका आचरण, क्षमा इन्द्रियोंको जीतना, और अलोभ यह आठ प्रकारका धर्म्म मार्ग कहा गया है, इनमेंसे पहिले कहे चार पितृलोकके मार्गकी लेजाते हैं, इस विषयमें जो कर्म्म करने योग्य कहके वर्णन किये गये हैं, उनको अभिमान रहित होके करे तथा अन्तमें लिखे देवयानके नामसे प्रसिद्ध हैं, इनको महात्मा लोग सदाही करते हैं। परन्तु

शुद्धचित्त होके ऊपर लिखे अष्टाङ्ग धर्म्मको करना चाहिये। इस कारणसे जो मनुष्य संसारको जीतने अर्थात् मोक्ष पानेकी इच्छा रखते हों, वह अच्छी भावना भली भांति इन्द्रियोंको जीतना; भलीभांति विशेष व्रत, भलीभांति गुरुसेवा, भलीं भांति वेदोंका पढ़ना, भलीभांति अन्नका त्याग और भली भांति चित्तको रोककर कर्म्मोंको करते हैं। देवता लोगोंने राग द्वेष रहित होकरही ऐश्वर्य्यको पाया है। रुद्रगण, साध्यगण, आदित्यगण, वसुगण और दोनों अश्विनीकुमार इसी भांतिके ऐश्वर्य्यसेही इस प्रजागणका पालन करते हैं। हे कुन्तिनन्दन! आप भी पूरीरीतिसे शममें तत्पर होके तपकी सिद्धि और योगकी सिद्धिको प्राप्तकरने आदिसे पितृऋणसे मुक्त होकर पिता मातारूपी सिद्धिको पाया है और यज्ञआदि कर्म्मोंको करके कर्म्ममयी सिद्धिको पाया है, इस समय ब्राह्मणोंका पालन करनेके वास्ते तपस्यासे सिद्धि प्राप्त करनेको इच्छा कीजिये,, तपसे सिद्ध हुआ मनुष्य जो इच्छा करता है तपके प्रभावसे वही कर सकता है। इस कारणसे तपस्याको आश्रय करके अपने मनोरथको पूरा कीजिये।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर शौनकके इन सब वचनोंको सुनके, पुरोहितको बुलाके भाइयोंके मध्यमें बैठके कहने लगे। हे भगवान्! मैं बनको जानेके वास्ते उद्यत हूं, तोभी यह पाठमें निपुण ब्राह्मण मेरे साथी बनते हैं, अब इनको पालन करने और दान करनेमें समर्थ नहीं हूं, इस कारणसे मैं बहुत ही दुःखी हूं, पर इनको छोड़भी नहीं सक्ता हूं, इसलिये मुझे कैसा कर्म्म करना चाहिये, वह आप मुझे उपदेश दीजिये। श्रीवैशम्पायनजी बोले, धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुरोहित धौम्य युधिष्ठिरके इस प्रस्तावको सुननेके पश्चात् एक मुहूर्त्तभर समाधिसे उस विषयको विचार कर कहने लगे, कि पहिले समयमें सविता सूर्य्य सब प्राणियोंको भूखसे अत्यन्त दुःखी देखकर उन प्राणियों पर पिताके समान दयालु हुए, इसी हेतुसे वह उत्तरायणमें जाके अपनी किरणोंसे जलको उठाते हैं, और दक्षिणायनमें उष्णता (गर्म्मी) को धारण करके पृथ्वीपर विराजमान रहते हैं, जब वह खेतोंमें गर्म्मी पहुंचाते हैं, उसके पश्चात्, औषधियोंके स्वामी चन्द्रमा उसी उठाये हुए जलसे अन्तरीक्षमें मेघ-उत्पन्न करके जल बरसाते और औषधियोंको उत्पन्न करते हैं। वस चैत्रय सूर्य्यही चन्द्रमाके तेजसे सेचन और खेतीके अङ्कुर रूपमें निकलकर ६ रसयुक्त पवित्र औषधियोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं, यह औषधिही संसारमें प्राणियोंका अन्न होती हैं, जिस कारणसे सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका आधार अन्नही सूर्य्यकी कृपासे होता है, और सूर्य्यही सब प्राणियोंके पिता रूप हुए हैं, इसी कारणसे आप सूर्य्यके ही शरणागत हूजिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए राजालोग पूरीरीतिसे तपस्याको आश्रय करके ही प्रजाको दुःखसे उद्धार किया करते हैं, देखिये धौम्य, कार्त्तवीर्य्य, पृथु और नहुष इन राजोंने तपस्या और समाधिको अवलम्बन करके ही प्रजाको विपतसे उबाराथा। हे धर्म्मात्मन्! आपभी शुद्ध कर्म्मवाले हैं, आपभी उन्होंके समान तपस्या करके ब्राह्मणोंका पालन कीजिये।

जनमेजय बोले, कुरुकुलके मुकुट राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंके वास्ते विचित्ररूपी सूर्य्यकी किस प्रकारसे तपस्या की थी। श्रीवैशम्पायन बोले, हे राजेन्द्र! आप भलीभांति सुनिये, मैं पूर्णरीतिसे उसका वर्णन करता हूं, आप शुद्ध और शान्त चित्तसे सुनिये। हे महाबुद्धिमान्! धौम्य ऋषिने महात्मा युधिष्ठिरसे जो सूर्य्यके

एकसौ आठ नामके स्तोत्रको वर्णन किया था, उसे सुनिये। सूर्य्य, अर्य्यमा, भग, त्वष्टा, धाता, प्रभाकर, पृथिवी, जल तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, वृहस्पति, शुक्र, बुध, मङ्गारक, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्रवण, यम, विद्युत् जठर और भौतिक अग्नि, तेजः पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन,सत्य, त्रेता, द्वापर, सबमलोंका आश्रय कलियुग, कला, काष्ठा, मुहूर्त, रात्रि, प्रहर, सम्वत्सर करनेवाले, अश्वत्थ कालचक्र, सनातन, कालपति प्रजापति, विश्वकर्म्मा, तमोनाशक, वरुण, सागर अंशु जीमूत, जीवन, शत्रुनाशी, भूताश्रय, सब प्राणियोंसे नमस्कार करनेयोग्य, भूतपति, स्रष्टा, सम्वर्त्तक, वह्नि, सर्वादि, अलोलुप अनन्त, कपिल, कामप्रद भानु, सर्वतोसुख,जय, विशाल, वरद सब धातुओंको सींचनेवाले, मन, सुवर्ण, भूतादि; शीघ्रगामी प्राणोंका आधार, धन्वन्तरि, धूमकेतु, अदिति पुत्र, आदिदेव, द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष, पिता, माता, पितामह स्वर्गद्वार, मुक्तिद्वार, त्रिपिष्टप, देहकर्त्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा,विश्वतोमुख, दयावान् मैत्रेय, स्मरण करने योग्य, महातेजवान् सूर्य्यके यह १०८ नाम स्वयम्भूने वर्णन किये थे। देवता, पितर, और यक्षलोग जिसकी सेवा करते हैं, असुर, निशाचर और सिद्धगण जिसकी वन्दना करते हैं, जो उत्तम सुवर्ण और अग्निके समान, प्रकाशयुक्त हैं ऐसे भास्करको कल्याणके निमित्त नमस्कार करता हूं। जो मनुष्य सूर्य्य निकलनेके समय एकाग्रचित्त होके इस स्तोत्रको पढ़ते हैं, वह पुत्र, स्त्री, धन; रत्न, स्मरणशक्ति, तथा धारणाशक्ति और बुद्धिको पाते हैं। यदि मनुष्य परमदेव सूर्य्यके इस स्तोत्रको शुद्ध और स्थिरचित्तसे पाठ करे, तो शोकरूपी अपार दावानलसे छूट जाय और मनवाञ्छित सिद्धिको पासकता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, राजा युधिष्ठिरने धौम्यसे इन समयानुसार वाक्यों को सुनके ब्राह्मण प्रतिपालन रूपी धर्म्म चिन्ता करके दृढ़ नियम और शुद्धचित्त होकर मनको संयममें, लगाके घोर तपस्याका आरम्भ किया। वह पुष्प तथा नैवेद्य आदिसे सूर्य्यकी पूजा करके जलमें धसकर सूर्य्यके सम्मुख खड़े हुए। उन धर्म्मात्माने इन्द्रियोंको जीतके योगको आश्रय और वायु भक्षण करके तथा गङ्गा जलको छूकर प्राणायामके अनुष्ठानमें कुछ समयको बिताया; पश्चात् शुद्ध और मौनी होके स्तुति करना आरम्भ किया। हे सूर्य्य! तुम जगत्के नेत्र, तुम सब प्राणियोंके आत्मा, तुम चराचरके आत्मा, तुम चराचरके उत्पत्ति स्थान और तुमही सम्पूर्ण क्रियावानोंके आधार हो। तुमही समस्त ज्ञानियोंकी गति, तुमही योगीजनोंका परम आश्रय, तुमही मुक्ति चाहनेवालोंका खुला मुक्तिद्वार और तुमही सब लोकोंके आधार हो। तुमहीसे सब लोक प्रकाश पाते हैं, तुमहीसे इस जगतको शुद्धता प्राप्त होती है, तुमही छलरहित भावसे इस जगत्को पालन करते हो, ऋषिलोग तुम्हारी पूजा करते हैं, एवम् वेदपाठी ब्राह्मणलोग अपनी अपनी शाखाओंमें लिखे मन्त्रोंसे समय पर तुम्हारी उपासना करते हैं।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व्व, यक्ष, गुह्यक, और सर्प वरमांगनेवास्ते तुम्हारे शीघ्रगामी दिव्यरथके पीछे पीछे फिरा करते हैं। इन्द्र और उपेन्द्रके सहित तेंतीस देवता और विमानविहारी गणोंने तुम्हारो उपासना करके ही सिद्धि पाई है; उत्तम विद्याधरोंने दिव्यमन्दारकी फूलमालासे तुम्हारी पूजा करकेही शीघ्रमनोर्थ प्राप्त किया है; गुह्यक गण तथा दिव्य और मानुष सातपितरोंने तुम्हारी कृपासेही प्रधानता पायी हैं; वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, मरीचिगण, सिद्धगण, और बालखिल्य आदि सबहीने

आपको प्रणाम करके उत्तमता पाई है। ब्रह्मलोकसे आदिलेके सातो लोकोंमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसे आपसे भिन्न कहा जाय; संसारमें बलयुक्त और भी अनेक महत् पदार्थ हैं, पर उनमेंसे कोई भी आपके समान प्रभाव युक्त और दीप्तिमान नहीं हैं; सम्पूर्ण ज्योति तापमें ही निवास करती है; समस्त ज्योतिके स्वामी तुमही हो; सत्य सत्व और सम्पूर्ण सात्विक भाव तुममें ही विराजमान हैं; भगवान् विष्णु जिससे दैत्योंके अभिमानको नाश करते हैं, उस सुनाम चक्रको तुम्हारेही तेजसे विश्वकर्म्माने बनाया था; तुम्ही ग्रीष्म ऋतुमें अपनी किरणोंसे, शरीरधारी ओषधी और रसोंके तेजको खींचकर फिर वर्षा कालमें बरसा देते हो, तुम्हारी किरणही तपाती हैं, जलाती है, और वर्षा ऋतुमें मेघ बनके गरजती चमकाती तथा बरसाती हैं शीतवातसे जो मनुष्य पीड़ित हो उसकेवास्ते जैसी सुखकारी आपकी किरण होती हैं वैसी अग्नि वा कम्बल कदापि सुखकारी नहीं होती हैं; तुम्ही १३ द्वीपयुक्त पृथिवीको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते हो, तुम एकलेही तीनोंलोकका कल्याण करनेमें प्रवृत्त होते हो; यदि जगत्में तुम्हारा उदय न हो, तो यह सम्पूर्ण जगत् अन्धा हो जाय, तथा बुद्धिमान् लोगभी धर्म्म, अर्थ और काममें प्रवृत्त न हो सकें; ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तुम्हारीही कृपासे, अग्न्याधान, पशुबन्ध, इष्टिमन्त्र, यज्ञ और तपस्या आदि क्रियाओंको करते हैं; सहस्र युगका समय जो ब्रह्माका एकदिन प्रसिद्ध है, कालको जाननेवाले पण्डित लोग उसका आदि और अन्त तुमकोही मानते हैं; तुमही मनु, मनुष्य, और मन्वन्तरोंके सहित सम्पूर्ण जगत्के तथा ईश्वरके ईश्वर हो; महा प्रलयके समयमें तुम्हारे क्रोधसे निकली सम्वर्त्त नामक अग्नि इस त्रिलोकीको भस्म कर देती है; तुम्हारी किरणोंसे उत्पन्न हुआ अनेक वर्णोंसे शोभायमान् महामेघगण ऐरावत और वज्रके सहित उदित होके सम्पूर्ण जगत्को जलसे डुबा देते हैं, पुनर्वार तुमही १२ मूर्त्ति धारण करके अपनी किरणोंसे एकार्णव समुद्रको सुखा देते हो; आचार्य्य लोग तुमको इन्द्र कहके कीर्त्तन करते हैं, तुमही विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्ममन, प्रभु, और सनातन ब्रह्म निरूपित होते हो; पण्डितलोग तुमको हंस, सविता, भानु, अंशुमाली, वृषाकपि, विवस्वान्, मिहिर, पूषा, मित्र, धर्म्म, सहस्र-किरण, आदित्य, तपन, गोपति, मार्त्तण्ड, अर्क, रवि, सूर्य्य, शरराय, दिनकर, दिवाकर, सप्तसप्ति, धामकेशी, विरोचन, शीघ्र चलनेवाले, अन्धकार नाशक, हरिताश्व, कहके कीर्त्तन करते हैं; जो मनुष्य शान्तचित्त और अहङ्कार रहित होके सप्तमी वा छठको तुम्हारी पूजा करता है लक्ष्मी उसकी सेवा करती हैं; जो एकाग्र चित्तहोके तुम्हारी पूजा और बन्दना करते हैं उनको मानसिक शारीरिक तथा और और कोई बिपद नहीं सताती है; जो लोग तुम्हारे भक्त हैं, वह सब रोग और पापोंसे छुटे सुखी और अधिक कालतक जीते रहते हैं; हे अन्नके स्वामी! मैं श्रद्धापूर्व्वक सबके अतिथि सत्कार करनेकेवास्ते अन्नकी इच्छा करताहूं, तुम मुझे पूर्ण रीतिसे अन्न दो; बिजली, वज्र आदिको प्रवर्त्तन करनेवाले, अरुण, और दण्ड आदि जिन सेवक लोगोंने आपका आश्रय लिया है मैं उनको बन्दना करता हूं तथा मुक्ति और बन्धन करनेवाली, क्षुधा, तंत्री, और गौरी भूतमाताओंके शरणागत होके उनको नमस्कार करता हूं; वह हमारी रक्षा करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! युधिष्ठिरके इस प्रकारसे जगत्को पवित्र करनेवाले सूर्य्यको स्तुति करनेपर सूर्य्यदेव उनपर प्रसन्न होकर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान शरीरसे उनके समीप प्रकट हुए, और

बोले, हे मनुष्योंके स्वामी! तुम्हारे मनकी इच्छा पूरी होगी, हम १२ वर्षतक तुमको अन्न दान करेंगे, तुम हमसे तामेकी बनी हुई बटलोही ग्रहण करो। हे व्रतधारी! अन्न, फल, मूल, साग वा मांस जो कुछ इसमें बनेगा, उसे जब तक द्रौपदी इस पात्रसे परोसैंगी तबतक चावने और चूसनेके योग्य सब प्रकारके अन्न इसमें भरे रहेंगे; तुमको १४ वर्षमें राज्य प्राप्त होगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् सूर्य्यदेव ऐसे कहके उसी स्थानपर अन्तर्ध्यान होगये जो मनुष्य जिस वरकी इच्छा करके युधिष्ठिरके बनाये इस सूर्य्यके स्तोत्रका एकाग्रचित्तसे पाठ करेगा सूर्य्यदेव उसे वही वर देते हैं, चाहे कोई स्त्री वा पुरुष प्रतिदिन इसका पाठ करे वा सुने उसे यदि पुत्रकी इच्छा हो तो पुत्र, धनकी इच्छा होतो धन, विद्याकी हो तो विद्या, प्राप्त होती है, स्त्री वा पुरुष जो कोई हरदिन दोनों सन्ध्योमें इसका पाठ करे वा वह किसी विपदमें फंसा होतो उससे छुटजाता है, यदि किसी बन्धमें हो तो उससे छूट जाय, युद्धमें जयपावे, बहुत धन पावे और सब पापोंसे छुटजाता है और मरनेके पश्चात् सूर्य्यलोकमें जाता है। पहिले समयमें इस स्तोत्रको ब्रह्माने इन्द्रको इन्द्रने नारदको और नारदने धौम्यको दिया था, युधिष्ठिरने धौम्यसे इसे पाके अपने वांछित फलोंको पाया था।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मको जाननेवाले युधिष्ठिर सूर्य्यसे वर पाकर जलसे निकले और धौम्यके दोनों चरणोंकी बन्दना की, एवम् भाइयोंको गलेसे लगाया। हे महाराज! पश्चात् वह द्रौपदीके सहित रसोईघरमें जाकर उससे आदर पाके रसोई बनानेकी क्रियाको आरम्भ किया। जिस अन्नसे भोजन बनता था, वह यदि थोड़ाभी हो हो तौभी, चावने योग्य, चूसने योग्य चाटने योग्य और पीनेयोग्य सब प्रकारके भोजन अक्षय हो जाते थे। महाराज युधिष्ठिर उसी अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् भाइयोंको भोजन करातेथे फिर आप भोजन करतेथे उसके पीछे द्रौपदीके भोजन करनेके पश्चात सूर्य्यका पात्र खाली हो जाताथा फिर उसमें कुछ नहीं रहता था, सूर्य्यके समान तेजवान् महाराज सूर्य्यसे ऐसा वांछित वर पाके ब्राह्मणोंकी इच्छाके अनुसार अन्नदान करने लगे। इसके पश्चात् वह लोग धौम्यसे स्वस्तिवाचन कराके ब्राह्मणोंके सहित काम्यक बनको चले गये।

इति तीसरा अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवोंके बनको जानेपर सुखसे बैठे हुए अम्बिकानन्दन, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रने व्याकुल चित्त होकर,महा बुद्धिमान् धर्म्मात्मा विदुरसे कहा,हे विदुर! तुम शुक्रके समान शुद्ध बुद्धिवाले हो; धर्म्मके अति सूक्ष्म तात्पर्य्यके जाननेवाले हो; कुरुकुलमें किसीके साथ तुम्हारी शत्रुता नहीं है, अतएव इस समय वही सम्मति हमें दो, जिससे कौरवोंका और हमारा कल्याण हो। इस समय कौरवोंकी जैसी दशा है उसके अनुसार शीघ्रताके साथ हमें क्या करना चाहिये; पाण्डवोंके बनको जानेके कारणसे घबड़ाये हुए नगरनिवासी हमलोगोंपर कैसी भक्ति रखते हैं? पाण्डवलोग हमको किस रीतिसे जड़सहित नहीं उखाड़ सकेंगे? तुम इसका कोई अच्छा उपाय बतलाओ, क्योंकि कोई अच्छा कर्म्म ऐसा नहीं है जिसे तुम न जानते हो! विदुर बोले, हे महाराज! मनुष्यके अर्थ काम और मोक्ष यह त्रिवर्ग धर्म्मसे होते हैं, पण्डित लोग राज्यकोभी धर्म्मसे ही करते हैं, इस लिये आप धर्म्मके अनुगामी होके अपनी शक्तिके अनुसार अपनेपुत्र और पाण्डुके पुत्रोंका पालन कीजिये। हे कुरुनन्दन! आपके पुत्र दुर्य्योधन और शकुनि

आदि पापी जनोंने सत्यवक्ता युधिष्ठिरको सभामें बुलाकर जुएमें हराया है, इसीसे बहुलोग धर्म्मसे रहित हो गये हैं। आपके पाप दूर करनेके वास्ते केवल यही उपाय दीख पड़ता है, इसके करनेसे आपके पुत्र निष्पाप होके जगत्में अच्छीतरहसे प्रतिष्ठा पा सकेंगे, आपने जो पाण्डवोंको पहिले राज्य दिया था, फिर उन्हें वही मिल जाय, तो आपके धर्म्मकी रक्षा हो; क्योंकि अपने धनसे सन्तुष्ट रहना और पराये धनमें इच्छा न करना राजा लोगोंकेवास्ते परम धर्म्म लिखा है; आप पाण्डवोंके राज्यको उन्हें दे दीजिये जिससे आपका अयश और आपसकी फूट दूर होजायगी तथा धर्म्मभी दृढ़ रहेगा, इस समय जिसमें पाण्डवोंको सन्तोष हो और शकुनिका अपमान हो ऐसाही काम आपको सब कामोंसे मुख्य समझके करना होगा, कारण यह है कि ऐसा करनेसे आपके पुत्रोंका नाश होनेसे बचा हुआ सौभाग्य उदय होगा, इसलिये शीघ्रतासे इस कार्य्यको कीजिये; यदि मेरे बताये कर्म्मको आप न करेंगे तो अवश्यही कुरुकुलका नाश होगा, क्योंकि भीमसेन वा अर्ज्जुन यदि क्रुद्ध होंगे तो शत्रुकुलको शेष न छोड़ेंगे, हे राजन्! जिनके अस्त्रविद्यामें निपुण योद्धा अर्ज्जुन बायें और दहिने दोनो हाथोंसे एकसे बाण चलानेमें समर्थ, जिनको धनुष संसारका सार गाण्डीव, तथा जिनके योद्धा महाभुज भीम, उनको तीनोंलोकमें क्या कोई कार्य्य असाध्य है? महाराज! मैंने पहिलेही आपके पुत्र होनेके समय कुलके कल्याणकेवास्ते इस पुत्रके त्याग देनेको कहा था, तब आपने इस हितकारी कार्य्यको न किया, इस समय भी आपकी हित कामनासे पाण्डवोंके पाने योग्य राज्यको उनको देदेनेकेवास्ते कहता हूं, यदि इसे आप न करेंगे तो पीछे आपको दुःख भोगना होगा। यदि आपका पुत्र पाण्डवोंके सङ्ग मिलकर और प्रेमयुक्त होकर राज्य करनेमें सम्मत हो तो आपको प्रसन्नहोनेके वास्ते दुःखपानेकी कोई सम्भावना नहीं है, नहीं तो आप भविष्यत् सुखके वास्ते कुलके अहितकारी अपने पुत्र दुर्य्योधनको कैद करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको राज्यका अधिकार दीजिये। अजातशत्रु युधिष्ठिर राग द्वेषको छोड़कर यदि राज्य करने लगेंगे तो सम्पूर्ण राजालोग तत्क्षणही वनियोंके समान हमलोगोंकी सेवा करने लगेंगे। हे राजन्! दुर्य्योधन, कर्ण और शकुनि प्रसन्नतासे पाण्डवोंकी सेवामें नियुक्त हों, दुःशासन सभाके बीचमें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा मांगे, आप युधिष्ठिरका आदरके सहित राज्याभिषेक करें। महाराज! आपने जो मुझसे पूछाथा उसमें इसके सिवाय और क्या कहूं, मैंने जो कहा उसको करने होसे आप कृतकार्य्य होंगे।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर! तुमने पाण्डवोंके और हमारे लिये उनके हितकारी और शुभकारी सम्पूर्ण वाक्य कहे, वह मेरे मनमें नहीं समाये; तुमने इस समय किस कारणसे ऐसा निश्चय किया? तुमने जो पाण्डवोंके कल्याणके निमित्त ऐसे वचन कहे उससे जान पड़ता है, कि तुम हमारे हितकारी नहीं हो। मैं उनके वास्ते पुत्रको कैसे त्याग करूंगा? पाण्डव हमारे ही पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं, पर दुर्य्योधन मेरी कायासे उत्पन्न हुआ है, बस वह मेरा शरीर है; ऐसे स्थल पर पाण्डुपुत्र और मेरे पुत्र दोनोंको एकसा समझ कर क्या कोई कह सक्ता है, कि दूसरेके वास्ते अपने शरीरको त्याग कर दो? हे विदुर! मैं तुम्हारा बड़ा मान्य करता हूं, पर तुम मुझसे सबही कठोर वचन कहते हो, इसलिये जैसे खोटी स्त्री अनेक प्यारे वचनोंसे समझाई जाने परभी पतिको त्याग करती है, ऐसेही तुम मुझे परित्याग

करो, अथवा यहीं रहो, या जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां जाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज! राजा धृतराष्ट्र ऐसा कहके हठात् रणवासमें उठके चले गये, पश्चात् विदुरभी यह कहके कि इनका कुल अब नहीं बचेगा, जिस स्थानमें पाण्डव थे, वहींको चले गये।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुरुकुल सिंह पाण्डवलोग अपने सेवकोंके समेत वनवासकी इच्छा करके गङ्गा तीरसे कुरुक्षेत्रको चले, सरस्वती दृषद्वती और यमुनाके तट पर एक वनसे दूसरे वनको ऐसे बराबर पश्चिम दिशाको चले, अनन्तर सरस्वतीके तट पर मारवाड़ जांगल देशकी समभूमिमें मुनिप्रिय काम्यक नाम वनको देखा। हे राजन्! जिधर तिधर, अनेक मृग और पक्षियोंसे सेवित काम्यक वनमें मुनियोंसे सत्कृत और शान्त होकर ठहरे सदा पाण्डवोंके दर्शनाभिलाषी विदुर रथपर आरुढ़ होकर एकलेही ऋद्धिभरे काम्यक बनमें आये। तब विदुरने शीघ्रगामी अश्वयुक्त रथके द्वारा काम्यक वनमें जाकर देखा, कि महात्मा धर्मराज एकान्तमें द्रौपदी, ब्राह्मण और भाइयोंके समेत बैठे हैं, उस समय विदुरको दूरसे आते देखकर सत्यसन्ध राजा युधिष्ठिरने अपने भाई भीमसेनसे कहा, कि नजाने यह विदुर हमसे क्या कहनेको आते हैं, क्या यह शकुनीके वचनसे हमें जुएके निमित्त बुलानेको आते हैं? क्या अब दुरात्मा शकुनी जुएमें हमारे शस्त्रोंको जीतेगा? हे भीमसेन! यदि वे हमको बुलावेंगे, तो हम निवृत्त होनेमें असमर्थ होंगे और जब गाण्डीवको हम जुएमें हार जायंगे, तो फिर हमें राज्य कैसे मिलेगा? श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज! तब सब पाण्डवोंने खड़े होकर विदुरको सत्कार पूर्व्वक लिया। अजमीढ़-वंशोद्भव विदुरने भी आदर पाके पाण्डवोंको यथोचित आशीर्व्वाद दिया, जब विदुर स्वस्थ हुए तो नरसिंह पाण्डवोंने उनके आनेका कारण पूछा, विदुरने विस्तार पूर्व्वक सब समाचार जैसे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने इनके सङ्ग कह दिया था, सुनाया।

विदुर बोले, हे अजातशत्रो! हितोपदेश द्वारा रक्षा करनेवाले मुझसे पूजा और प्रीति कर समता प्राप्त करके धृतराष्ट्रने यों पूछा, कि पाण्डवोंके इस प्रकारसे जाने पर उनको और हमको जो पथ्य हो सो तुम कहो, मैंनेभी कौरव और धृतराष्ट्रको जो उचित और करने योग्य था सो कहा, परन्तु उनको यह मेरा कहना प्रीतिकारक न हुआ और मैंने और उत्तम न समझा, हे पाण्डवो! जो परम कल्याणकी बात थी, सो मैंने उनसे कही परन्तु अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्रने उसे न सुना, जैसे रोगीको पथ्य अच्छा नहीं लगता है, वैसेही उन्हें मेरा कहना अच्छा न लगा, हे अजातशत्रो! जैसे वेदविद्के घरमें दुष्टा स्त्री कल्याणको नहीं प्राप्त करने देती, तैसेही धृतराष्ट्रभी कल्याणको प्राप्त नहीं होंगे, जैसे अल्पवयस्का स्त्रीको साठवर्षका पति सुखदायक नहीं होता, तैसेही इनको बुद्धिभी लाभदायक नहीं है, जैसे कमलसे पत्तेमें रखाहुआ पानी नहीं ठहरता तैसेही धृतराष्ट्रके मनमें पथ्यबातभी नहीं ठहरती। हे राजन्! इससे निश्चय हुआ है, कि कुरुवंशका नाश निश्चयही होनेवाला है। धृतराष्ट्र परम कल्याणको प्राप्त नहीं होंगे, हे भारत! तब धृतराष्ट्रने मुझसे क्रोध करके कहा, कि जहां तुम्हारी इच्छा हो, तुम वहां चले जाओ; मैं अबसे नगर और पृथिवीको पालनामें तुम्हारी सहा-यता नहीं चाहता हूं, हे नरेन्द्र! इस प्रकार धृतराष्ट्रसे त्यक्त होकर तुम्हें सिखानेको आया हूं; सो मैंने जो कुछ सभामें कहा था और जो पुन: कहता हूं, सो धारण करो। जो वैरियोंसे

कठिन क्लेश पाके क्षमा करता हुआ समयको बिताता है, वह जैसे थोड़ी अग्नि बढ़कर सबको जलाती है, तैसेही शत्रुओंको जलाकर एकला सब पृथिवीका भोग करता है, हे राजन्! जिसने अपना धन सहायोंमें बांटा है, उसके दुःखके वही सहायही भागी होते हैं, यही उपाय सहाय मिलनेका है, और सहाय मिना पृथिवी मिलनेका कारण है, हे पाण्डव! सहायोंसे मिथ्या वचन न कहने चाहिये; जो आप खाय, सो उन्हेंभी सङ्गही खिलाना उचित है, उनके आगे अपनेको बड़ा न समझे; ऐसे राजा वर्द्धित होते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कि आप जो कहते हैं, सो मैं परमबुद्धि धारण कर स्वस्थ होकर सब ऐसेही करूंगा, औरभी देश और कालके अनुसार मुझे करने योग्य जो हो सो कहिये मैं सबही करूंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! जब विदुर पाण्डवोंके आश्रमको चले गये, तब महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्रको महा चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि विदुरको सन्धि विग्रहादि विद्या पाण्डवोंकी वृद्धिकारिणी होगी, यह विचारकर सभाके द्वारपर आये और विदुरको स्मरण करके राजोंके सामने चेतन शून्य होकर पृथिवीमें गिरपड़े, पुनः संज्ञा प्राप्तकर और पृथिवीसे उठकर समीप खड़े सञ्जयसे राजाने ऐसा कहा, मेरा भाई और मित्र साक्षात मानों धर्म्मही था; उसी स्मरण करनेसे मेरा हृदय फटा जाता है, तुम मेरे उस धर्म्मज्ञ भाईको शीघ्र ले आओ। ऐसा कहते हुए राजा रोने लगे; पश्चात्तापसे जलते हुए, मोहसे विदुरको स्मरण करते हुए और भाईको प्रीतिसे दुःखी होकर राजाने सञ्जयसे पुनः यह वाक्य कहा, हे सञ्जय! तुम शीघ्र जाकर जानो, कि मेरा भाई विदुर जीता है, वा नहीं, मुझ पापीने उसे क्रोधसे त्याग कर दिया, उस पण्डित, अपार बुद्धिमान् मेरे भाईने कभी मेरा किञ्चित भी हेययुक्त काम नहीं किया, किन्तु वह परम बुद्धिमान् मुझसे परम प्रिय कार्य्यको प्राप्त हुआ है। हे प्राज्ञ! उसे तुम ले आवो, नहीं तो मैं अपने प्राण को त्याग दूंगा। महाराजके ऐसे वचन सुनके प्रमाणकर (बहुतअच्छा) ऐसा कह कर सञ्जय काम्यक-वनको चले, सञ्जय शीघ्रही काम्यक वनमें जाकर जहां पाण्डव थे वहां पहुंचे और हरिणचर्म्म धारणकिये विदुर और शस्त्रोंको धारण किये तथा ब्राह्मणोंके सहित बैठे भाइयोंसे रक्षित, देवतोंसे परिवृत इन्द्रके समान महाराज युधिष्ठिरको देखा। सञ्जयने युधिष्ठिरको देखकर पूजा की और भीम, अर्ज्जुन, नकुल तथा सहदेवने यथायोग्य उनका आदर किया, जब वे सुखसे बैठे, तो अपने आनेका कारण कह कर विदुरसे ऐसा कहने लगे।

सञ्जय बोले, हे क्षत्तः! अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र तुम्हारा स्मरण करते हैं, सो तुम शीघ्र चलकर उन्हें देखो और जिलाओ। हे नरश्रेष्ठ! तुम कुरुनन्दन पाण्डवोंकी सम्मति और राजोंमें सिंह धृतराष्ट्रकी आज्ञासे चलो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि सञ्जयके ऐसे वचन सुनकर बुद्धिमान् स्वजनके प्यारे विदुर युधिष्ठिरकी सम्मतिसे पुनः हस्तिनापुरको चले आये, उनको देखकर अम्बिकापुत्र तेजस्वी धृतराष्ट्र ऐसा कहने लगे, हे पापरहित! हे धर्म्मज्ञ! तुम प्रारब्ध होसे आये हो, प्रारब्धहीसे तुम मुझे स्मरण करते हो, हे नरर्षभ! आज कल मुझे तुम्हारे दुःखसे जब निद्रा होती है, तो अपने शरीरको लक्ष्मीहीन देखता हूं, राजा धृतराष्ट्र विदुरको गोदमें बिठलाकर और माथा सूंघकर कहने लगे, कि हे अपाप! मैंने जो तुम्हें कहा, सो क्षमा करो।

विदुर बोले, कि हे महाराज! आप हमारे बड़े हैं, मैंने सब क्षमाही किया है, आपके दर्शनका अभिलाषी होकर मैं प्राप्त हुआ हूं। हे नरसिंह! धर्मज्ञ लोग दीनोंके पक्षपाती होते ही हैं, मुझे जैसे पाण्डुके पुत्र हैं, तैसेही आपके पुत्रभी हैं, परन्तु वे दीन हैं, यह विचार कर उनपर मैं कृपा करता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे महातेजस्वी दोनों भाई परस्पर वार्त्तालाप करके विदुर और धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए।

६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब दुर्मति धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्य्योधनने सुना, कि विदुर पुनः आये और राजाने उन्हें शान्त किया है, तो महादुःखसे जलने लगा। तब शकुनी कर्ण और दुःशासनको बुलाकर अबुद्धिरूपी अन्धकारमें प्रवेश करके ऐसे कहने लगा, महा बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रका मन्त्री पाण्डवोंका मित्र उनका हिताभिलाषी विदुर लौट आया। जबतक पाण्डवोंके लौटानेकेलिये विदुर इन राजाकी बुद्धिको न फेरे तब तक मेरे हितकेलिये कुछ मन्त्रणा करनी चाहिये, यदि मैं किसी प्रकारसे पाण्डवोंको यहां आया हुआ देखूंगा, तो बिना प्रतिबन्धकेभी निराहार होकर सूख जाऊंगा, विष खाकर, शस्त्रसे, अथवा अग्निमें प्रवेश करके मरजाऊंगा, परन्तु ऋद्धियुक्त पाण्डवोंको नहीं देख सकूंगा।

शकुनी बोले, कि हे प्रजानाथ! हे महाराज! आप क्यों मूर्खोंके समान बुद्धिमें पड़े हैं? पाण्डवलोग प्रण करके गये हैं, वे ऐसा नहीं करेंगे। हे भरतकुल सिंह! हे प्यारे दुर्य्योधन! वे लोग सत्यवाक्यमें स्थित हैं; तुम्हारे पिताके वचनको कदापि ग्रहण करके पुनः नगरमें आही जांयगे, तो हम सब प्रतिज्ञा करके कार्य्य व्यवहारका निश्चय करलेंगे और हम सब राजाके कार्य्योंमें मध्यस्थ रहते हैं; सावधान होकर पाण्डवोंके छिद्र (दोष) देखते रहेंगे।

दुःशासन बोले, हे मामा! हे महाप्राज्ञ! जो तुमने कहा सो सब ठीक है; तुम्हारे कहनेमें सदा मेरी बुद्धि प्रसन्न होती है।

कर्ण बोले, कि हे दुर्य्योधन! हम सब यथायोग्य तुम्हारे हितको देखते रहते हैं; हे राजन् हम सबका एक मत है; वे वीर पाण्डव लोग बिना समय बिताये नहीं आवेंगे और यदि लोभसे आही जायं, तो पुनः जुएमें जीत लो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब कर्णने राजा दुर्य्योधनसे ऐसा कहा, तो वह अति प्रसन्न हुए और मुंह फेर लिया। कर्ण यह देख कर शुभनेत्र फैलाकर शरीरको उद्यत करके क्रोधमें भरके दुःशासन, शकुनी और राजासे ऐसा बोले, हे राजालोगो! मेरा जो मत है, सो सुनो; हम सब राजाके दास हैं; हाथके समान इनका प्रिय कार्य्य करेंगे, हम सब आलस्यरहित होकर केवल राजाके प्रियके हित बैठेही नहीं रहेंगे, अर्थात् कार्य्यभी करेंगे, इसलिये हम सब सन्नद्ध होकर रथोंमें बैठकर शस्त्रोंको धारण करके सेना लेकर वनवासी पाण्डवोंके मारनेको चलें, सब जब शान्त होकर अविदित जीतको प्राप्त होंगे अर्थात् मरजायंगे, तो धृतराष्ट्र पुत्र और हम सबभी विवादरहित हो जायंगे; जब तक पाण्डव दुःखी हैं, जबतक शोकमें भरे हैं, जबतक मित्रोंसे हीन हैं, मेरे सिद्धान्तमें तबही तक वह जीतने योग्य हैं। सूतपुत्रके यह वचन सुनकर उन सबोंनेही प्रशंसा करी और बहुत अच्छा कहने लगे। निश्चय करके सब इकट्ठे होकर अपने अपने रथोंपर चढ़कर पाण्डवोंको मारनेको चले, उन सबोंको चलते हुए जानके, ज्ञाननेत्रसे देखकर भगवान् शुद्धात्मा कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि आये, लोकपूजित भगवान व्यासमुनि

उनको जानेसे निषेध करके शीघ्र धृतराष्ट्रके पास जाकर ऐसा बोले।

७ अध्याय समाप्त।

श्रीव्यासजी बोले, कि हे महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र! सब कौरवोंका हित वचन जो हम तुमसे कहते हैं; सो सुनो। हे महाबाहो! दुर्य्योधनादिके छलसे हारकर पाण्डवोंका वनको जाना हमारा प्रियकाम नहीं हुआ। हे भारत! यह लोग तेरहवर्ष पूरे होनेपर अपने क्लेशोंको स्मरण कर क्रोधित होके कुरुकुलमें विष बरसावेंगे, सो यह पापात्मा भेद-बुद्धि तुम्हारा पुत्र सदा क्रोधी दुर्योधन राज्यके निमित्त पाण्डवोंसे द्वेष करता है; इस मूर्खबुद्धिको निवारण करना ही अच्छा है, यह शान्त हो; अन्यथा वनवासी पाण्डवोंको मारनेकी इच्छासे अपने प्राण खोदेगा। जैसे महाबुद्धिमान् विदुर, भीष्म, हम, द्रोणाचार्य्य और कृपाचार्य्य हैं, तैसेही आपभी साधु हैं; हे महाप्राज्ञ! अपने पुरुषोंसे लड़ना उत्तम नहीं बरन अधर्म्मको बढ़ानेवाला और यशनाशक है, अतएव आप उसे मत कीजिये; हे भारत! दुर्य्योधनकी जैसी समीक्षा (विचार पूर्व्वका भेदबुद्धि) है, हे राजन्! उसीसे महा विग्रह हो जायगी। हे राजन्! अथवा यह तेरापुत्र सहायहीन एकला वनको चला जाकर पाण्डवोंके सङ्ग रहै; तब तेरे पुत्रको पाण्डवोंके संग रहनेसे प्रेम उत्पन्न हो तो हे नरनाथ! तुम कृतकृत्य हो जावोगे, परन्तु यह भी दुर्लभ है, क्योंकि हे महाराज! यह सुना है, कि उत्पन्न होनेमें जिसका जो स्वभाव होता है, सो मरनेसे भी नहीं छूटता है; यह तो कहिये कि भीष्म, द्रोण, विदुर और आप इस कार्य्यमें क्या कर्त्तव्य मानते हैं? क्योंकि पहिलेही तुम्हें यह कर्त्तव्य था। बिना कर्तव्यके विचारे अर्थनाश होता है।

८ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे भगवन्! हे मुने! यह जुआ मुझेभी प्रिय नहीं था; पर जान पड़ता है कि प्रारब्धके वशमें होकर मैंने यह काम किया। न भीष्म, न द्रोण, न विदुर और न यह गान्धारीको जुआ अच्छा लगा, परन्तु भूलसे हो गया। हे भगवन्! हे प्रियव्रत! मैं दुर्य्योधनको मूर्ख जानकरभी पुत्र स्नेहसे छोड़ नहीं सकता हूं।

व्यास बोले, कि हे विचित्रवीर्य्यके पुत्र नरनाथ! आपने सत्य कहा, पुत्रसे अधिक प्रिय और कोईभी नहीं है, इन्द्रको भी जब सुरभीने अश्रुपातसे बोधित किया था, तो यही मानाथा कि अन्य वस्तुओंके बढ़ने परभी पुत्रके समान कोई वस्तु नहीं है। हे प्रजापते! यहां हम इन्द्र और सुरभीका संवादरूप बहुत उत्तम इतिहास कहते हैं। हे राजन्! एक समय गायोंकी माता सुरभी रोती हुई स्वर्गमें गई तब इन्द्रने उसके ऊपर कृपा करी।

इन्द्र बोले, कि हे शुभे! तुम क्यों रोती हो कहो देवता मनुष्य और नागोंमें कुशल तो है, क्योंकि तुम्हारा रोना कम नहीं है।

सुरभी बोली, हे इन्द्र! हे सुराधिप! तुम्हारी कोई घात नहीं दीखती है, मैं अपने पुत्रको देखकर सोचती हूं, इसी लिये रोती हूं। देखो यह मेरा पुत्र दुर्व्वल होने परभी भार खींचता है, तौभी यह इसे कोड़ेसे मारते हैं; हलमें जोतकर पीड़ा देते हैं; हे सुराधिप उत्कण्ठा सहित बैठे हुए, पिटते हुए देखकर मुझे दया होती है, और मेरा मन दुःखी होता है। उनमें जो बलवान् है, सो भारी धुरमें जुड़ा है, दूसरा जो दुर्व्वल और मांस रहित है, हे वासव! सो कठिनतासे भारको खैंचता है मैं इसीका शोच करती हूं। हे इन्द्र! देखो कोड़ेसे पिटनेपरभी और भारसे बार बार दुःखित होनेपरभी उसभारको नहीं खैंच सकता है, मैं उनहोके दुःखसे पीड़ित होकर अत्यन्त पीड़ित

हूं, और मेरे नेत्रोंसे आंसू करुणा सहित बहते हैं।

इन्द्र बोले, कि हे सुशोभने! तुम्हारे सहस्रों पुत्र पीड़ित हो रहे हैं, परन्तु तुम एकहीको पीड़ित देखकर क्यों रोती हो।

सुरभी बोली.कि हे शक्र! यद्यपि मुझे सहस्र पुत्र समानही हैं, तथापि दीन पुत्रपर अधिक दया है।

व्यास बोले, कि हे कौरव्य! सुरभीका यह वचन सुनकर इन्द्र अत्यन्त विस्मित हुए; हे राजन्! उन्होंने जाना कि पुत्र शरीरसेभी अधिक प्यारा होता है, उसी समय वहां पृथिवी पर बहुतही जलवर्षा और भगवान इन्द्रने बैल जोतनेवालोंको विघ्न कर दिया। सो जैसे सुरभीने कहा था, तैसेही तुम्हारे पुत्रभी इकट्ठे होगए हैं। हे राजन्! हीन पुत्रपरभी अधिक कृपा होतीहो है। हे पुत्र! जैसा पाण्डु मेरा पुत्र था, तैसेही तुमभी हो और वैसेही महाबुद्धिमान विदुरभी हैं, इसीलिये मैं यह सब कहने आयाहूं, यह बात है, कि तुम्हारे एक सौ एक पुत्र हैं, और पाण्डुके पांचही दीखते हैं, वेभी हीन और दुःखित हैं, यह लोग कैसे जीयेंगे कैसे बढ़ेंगे अतएव पाण्डवोंपर मेरा चित्त दुःखी होता है। हे राजन्! यदि तुम कौरवोंको जिलाना चाहते हो, तो अपने पुत्र दुर्य्योधनको शान्त करो।

९ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे महाप्राज्ञ मुने! जो आपने कहा सो सत्य है, आप हमारे पिता हैं, इस बातको हम और यह सब राजालोग जानते हैं। हे मुने! आप जिस प्रकारसे कुरुकुलका उदय चाहते हैं, वैसेही मुझसे भीष्म विदुर और द्रोणनेभी कहा था, यदि आप मुझे कृपापात्र समझते हैं, और कुरुकुलपर आपकी दया है, तो मेरे दुरात्मा दुर्य्योधन पुत्रको उपदेश कीजिये।

व्यास बोले, हे राजन्! यह देखो पांचो-भाई पाण्डवोंको उपदेश किये भगवान् मैत्रेय ऋषि हमें देखनेको यहीं चले आते हैं। हे राजन् ये महाऋषि न्यायानुसार इस कुलमें शान्तिके अर्थ तुम्हारे पुत्र दुर्य्योधनको उपदेश करेंगे, हे कौरव्य! यह मुनि जो कहैं, सो शङ्कारहित होकर करने योग्य है, इनका कहा कार्य्य न करनेसे यह क्रोधयुक्त होकर तुम्हारे पुत्र को शाप देंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि व्यास ऐसा कहकर चले गए और मैत्रेयमुनि आये; पुत्रोंके समेत राजा धृतराष्ट्रने उनके लिये अर्घादि क्रिया करी। मुनियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय जब शान्त भये,तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र विनय पूर्व्वक ऐसा बोले से भगवन्! कहिये आप कुरुजांगल देशमें सुखसे तो आये, कहिये वीर पांचोभाई पाण्डव कुशलसे तो हैं, वे भरतकुलसिंह शान्ति करना चाहते हैं,या नहीं, कहिये कुरुवंशमें भाईचारा तो न टूटेगा?

मैत्रेय बोले, मैं तीर्थयात्रासे घूमता हुआ कुरुजांगलदेशको प्राप्त हुआ हूं। हे प्रभो! काम्यक वनमें प्रारब्धसे धर्म्मराजको देखा उन महात्माको जटा और मृग चर्म्मधारी बनवासी देखनेके निमित्त अनेक मुनियोंके समूह आये हैं। हे महाराज! वहां आपके पुत्रोंका जुआ-रूपी अन्याय और भूल सुनो, सो अब महाभय उपस्थित है। हे प्रभो! आपसे सदासे बहुतही प्रीति और स्नेह है, अतएव मैं कौरवोंके कल्याणार्थ आपके पास आया हूं। हे राजन्! आप और भीष्मके जीते यह उचित नहीं था कि आपके पुत्र परस्पर विरोध करें। हे राजन्! अभीतो तुम आपही युद्ध और अशुभके निवारण करनेको पशुकी रस्सीके समान उपस्थित हो। आप इस उठे घोर अन्यायको क्यों देखते हैं, अर्थात् क्यों नहीं शान्त करते? हे कुरुनन्दन! तुमने सभाके मध्यमें जो चोरके ऐसा काम किया,

उससे तुम मुनियोंके सङ्गमें बैठकर शोभा नहीं पाते हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब भगवान् मैत्रेय ऋषिराज दुर्य्योधनकी ओर मुख करके मीठी-वाणीसे बोले ।

मैत्रेय बोले, हे दुर्य्योधन ! हे महाबाहो ! हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे महाभाग ! हम जो तुम्हारे हितके बचन कहते हैं, सो सुनो, हे राजन् ! नरसिंह पाण्डवोंसे द्वेष मत करो अपना, पाण्डव, कौरव और सब लोकका प्रियकाम करो, वे सब पुरुषोंमें सिंह शूर तेजस्वी महायुद्धकारी दशसहस्र रथियोंके बलवाले और वज्रके समान दृढ़ शरीरवाले हैं ; वे सब सत्य-व्रतधारी सब वीर्य्याभिमानी हिड़म्ब बक आदि राक्षसोंमें मुख्य, कामरूपी देवशत्रु राक्षसोंके मारनेवाले हैं, अभीमार्गमें जाते हुए रात्रिकी पर्व्वतके समान अचल भयानक शरीरवाला किर्म्मीर उन महात्माओंके मार्गको रोक कर खड़ा था, तब युद्धप्रिय बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमने अपने बलसे उसे पशुके समान जैसे सिंहछोटे हरिणको मारता है, मारडाला ; हे राजन् ! देखो दिग्विजयमें भीमसेनने दश सहस्र गजके समान बलवाले महापराक्रमी जरासन्धको कैसे मारडाला था, श्रीकृष्ण उनके सम्बन्धी हैं ; धृष्ट-द्युम्नादि द्रुपदपुत्र उनके साले हैं, जरा और मृत्युयुक्त पुरुष उनसे कौन युद्धमें लड़ सकता है, हे भरतर्षभ ! उन पाण्डवोंके सङ्ग तुम्हारी सन्धिही होनी उचित है, हे राजन् ! हमारी बात मानो ; क्रोधके वशमें मत हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे राजन् ! इस प्रकार कहते हुए भगवान् मैत्रेय के सामने हाथोकी सूंड़के समान अपनी जंघापर दुर्य्योधनने अपना हाथ मारा और हंसकर चरणसे पृथिवीको खोदने लगा, दुर्बुद्धि दुर्य्योधन कुछ न बोला, सिर नीचाकरके बैठ रहा । जब भगवान् मैत्रेयने देखा, कि यह दुर्य्योधन हमारे बचनकी सुश्रुषा नहीं करता और पृथीवीको खोदता है, हे राजन् ! तब मैत्रेय मुनिको क्रोध आया । मुनियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय क्रोधके वशमें होकर और ब्रह्मासे प्रेरित होकर दुर्य्योधनको शाप देनेका विचार करने लगे । तब क्रोधसे लालनेत्र करके उन्होंने जलस्पर्श किया और दुष्टोंके अगुआ धृतराष्ट्रके पुत्रको मैत्रेयने शाप दिया ; जिस लिये तैंने मेरा अनादर करके मेरा बचन न माना, अतएव उस अभिमानका फल शीघ्रही प्राप्तकर । तेरे किये द्रोहसे महा-युद्ध उपस्थित होगा ; उसमें बलवान् भीम गदासे तेरी जंघाको तोड़ेगा । ऐसा सुनकर धृतराष्ट्र मुनिको यह कहते हुए कि यह बात ऐसे न हो, प्रसन्न करने लगे । मैत्रेय बोले, हे राजन् ! यह तेरा पुत्र यदि शमको प्राप्त होगा, तो हे तात ! मेरा शाप न होगा, नहीं तो अवश्यही होगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब दुर्य्योधनके पिता राजा धृतराष्ट्र भीमके बलको लक्ष्य करते हुए मैत्रेयसे कहने लगे, कि भीमने किर्म्मीरको कैसे मारा, सो कहिये ।

मैत्रेय बोले, अब हम तुमसे कुछ न बोलेंगे, क्योंकि तुम्हारे पुत्रको श्रद्धा नहीं है, मेरे जाने-पर यह विदुर तुमसे सब कहेंगे । ऐसा कह कर मैत्रेय मुनि जहांसे आये थे वहींको चले गये । किर्म्मीर-वध न सुननेको इच्छासे दुर्य्योधनभो बाहर चला गया ।

१० अध्याय समाप्त ।

आरण्य पर्व्व सम्पूर्ण हुआ

अथ किर्म्मीर वधपर्व्व ।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर ! हम किर्म्मीरका मारा जाना सुननेकी इच्छा रखते हैं ; तुम कहो, कि उस राक्षस और भीमसेनका सामना कैसे हुआ ?

विदुर बोले, कि मनुष्योंमें अधिक कर्म्म करनेवाले भीमका यह कर्म्म जो मैंने पहले सुना, है, सो सुनो। हे राजेन्द्र! पाण्डव लोग यहांसे जुएमें हारकर जो चले, तो तीन दिनरातमें काम्यक नामक वनमें पहुंचे। हे नरनाथ! जब रात्रिका आधा भाग बीत गया और मनुष्यभक्षी राक्षसोंके विचरनेका समय हुआ, तब उस वनको मनुष्यभक्षो राक्षसोंके भयसे तपस्वो गोपाल और् वनमें रहनेवालोंने दूरहीसे त्याग दिया था। हे राजन्! हे भारत! पाण्डवोंने उस वनमें प्रवेश किया, तो उनके मार्गका अवरोध करके प्रज्वलित नेत्र अति भयानक उक्त राक्षस मिला। वह अपने हाथोंको बिस्तारित करके और मुखको भयानक बनाकर जिस मार्गसे पाण्डव आते थे उसे रोककर खड़ा होगया, आठदांतोंको प्रत्यक्ष करके, लाल प्रकाशमान ऊंचे केशयुक्त सूर्य्यकिरण विजलो और बक-पंतियुक्त मेघके समान, भयानक राक्षसी मायाको विस्तार करता हुआ, महाशब्दकरता हुआ, गरजते हुए मेघके समान राक्षस आके खड़ा होगया। उसके शब्दसे डर कर और स्थलचर पक्षी सब ओरसे बोलना बन्द करके एकत्र बैठ गये। उस समय उसके नादसे वनमें मृग, गैंड़ा, भैंसा, रीछ्क इधर उधर भागने लगे। ऐसा भान होने लगा मानो वनही चलता है, वनकी लता उसकी जंघा की हवासे घायल होकर मानों भयपूर्व्वक तामेके रङ्गवाले पल्लवरूपी हाथोंसे दूरके वृक्षको भी आलिङ्गन करने लगी। उस समयमें बड़ा कठिन वायु बहने लगा; धूलसे पूरित होनेके कारण आकाश ताराहोन भान होने लगा, जैसे पांच इन्द्रियोंके अर्थोंका अतुल शोक रिपु होता है, तैसेही पांच पाण्डवोंका अज्ञात शत्रु राक्षस मार्गमें आया। काले हरिणके चर्म्म ओढ़े पाण्डवोंको दूरसे देखकर मैनाक पर्व्वतके समान मार्गका अवरोध करके खड़ा हो गया, उनको देखकर कमलनयनी द्रौपदी डरी। उसने ऐसा भयानक रूप पहले कभी नहीं देखा था; अपनी आंखको बन्दकर लिया। दुःशासनके हाथसे खींचे हुए बिखरेकेशवाली द्रौपदी पांच पर्व्वतोंके बीचवाली नदीके समान व्याकुल हो गयी। मूर्च्छित होती द्रौपदीको पांचों पाण्डवोंने ऐसे संभाल लिया, जैसे विषयोंमें लीन पांच इन्द्री रतिको ग्रहण करती हैं। अनन्तर पाण्डवोंके आगेही उस राक्षसी घोर मायाको बीर्य्यवान् धौम्यने राक्षसोंके नाश करनेवाले विविध मन्त्रोंका भलीभांति प्रयोग करके नाशकर दिया। वह महाबल माया नष्ट होतेही क्रोधसे नेत्र खोलकर इच्छासे मूर्त्ति धरनेवाला क्रूर कालके समान दीखने लगा। तब महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने उससे कहा तुम कौन और किसका पुत्र है, कह हम तुम्हारा क्या काम करें? तब धर्म्मराज युधिष्ठिरसे उस राक्षसने यह कहा, मैं बकका भाई हूं किर्म्मीर नामसे प्रसिद्ध हूं, इस शून्य काम्यक वनमें सुखसे रहता हूं, मैं सदाही मनुष्योंको युद्धमें जीतकर खाता हूं। तुमलोग कौन हो, मेरा भोजनरूप होकर मेरे घरमें आये हो; अब मैं तुम सबको युद्धमें जीतकर खाजाऊंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! युधिष्ठिरने उस दुरात्माका यह वचन सुनकर अपना नाम और जाति आदि सब कह सुनायी।

युधिष्ठिर बोले, हम पाण्डुपुत्र धर्म्मराज हैं, कदाचित् तुमनेभी सुना हो; सो हम भीमसेन और अर्ज्जुनादि सब भाइयोंके संग राज्य नष्ट होनेसे वनमें रहनेकी इच्छासे इस घोर वन, तेरे घरमें आये हैं।

विदुर बोले, कि यह सुनकर किर्म्मीर युधिष्ठिरसे बोला, कि बहुत समयसे मेरे मनमें स्थित यह बलि आज देवतोंने भेज दिया। मैं भीमसेनके मारनेके अर्थही शस्त्रोंको उद्यत

करके सब पृथिवीमें घूमता हूं, परन्तु इसे नहीं पाता था; सो आज इस अपनेभाईके मारनेवालेको प्रारब्धहीसे पाया हूं, हे राजन्! इसीने पहले कपटसे ब्राह्मण वेष धारण करके वैत्रकीय वनमें मेरे भाईको विद्या-बलको आश्रय करके मारडाला था, इसको अपना बल कुछभी नहीं है, और मेरे प्यारे मित्र वनवासी हिड़म्बको भी इसी दुरात्माने मारा है, और उसकी बहनकोभी छीन लिया! सो यह मूर्ख हमारे घूमनेके समय आधी रातको मेरे इस महावनमें आगया; अब मैं वह पुराना वैर इससे निकालूंगा और इसके बहुत रुधिरसे वकका तर्पण करूंगा। आज मैं अपने भाई और मित्रके ऋणसे उद्धार होकर इस राक्षसोंको वैरीको मार कर परम शान्तिको प्राप्त होऊंगा। हे युधिष्ठिर! इसे पहले वकने छोड़ दिया था, परन्तु आज तुम्हारे देखते ही मैं इसे खजाता हूं; जैसे अगस्तने वातापीको खाकर पचालिया था, तैसेही आज मैं इस महापराक्रमी भीमसेनको मारकर और खाकर पचा जाऊंगा। इस प्रकारसे सुनकर धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने क्रोधकरके कहा, कि ऐसा नहीं हो सकता। तब महाबाहु भीमसेन दश व्याम (दोनो हाथोंको फैलाकर जो मान हो उसे व्याम कहते हैं) के वृक्षको उखाड़कर उसे पत्ररहित कर दिया। उसी समय क्षणमात्रमें अर्ज्जुनने वज्रके समान गाण्डीव धनुषको सज्जित किया। हे भारत। भीमने अर्ज्जुनको निवारण करके दौड़कर घोर शब्दवाले राक्षससे कहा, कि रे! खड़ा रह। ऐसा कहकर अपने कच्छको बांधकर बलवान् भीम क्रोधसे होंठ चबाते हुए, हाथसे हाथको मलकर वृक्ष हाथमें लेकर वेगसे राक्षसको ओर चले। तब उस यमदण्डके समान वृक्षको उसके सिरपर मारा जैसे इन्द्र वज्र मारता है। उसके लगनेसे उस राक्षसको कुछ भी दुःख न हुआ, तब उसने वज्रके समान जलती हुई लूक भीमसेनको मारी। योधोंमें श्रेष्ठ भीमसेनने उस लूकको शीघ्रतासे बांये चरणसे पकड़कर पुनः राक्षसकी ओर फेंका; तब किर्म्मीरभी शीघ्र वृक्ष उखाड़कर दण्डधारी यमके समान क्रुद्ध होकर भीमकी ओर दौड़ा, उस समय दोनोंका वृक्षयुद्ध होने लगा, जिससे वृक्ष नाश होने लगे। उस समय इन दोनोंका ऐसा युद्ध हुआ, जैसे पहले स्त्रीकी इच्छावाले बालि और सुग्रीव दोनों भाइयोंका हुआ था। उनके सिरमें लगनेसे वृक्ष अनेक टुकड़े हो होकर गिरने लगे; जैसे दो मतवाले हाथियोंके शरीरमें लगनेसे कमलकी डंटी चूर्ण हो जाती है; तैसेही इन दोनोंके शरीरमें लग लगकर अनेक वृक्ष मूंजके समान चूर्ण हो गये। उस वनमें बकले रजके समान फैल गये। हे भरतर्षभ! इस प्रकारसे राक्षसोंमें मुख्य किर्म्मीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमसेनका वृक्षयुद्ध मुहूर्त्तमात्र होता रहा। तब राक्षसने क्रोधसे भरकर एक शिला युद्धमें स्थिर भीमको मारी; परन्तु भीमसेन किञ्चित्भी चलायमान न हुए; तब राक्षस शिलाकी चोटसे स्थिर भीमसेनकी ओर हाथ फैलाकर ऐसा दौड़ा, जैसे युद्धमें किरण विस्तारकरके राहु सूर्य्यकी ओर जाता है। तब वे दोनों परस्पर युद्ध करते हुए एक दूसरेसे लिपटकर खींचने लगे। दोनों ऐसे शोभित हुए, जैसे बड़े वृष (बैल) लड़ते हैं। उस समय उन दोनोंका ऐसा घोर दारुण भयानक बाहुयुद्ध भया, जैसे नाखून और दांतशस्त्रवाले उन्मत्त दो व्याघ्रोंका युद्ध होता है। वहां दुर्य्योधनके बिगाड़से और बाहुबलसे उन्मत्त, द्रौपदीके सभामें लानेसे क्रुद्ध भीमसेनका बल बढ़ने लगा। जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीको पकड़ता है, तैसेही भीमने उस राक्षसको क्रोधकर हाथोंसे पकड़ा; तब बलवान् राक्षसनेभी इन्हें वैसेही पकड़ा; तब बलवानोंमें उत्तम भीमने उसे बलसे गिरादिया; तब युद्धमें उन

दोनों बलवानोंके हाथोंके रगड़े जानेसे ऐसा शब्द हुआ, जैसे बांसोंके फटनेसे होता है। तब भीमने बलसे उसे पटककर और युद्धमें पकड़कर जैसे प्रबल वायु वृक्षको घुमाता है, तैसे ही घुमाया; तब दुर्ब्बल राक्षस बलवान् भीमके बलसे युद्धमें क्लेशित होकर प्राण निकालता हुआ भीमको खींचने लगा; तब भीमसेनने जाना कि यह राक्षस अब थक गया; तब जैसे पशुको रस्सीसे बांधते हैं, तैसे ही हाथोंसे उसे कसा। भूरीभेरके समान शब्द करनेवाले राक्षसको वली भीमने चेतना रहित करके बहुत देरतक घुमाया; उस राक्षसको तड़पता हुआ जानकर पाण्डुनन्दनने हाथोंसे पकड़कर शीघ्रतासे पशुके समान मार डाला। उसकी कटि (कमर) जंघासे दवाकर हाथोंसे कण्ठको दबाया; अनन्तर टूटे-गात्र-निकले राक्षसको पृथिवीमें मल कर यों बोले, रे पापी! तू यमके स्थानमें जाकर भी हिड़म्ब और बककी आंसू न पोंछ सकेगा। क्रोधी पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर भीमने नष्टवस्त्र नष्टभूषण तड़फते हुए बिना प्राणवाले उस राक्षसको छोड़ दिया। उस मेघके समान रूपवाले राक्षसके मरने पर द्रौपदी को आगे कर अनेक गुणोंसे भीमसेनकी प्रशंसा करते हुए पाण्डवलोग प्रसन्न होकर द्वैतवनको चले।

विदुर बोले, हे नरनाथ! हे कौरव! धर्म्मराजके बचनसे इस प्रकार भीमसेनने किर्म्मीरको युद्धमें मारा। इस प्रकारसे अपराजित युधिष्ठिरने उस बनको निष्कण्टक किया; तब द्रौपदीके सङ्ग धर्म्मज्ञ पाण्डवलोग वहां ठहरे। वे सब भरतकुलसिंह द्रौपदीको आश्वासन करके प्रसन्न मनसे प्रेमपूर्व्वक भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे; भीमसेनके बाहुबलसे जब वह राक्षस नष्ट होगया, तब वीर पाण्डवोंने शुद्ध और निष्कण्टक उस बनमें प्रवेश किया, सो मैंने मार्गमें जाते हुए उस फैले पड़े भयानक दुष्टात्मा राक्षसको महावनमें भीमके बलसे मरा हुआ देखा। हे भारत! वहां जो ब्राह्मण आये थे, उनसे मैंने यह वार्त्ता सुनी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, राक्षसोंमें श्रेष्ठ किर्म्मीरका बध इस प्रकार भीमने किया। यह सुनके राजाने दुःखीके समान भारी सांस लिया।

११ अध्याय और किर्म्मीर
बधपर्व्व समाप्त।

अथार्ज्जुनाभिगम पर्व्वारम्भ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब भोजवंशी तथा अन्धकवंशियोंने सुना, कि पाण्डव लोग दुःखित होकर बनको गये हैं, तो सबलोग वनहीमें आये। धृष्टद्युम्न, चेदिके राजा, धृष्टकेतु, लोकमें विदित महावीर और कस्मीरी सब भाई यह सब धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी निन्दा करते हुए हम क्या करें, ऐसा कहते हुए क्रोधसे भरे पाण्डवोंको देखनेको वनमें आये। वे सब क्षत्रियोंमें सिंह लोग श्रीकृष्णको आगे करके धर्म्मराज युधिष्ठिरके चारों ओर बैठे। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरसे प्रणाम करके दुःखी होकर श्रीकृष्ण कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, दुर्य्योधन कर्ण शकुनी और चौथे दुरात्मा दुःसासनका रुधिर भूमि पीवेगी। इन सब दुष्टोंको इनके संगियोंको और जो राजा उनकी सहायता करेंगे, उन सबको युद्धमें मार कर हम सबलोग धर्म्मराज युधिष्ठिर को पुनः राज्य देंगे; क्योंकि छली मारने योग्य हैं, यह सनातन धर्म्म है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, पाण्डवोंके निरादरसे मानों प्रजाको भस्म कर देंगे ऐसे कुपित श्रीकृष्णको अर्ज्जुनने शान्त किया। अर्ज्जुनने श्रीकृष्णको क्रोधयुक्त देखकर महात्मा सत्यकीर्त्ति कृष्णके पूर्व्व देहकृत कर्म्म कहे। अर्ज्जुन पुरुष (सांख्य शास्त्रोक्त,) प्रमाणरहित सत्य अपारतेज प्रजापतियोंके पति विष्णुलोकनाथ बुद्धिमान् श्रीकृष्णके गुण इस प्रकार कहने लगे।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! पहले समयमें तुमने दश सहस्र वर्ष तक गन्धमादन पर्व्वतपर सायंगृह मुनि (सायंगृह उसे कहते हैं, जो जहां सांझ हो जाय वहीं घर मान ले) हो तप किया था; और हे कृष्ण! तुम ग्यारह सहस्र वर्ष पर्य्यन्त पुष्कर क्षेत्रमें केवल जलही पीकर रहे थे, तथा सौ वर्षतक वायु भक्षण करके और उर्द्धबाहु होकर विशाल बदरिकाश्रममें एक चरणसे खड़े रहेथे, तैसेही उत्तरीय वस्त्र छोड़कर मांसरहित केवल नाड़ीयुक्त शरीरसे सरस्वतीनदीके तटपर बारह वर्षके यज्ञमें रहे थे। हे कृष्ण! तैसेही पुण्यात्मा पुरुषोंके योग्य प्रभासक्षेत्रमें जाकरभी तुम दिव्य सहस्र-वर्ष तक लोकस्थितिके निमित्त खड़े रहे थे; मुझसे व्यासने ऐसा कहा था; हे कृष्ण! तुम क्षेत्रज्ञ हो, सब जगतके आदि हो; हे केशव! आप सबके अन्त हो; तुम तपनिधान हो; भूमिसे उत्पन्न नरक दैत्यको मारकर तुम कुण्डल लाये थे; हे कृष्ण! तुमने प्रथम उत्पन्न घोड़ेको यज्ञके अर्थ प्राप्त किया, उससे यज्ञ करके लोक सिंह और सब लोकोंके जीतनेवाले तुमने युद्धमें सब दैत्य और दानवोंको मारा तब इन्द्रको सर्व्वेश्वर पद देकर हे केशव! तुमने मनुष्यलोकमें जन्म लिया। हे महाबाहो! हे परन्तप! सो तुम नारायण होकर हरि हुये; ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य्य, धर्म्म, धाता, (धारणकरनेवाले) यम अग्नि, वायु, कुवेर, रुद्र, काल, आकाश, पृथिवी और दिशा तुम्ही हो। तुम उत्पन्न नहीं होते चर और अचरके गुरु हो, हे पुरुषोत्तम! तुम बनानेवाले हो। हे मधुराक्षसके नाशक! हे कृष्ण! अति तेजस्वी तुमने चैत्ररथ वनमें सबसे उत्तम देवश्रेष्ठत्व प्राप्तिके अर्थ अनेक यज्ञ किये थे; हे जनार्द्दन! वहां एक एक यज्ञमें सौ सौ सुवर्णके भाग दिये थे, हे यदुनन्दन! तुम दितिके पुत्र होकर जगतमें इन्द्रसे छोटे भाई और विष्णुके नामसे प्रसिद्ध हुए थे; हे शत्रुनाशक! तुमने बालक होकर आकाश, पाताल और पृथिवीको अपने तेजसे तीनही चरणसे लङ्घन किया। तुम तेजरूप होकर आकाश और स्वर्गमें प्राप्त होकर सूर्य्यके रथपर चढ़कर सूर्य्यको प्रकाशित करते हो, हे कृष्ण! हे नाथ! तुमने अनेक (सहस्रों) अवतार लेकर सैकड़ों अधर्म्मी असुरोंको नाश किया है, तुमने तांतकी फांयोंको काट दिया और निसुन्द नरकासुरका नाश करके प्राग्ज्योतिषपुरका मार्ग शुद्धकर दिया। नगरमें पुरुषोंके सहित शिशुपाल, जरासन्ध शैव्य और शतधन्वाको तुमने जीता; तैसेही तुमने सूर्य्यके समान तेजयुक्त मेघके समान शब्दवाले रथपर चढ़कर भोज वंशोत्पन्ना रुक्मिणीको युद्धमें जीतकर प्राप्त किया; तुमने क्रोधसे इन्द्रद्युम्न और कसेरुमान् यवनको मारा है; आकाशमें घूमनेवाले नगरके स्वामी शाल्वको मारकर उसके नगरको पृथिवीमें गिराया; इस प्रकार तुमने इतनोंको युद्धमें मारा; इसके पश्चात् औरभी सुनिये। कार्त्तवीर्य्यके समान भोजको तुमने इरावतीके युद्धमें मारा, हे जनार्द्दन! और मुनियोंकी प्यारी भोगवती द्वारिकाको अपने वशमें करके समुद्रको प्राप्त करते हो, हे मधुसूदन! हे दाशार्ह! क्रोध धूर्त्तता, असत्य, निर्लज्जता, टेढ़ापन यह आपमें कुछभी नहीं है; स्थानमें बैठे हुए अपने तेजसे प्रदीप्त आपके पास आकर महामुनिलोग अभय मांगते हैं; हे मधुसूदन! हे परन्तप! युगके अन्तमें सब प्राणियोंको नाश करके सबको आत्मामें मिलाकर आप जगत्‌रूप हो जाते हैं; हे वृष्णिवंशोद्भव युगके आदिसे तुम्हारे नाभिकमलसे चराचरके गुरु ब्रह्मा जगत् बनानेवाले उत्पन्न भये; उनके मारनेके निमित्त घोर राक्षस मधु और कैटभ उद्यत हुए; उनका यह कुकर्म्म देखकर आपका क्रोध हुआ; तब आपके मस्तकसे तीननेत्रवाले शूलधारी शिव उत्पन्न

भये; इस प्रकार ब्रह्मा और शिव दोनोंही आपके शरीरसे उत्पन्न भये हैं, मुझसे नारदने कहा है, कि यह दोनों तुम्हारी आज्ञासे पालनेवाले हैं। हे नारायण! हे कृष्ण! तैसेही तुमने पहले समयमें चित्ररथ वनमें महा यज्ञ किया था। अन्य पुरुषोंने ऐसे यज्ञ बहुत दक्षिणायुक्त न किये न करते हैं, और न करेंगे। हे देव! जो कर्म बालक-पनमें महाबलवाले तुमने बलदेवकी सहायतासे किये, सो और से न होंगे; कैलासमें ब्राह्मणोंके संग तुम रहे थे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कृष्णरूप पाण्डु-पुत्र अर्जुन महात्मा कृष्णसे यह सब कहकर चुप हो गये; तब कृष्णने ऐसा कहा, हम तुम हैं, और तुम हमारेरूप हो, जो हमारे भाव हैं, सो सब तुम्हारे हैं; जो तुम्हारे द्वेषी हैं, सो हमारा द्वेष करते हैं, जो तुम्हारे अनुगामी हैं, सो हमारे मित्र हैं; तुम दुःखसे घर्षण करने योग्य नर हो और हम भक्तदुःखनाशक नारायण हैं, हम दोनों नरनारायण ऋषि जगतमें समय पाकर प्राप्त हुए हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम मुझसे अभिन्न मैं तुमसे अभिन्न हूं; हे भरतर्षभ! हमारा और तुम्हारा भेद जाननेके योग्य नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उस वीर-समाजमें जहां राजालोग उद्यत बैठे थे, जब महात्मा श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे, तो महावीर धृतष्टद्युम्न-आदि भाइयोंसे वेष्टिता शरणकी इच्छा करने-वाली द्रौपदी शरणपरायन भाइयोंसेयुक्त बैठे हुए श्रीकृष्णसे बोली।

द्रौपदी बोली, मुझसे असित देवलमुनिने आपके विषयमें कहा है, कि पूर्वकालमें आपही अकेलेथे और जगत्‌में आप प्रजापति हैं; आप सब लोकोंके बनानेवाले हैं, हे दुर्द्धर्ष! (दुःखसे घर्षण करने योग्य) आप विष्णु हैं। हे मधु-सूदन! (मधु नामक दैत्यके नाशक) आप यज्ञ स्वरूप हैं। जमदग्नि मुनिने कहा है, कि आप पूजक और आपही पूजाके योग्य हैं। ऋषियोंने तुम्हें क्षमा रूप कहा है, हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! तुम सत्यरूप हो; काश्यपने तुम्हें सत्यसे उत्पन्न कहा है; नारदने तुम्हें साध्य देवता और शिव आदिका ईश्वर तथा प्राणि-योंके नाथ कहा है, हे पुरुषोंमें व्याघ्र श्रीकृष्ण! जैसे बालक खेल बनाकर उससे खेलते हैं, तैसेही आप ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिको बार बार बनाकर खेला करते हैं; हे नाथ! आकाश आपके सिरसे, पृथिवी चरणोंसे व्याप्त और यह लोक तुम्हारे पेटसे व्याप्त हैं; आप सनातन पुरुष हैं, विद्या तपसे तपकर आप तप द्वारा आत्मा भावना करनेवाले और आत्माके दर्शनसे तृप्त मुनियोंमें उत्तम हो; युद्धमें से न फिरनेवाले, पुण्यात्मा, सब धर्म्म युक्त राज-ऋषियोंकी आपही गति हैं। हे पुरुषसिंह! तुम विभू, तुमही प्राणियोंके स्वामी हो; तुमही सुकर्मोंके कर्त्ता हो; लोक, लोकपाल, नक्षत्र, दशों दिशा, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य्य यह सब आपहीमें प्रतिष्ठित हैं। मर्त्यलोक वासियोंमें मानव धर्म और देवतोंमें अमरता यह सब आपहीके अधीन हैं, हे महाबाहो! सब लोकोंके काम आपहीमें प्रतिष्ठित हैं, हे मधु-सूदन! सो आपसे मैं विनयपूर्व्वक अपने दुःखोंको कहती हूं, आप सब जगत्‌के जो दिव्य और मनुष्य हैं उसके स्वामी हैं, हे कृष्ण! हे विभो! मैं पाण्डवोंकी स्त्री, तुम्हारी सखी, और धृष्टद्युम्नकी बहिन हूं, तो मेरी ऐसी स्त्री किस प्रकार सभामें खींची गयी; कांपती हुई रजस्वला रुधिरसे भीजी एकवस्त्र धारिणी मैं कौरवोंकी सभामें खींची गयी, सभामें राजोंके मध्यमें मुझे रुधिरसे भीगी देखकर पापी धृतराष्ट्रके पुत्र हंसने लगे। हे मधुसूदन! वे लोग दासी बनाकर पाण्डव पाञ्चाल और यादवोंके जीते मुझे भोग करना चाहते थे, हे

कृष्णा! जो मैं भीष्म और धृतराष्ट्रकी पुत्र-वधू थी उस मुझे उन्होंने बलसे दासी बनाया! युद्धमें श्रेष्ठ महाबलवान् इन पाण्डवोंकी मैं निन्दा करती हूं, जो अपनी यशस्विनी धर्मपत्नीके क्लेशको देखते हैं; हे जनार्दन! भीमके बलको और अर्जुनके गाण्डीव धनुषको धिक्कार है, जो मुझे चुटैसे खिंचते देखकर चमा कर रहे हैं; महात्माओंने यह धर्ममार्ग नित्य कहा है, कि थोड़े बलवाले पतिभी अपनी स्त्रियोंकी रचा करते हैं; जब स्त्रीकी रचा होती हैगी सन्तान रचित होती है, अतएव उसे जाया कहते हैं, स्त्री भी पतिकी रचा करती है, कि भर्त्ता मेरे उदरसे कैसे उत्पन्न होगा। यह पाण्डवलोग शरणागतको कदापि नहीं त्यागते हैं, परन्तु शरणमें आई मुझको उन्होंनेभी रचित न किया; देखो मेरे पांच-पतियोंसे महातेजस्वी पांचपुत्र हुए हैं, हे जनार्दन! इनको भी देखकरके रचा किये जाने योग्य हूं, युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकीर्त्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा पुत्र हुए हैं, यह सब सत्य पराक्रमी हैं। हे कृष्ण! जैसे प्रद्युम्न हैं, वैसेही यह भी सब महारथ हैं, यह सब धनु-र्धारियोंमें श्रेष्ठ, युद्धमें शत्रुओंसे अजेय हैं; न जानें, यह सब दुर्ब्बल धृतराष्ट्रके पुत्रोंको क्यों चमा कर रहे हैं; उन्होंने इनका राज्य अध-र्म्मसे छीन लिया। इन सबको दास बनाय एक वस्त्र धारिणी रजस्वला मुझको सभामें खींच-लाये। हे मधुसूदन! गाण्डीव धनुष अर्जुन, भीम तथा तुम्हारे बिना जगत्में किसीसेभी अधिचय (रोद सहित) नहीं हो सकती है। किंतु हे कृष्ण! भीमके बल और अर्जुनके पुरुषार्थको धिक्कार है, जो दुर्य्योधन इनके आगे मुहूर्त्त भरभी जीवित है। उसने इन अदुःखदाइयोंको माताके समेत राज्यसे निकाल दिया था, उस पापीने इनको ब्रह्मचर्य्यावस्थामें बालकपनमें पढ़ते समय भीमसेनके भोजनमें विष मिलाय दिया था। हे महाबाहो! नवीन तीच्ण अधिक कालकूटको (विषविशेष) अन्नको सहित बिना विकारहो भीमने आयुशेष रह-नेके कारण उसे पचालिया था। प्रमाण नामक वट-वृचके नीचे विश्वास सहित तत्पर सोते हुए भीमसेनको बांधकर गङ्गामें डालके वह आप नगरको चलागया था। हे कृष्ण! जब महाबली महाबाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन जागे तब सब बन्धन तोड़कर खड़े हो गये। हे कृष्ण! भीमके सब अङ्गोंमें उसने कठिन विषैले सर्पोंसे कटवाया तथापि शत्रुनाशन भीम न मरे; जब भीम, जगे तो सब सर्पोंको मार-डाला। औ उसके सारथी कोभी हाथसे मारा। फिर वारणावतमें यह, बालक अपनी माताके सङ्ग जब सोते थे तब उसने आग लगा दी। भला ऐसा कौनकर सकता है? जहां महादुःखमें पड़ी, आगसे घिरी रोती हुई हमारी सासने पाण्डवोंसे यों कहा, हाय मैं मरी अब कैसे शान्ति होगी, मैं अनाथ बालक पुत्रोंके संग यहीं नष्ट हो जाउंगी! वहां महाबाहु वायुके समान वेग और बलवाले भीमने कुन्ती और भाइयोंको आश्वास दिया और कहा, कि जैसे उड़नेवाले पचियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ उड़ता है, वैसेही मैं भी उड़ जाउंगा; आपलोगोंको कुछभी भय नहीं है; तब कुन्तिको बांई गोदमें राजाको दहनीमें नकुल और सहदेवको कन्धो-पर तथा अर्जुनको पीठपर चढ़ाकर सबके समेत एकबार उड़कर बलवान भीमने भाई और माताको आगसे बचाया। तब यशस्वी पाण्ड-वलोग अपनी माताके संग वहांसे रातको चले, तो महा घोर वनमें पहुंचे जो हिड़म्ब राचसका घर था वहां वे थकी हुई दुःखिनी माताके समेत सो रहे थे; सोते हुओंके पास हिड़म्बा नाम्नी राचसी आयी; उसने माताके संग पृथिवीमें सोते पुत्र पाण्डवोंको देखकर कामसे

पराजित होके भीमको पति करनेकी कामना करी, तब कल्याणी अवला हिड़म्बाने भीमके चरण अपनी गोदमें लेकर प्रसन्न होकर कोमल हाथोंसे दबाया। तब सत्य-पराक्रम भीमने जागकर उससे पूंछा, हे अनिन्दिते! तुम क्या चाहती हो? भीमसेनके यहवचन सुन करके अनिन्दिता कामरूपिणी राक्षसी बोली, कि हे बलवान्! मेरा भाई तुम् लोगों को मारने आता है; अतएव आपलोग शीघ्रही यहांसे भाग जाइये, विलम्ब मत कीजिये; अनन्तर भीमने राक्षसीसे अभिमान सहित कहा, कि मैं उससे नहीं डरता, यदि वह लड़ेगा, तो अभी मार डालूंगा। इन दोनोंकी वार्तालाप सुनकर राक्षसोंमें नीच और भयानक घोररूपी महाशब्द करता हुआ हिड़म्ब वहां आया।

राक्षस बोला, हे हिड़म्बे! तू किसके सङ्ग बात करती है; इसको मेरे घरमें ले आ। हम इसको खायंगे, तू बिलम्ब मत कर। उस अनिन्दित नेत्रवाली मनस्विनीने हृदयके कृपावश होनेके कारण मोहसे इनको बन्धन करनेकी इच्छा नहीं की। तब मनुष्यभक्षी घोर शब्द करता हुआ वह वेगसे भीमसेनकी ओर दौड़ा, क्रोधमें भरा हुआ बली राक्षसने महावेगसे दौड़कर भीमका हाथ पकड़ लिया। इन्द्रके वज्रके समान स्पर्शवाला, वज्रके समान दृढ़ हाथका मुक्का बांधकर उसने भीमसेन को मारा। भीमने जब अपना हाथ राक्षसके हाथमें देखा, तो क्षमा न करी और महाक्रोध किया। तब सब शास्त्र जाननेवाले भीम और हिड़म्बका वैसाही घोरयुद्ध हुआ जैसा इन्द्र और वृत्रासुरका भया था। हे पापरहित! इस प्रकार राक्षसके सङ्ग बहुत समय पर्य्यन्त बली भीमने क्रीड़ा करके उस निर्ब्बलको मारा, हिड़म्बको मारके भाइयोंके समेत और घटोत्कचमाता हिड़म्बाको आगे कर भीमसेन वहांसे चले; तब यह सब परन्तप पाण्डव लोग माताके औरब्राह्मण समूहके साथ एकचक्रापुरीको चले। मार्गमें इनके मन्त्री प्रिय चाहनेवाले व्यास मिले; तब यह व्रतधारी पाण्डव एकचक्रापुरीको गये; वहां भीमकी महाबलवान् बकासुरसे भेट भई। उस मनुष्य भक्षक भयानक हिड़म्बके समान राक्षसको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमने मार कर भाइयोंके सङ्ग द्रुपदपुरको गमन किया। वहां निवास करते हुए अर्जुनने औरोंसे न करने योग्य कर्म्मको करके मुझे प्राप्त किया। हे कृष्ण! जैसे तुमने युद्धमें भीष्मकको पुत्री रुक्मिणीको जीता, तैसेही अर्जुनने मुझे स्वयंम्वरके महायुद्धमें जीता। हे मधूसूदन! इस प्रकार बहुत क्लेशोंसे क्लेशित होकर मैं अपनी सासुसे रहित होकर धौम्यके सहित वनमें वास करती हूं। यह सिंहके समान पराक्रमी होनेपरभी वैरियोंसे अधिक बलवान् तथा हीन पुरुषोंके समान क्यों दुःखी हो रहे हैं और मुझे इस दशामें क्यों देख रहे हैं? ऐसे ऐसे महादुःखोंको दुर्ब्बल और पापियोंसे पाकर मैं बहुत समयसे दुःखी हो रही हूं। मैं दिव्यविधिसे महाकुलमें उत्पन्न भई हूं; पाण्डवोंकी प्यारी स्त्री और महात्मा पाण्डुकी बहू हूं, हे कृष्ण! मैं ऐसी श्रेष्ठ होनेपरभी इन्द्रसमान पांचपाण्डवोंके देखते अन्य पुरुष द्वारा केश पकड़के खींची गयी।

ऐसा कहकर द्रौपदी अपने पद्म सदृश कोमल हाथसे मुखको छिपाकर रोने लगी; अपतित पीन शुभलक्षणयुक्त स्तनको आंसुओंसे भिगोने लगी। आखोंको पोंछती हुई बार बार सांस लेती हुई आंसुओंसे पूर्ण कण्ठसे क्रुद्ध द्रौपदी ऐसा बोली, मेरे न पति हैं, न पुत्र हैं, न बान्धव हैं, न भाईलोग हैं, न पिता हैं, और हे कृष्ण! तुमभी नहीं हो; जो आपलोग शोक रहित हैं, सो मेरा दुःख शान्त नहीं होता। हे केशव! हे कृष्ण! मैं आपसे चार हेतु करके

रचा करने योग्य हूं। प्रथम तो सम्बन्धसे, दूसरे बड़ेपनसे, तीसरे सखीभावसे चौथे तुम परमेश्वर हो, इससे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उस वीर समागममें श्रीकृष्णने द्रौपदीसे कहा।

श्रीकृष्णजी बोले, हे भाविनि! तुम जिनपर क्रुद्ध भई हो, उनकी स्त्रीभी अपने पतियोंको अर्जुनके वाणोंसे पूर्ण, रुधिरसे भरे हुए पृथिवीमें सोये, मरे हुए देखकर ऐसेही रोवेंगी। पाण्डवलोग जो कुछ कर सकते हैं, सो हम करेंगे; तुम सोच मत करो; हम सत्य कहते हैं, तुम राजराणी होगी; चाहे आकाश गिर जाय, भूमि खण्ड खण्ड हो जाय अथवा समुद्र सूख जाय, परन्तु मेरा वचन मिथ्या नहीं होगा। द्रौपदीने कृष्णका यह उत्तर सुनकर अपने मध्यम पति अर्जुनकी तिरछी दृष्टिसे देखा, तो अर्जुनने द्रौपदीसे कहा, हे उत्तम लाललनेत्रवाली तू मतरोओ। हे उत्तमवर्णवाली जो श्रीकृष्णने कहा है, सो वैसाही होगा; अन्यथा कुछभी नहीं होगा।

धृष्टद्युम्न बोले, कि हे बहन! मैं द्रोणाचार्य्यको मारूंगा, शिखण्डी भीष्मका नाश करेंगे, दुर्य्योधनको भीमसेन, कर्णको अर्जुन मारेंगे, हम बलराम और श्रीकृष्णको सहायतासे युद्धमें इन्द्रसेभी अजेय हैं, तब धृतराष्ट्रके पुत्र क्या वस्तु हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जब धृष्टद्युम्नने ऐसा कहा, तो सब वीरलोग श्रीकृष्णको ओर देखने लगे। अनन्तर वीरोंके मध्यमें महाबाहु श्रीकृष्ण ऐसा बोले।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! यदि मैं उस समय द्वारिकामें होता, तो आपको यह कष्ट न होता। मैं अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनके न बुलानेपरभी अवश्य द्यूत स्थानमें पहुंचता। हे दुर्द्धर्ष! मैं अनेक दोष दिखाकर जुएको न होने देता। भीष्म, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, वाह्लीक, और महाराज विचित्रवीर्य्यकेपुत्र धृतराष्ट्रसे कहता कि हे कौरव! यह जुआ व्यर्थ है। हे प्रभो! यह तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रोंके योग्य नहीं है; मैं वहां यहभी सब दोष दिखाता, जिनमें इस समय आप पड़े हैं, और वे दोषभी मैं दिखाता, जिनसे पहले समयमें वीरसेनके पुत्र (नल) राज्यसे नष्ट हुए थे। हे राजन्! जुएमें अवश्यही विनाश हो जाता है। मैं सब दोष अविच्छिन्न रूपसे यथायोग्य कहता हूं। यह चार दोष कामसे उत्पन्न होते हैं, स्त्रियोंमें अति प्रसक्ति, जुआ, मद्यपान, और मृगया, (शिकार), यह चारोंहो महादुःखदायी हैं, क्योंकि इनसे पुरुष लक्ष्मीहीन हो जाता है। यद्यपि शास्त्रदर्शी महात्मा इन चारों हीको दोषस्थान कहते हैं, तथापि विशेषकर जुएको बुरा कहते हैं, क्योंकि इसमें एकही दिनमें सब द्रव्य नाश हो जाता है, और उसमें राज्यभ्रंशादिभी अवश्यही होजाता है, तथा इसमें बिना भोग कियेही धनका नाश होता है। हे कौरव्य! हे महाबाहो! इत्यादि अनेक कड़ुवी बात जुएमें प्रसंग होनेपर मैं अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रसे कहता, हे कुरुवर्द्धन! मेरी इन बातोंको यदि वह मानते तो कुरुवंशमें कल्याणवृद्धि होतो और धर्म्म होता। हे राजेन्द्र! यदि वह मेरे पथ्यके समान मीठेवचनको न मानते तो उनको बलसे दण्ड देता। हे भरतश्रेष्ठ! इनके लड़नेके समय यदि इनके दुष्टात्मा मित्रलोग और दुष्ट सभासद आते, तो उन दुष्कर्म्मियोंकोभी मैं मार डालता; हे कौरव्य! उस समय मैं आनर्त्त देशियोंके समोप नहीं था; अतएव आपलोग इस जुएके महाविपदमें पड़ गये, हे कुरुश्रेष्ठ! हे पाण्डुनन्दन! जब मैं आया, तो सात्यकीसे यह सब वृत्तान्त सुना, हे राजेन्द्र!

में सुनतेही अत्यन्त उद्विग्नचित्त होकर आपको देखनेकी इच्छासे बहुत शीघ्र यहां चलाआया। हे भरतर्षभ! हे महाराज! हम महादुःखमें पड़े हैं, क्योंकि हम भाइयोंके समेत आपको इस दुःखमें देख रहे हैं।

१३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कि हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! तुम द्वारिकामें क्यों नहीं थे,तुम किस परदेशको गये थे और उस परदेशमें तुमने क्या कार्य्य किया।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे भरतर्षभ! हे कौरव-श्रेष्ठ! शाल्वको मारनेके अर्थ मैं उसके सौभ-पुरमें गया था। इसका कारण यह हुआ, कि पूजाके निमित्त आपके राजसूय यज्ञमें मैंने महातेजस्वी महाबाहु महायशस्वी दमघोषके पुत्र वीर राजा शिशुपालको मारा था; सो शाल्वराजा उस क्रोधको शान्त नहीं कर सका; वह दुरात्मा क्रोधके वशमें होकर क्षमा न कर सका। हे भारत! जब मैं आपके पास आया था, तब उसने शिशुपालका मरना सुनकर क्रोधके वशमें होकर शून्य द्वारिकाको घेर लिया, जब निर्लज्जके समान अपने सौभपुरको (यह नगर उत्तम प्रकाशमान धातुओंसे बना था और अकाशमें घूम सकता था) लेकर द्वारिकामें आया तो वृष्णिवंशी राजकुमारोंने उससे युद्ध किया। तब उस दुर्म्मतिने उन बालक वृष्णिवंशियोंको मारकर नगरके उपवनोंको सब ओर नाशकर दिया। हे महाबाहो! तब उसने कहा, कि वह दुष्टबुद्धि वसुदेवका पुत्र, वृष्णिकुलका अधम कृष्ण कहां है? मैं उस युद्धकी इच्छावालेका अभिमान युद्धमें नाश करूंगा। हे आनर्त्तलोगो! तुम सत्य कहो, वह जहां होगा, मैं वहीं जाऊंगा, उस कंस और केशीके मारनेवालेको मारकर लौटूंगा। मैं सत्यकर शस्त्र धारण करता हूं, कि उसे विना मारे कदापि न फिरूंगा। "वह कहां है, वह कहां है" ऐसे कहता हुआ सौभका ... मुझसे युद्धकरनेकी इच्छासे इधर उधर लगा और कहने लगा, कि आज ... विश्वासघाती, क्षुद्र, शिशुपालके मार... भरा हुआ कृष्णको मैं यमके घर ... जिस पाप स्वभाववालेने मेरे भाई ... पालको मारा है, आज मैं उ... जिस कृष्णने मेरे भाई बालक व... शिशुपाल को बिना युद्धके मार... मारूंगा। हे राजन्! यह इस प्रक... कहता हुआ, इच्छानुसार चलनेवाले नगरके सहित मुझे गाली देता हुआ, आकाशको चला गया। हे कौरव्य! जब मैं आपके पाससे गया, तो उस दुर्बुद्धि "मार्त्तिकावत" देशी दुष्टात्मा राजा शाल्वने जो मेरे लिये किया था, सो सब सुना। हे कौरव्य! तब मैं भी क्रोधसे व्याकुल होकर निश्चय करके उसके मारनेका विचार करने लगा। मैं आनर्त देशका विनाश, अपना निरादर उस दुष्कर्मोंका बढ़ा हुआ अभिमान, यह सब विचार कर हे पृथिवीनाथ! सौभके नाश करनेको चला। हे नरनाथ! मैंने जाकर उसे समुद्रके द्वीपमें देखा। तब मैंने पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया और शाल्वको युद्धमें बुला कर मैं स्थित हुआ। तब उन दानवों और मुझसे मुहूर्त्त भर युद्ध हुआ। तब मैंने सबको वशमें कर लिया और पृथिवीमें गिरा दिया। हे महाबाहो इसही कारणसे मैं अन्यायमय द्यूतके समयमें हस्तिनापुरमें नहीं आ सका और न आप लोगोंको दुःखी सुनकर शीघ्रतासे पहुंच सका।

१४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे वसुदेवनन्दन! हे महाबाहो! हे महामते! इस बातको आपसे

मननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती है, अतएव दूसरे [प्रश्न]को विस्तार पूर्व्वक कहिये।

परमेश्वर श्रीकृष्ण बोले हे भरतश्रेष्ठ! हे महाबाहो! [नरना]थ! मैंने शिशुपाल को मारा ऐसा [सु]नकर शाल्व द्वारिकाको आया। हे पाण्डुनन्दन! उस दुष्टात्माने पुरीको घेर लिया और आकाशकोभी व्यूह रचना करके घेर लिया। और आकाशमें स्थिर होकर जहां युद्ध हो,वहीं जाकर उस नगरमें युद्ध करने लगा। ध्वजा, तोरण (बनाये द्वार) युक्तानगरीको सब ओरसे घेर लिया। योद्धाओंके रहनेके स्थान, विष्ठा और मूत्र त्याग करनेके घर ऊड़ास, (बुर्ज) यन्त्र (कल) सुरङ्ग खोदनेको शस्त्र, लोहेके कटहरे लगी सड़कें, अटारी, नगरके द्वार, चक्रग्रहणी, (जहांसे लड़नेको रहती है, मोर्चा वा कैंप) अग्निसमेत लूक, अब पोथिका, (शत्रुओंके मारनेको पत्थर और काष्ठ जहां रखे जाते हैं) कुप्पियोंके स्थान, भेर, पण वानक (बाजा) तोमर, अंकुश, शतघ्नी, (तोप) लांगल, भुशुण्डी (शस्त्रविशेष) पत्थर और गुड़के स्थान (जहां गुड़ रहता है, और शत्रुओंके आनेपर उसे तापकर उनके ऊपर ढालते हैं) शस्त्र परश्वध, लोहा, चमड़ा, ढाल, आग्नेय औषध सहित गुड़के गोलोंसे पूर्णशृङ्ग। साम्ब,गद,और उद्धव करके युद्धशास्त्र विधिके अनुसार अनेक रथ सहित रथशाला है कुरुशार्द्दूल! अति विख्यात वंश, शत्रुओंको निवारण करनेमें समर्थ,युद्धमें प्रकाश बल पुरुष, इन वस्तुओंके सहित द्वारिकाको शाल्वने घेर लिया। मध्य गुल्म (जहां बैठकर चारों ओरके शत्रुओंको देख और उनसे लड़ सकें) के रक्षा करनेवालोंसे रक्षित शत्रुओंके गुल्मको भगानेके स्थानों सहित पुरीको घेर लिया।

उसही समय प्रमादसे रक्षा करनेवाले, उग्रसेन, और उद्धवादिने पताकासहित घोड़ोंपर पुरुषोंको चढ़ाकर यह घोषणा दिलादी, कि राजा शाल्व मतवारोंको मार डालेगा। अतएव कोईभी पुरुष सुरा (मद्य) न पीये। यह सब करके वृष्णी और अकवंशी अप्रमत्त होकर स्थिर हुए। तब धनको रक्षा करनेवालोंने आनर्त्त देशवासी पुरुष नट, (नाटक करनेवाले) नाचनेवाले, गानेवाले, पुरुषोंको शीघ्रही नगरसे बाहर बसनेको आज्ञा देदी। सब पुल तोड़ दिये, नावोंको रोक दिया, नहरके फाटकोंको कीलोंसे दृढ़कर दिया। हे कुरुश्रेष्ठ! एक कोश पर्व्वत कुए और बावड़ीभी कीलोंसे दृढ़कर दीं और भूमि नीची ऊंची करदी। एक तो द्वारिका स्वभाव हीसे कठिन और सुरक्षित शस्त्रसहित थी, परन्तु हे अनघ! उस समय सभी सुरक्षित, गुप्त, और शस्त्रोंके सहित ऐसी शोभित हुई, जैसा इन्द्रका स्थान; बिना मुद्राके (चिह्न वा टिकट) न कोई नगरमें जाने और न कोई बाहर निकल सकता था, हे राजन्! उस सौभपतिकी चढ़ाई में द्वारिकाकी छोटी गलियोंमें चौतरोंपर हाथी घोड़से सेना पूरितहो गई? वेतन, भोजन, शस्त्र, वस्त्र प्राप्त करके सब सेना यथोचित सन्नद्ध हो गई, हे महाभुज! उस सेनामें कोई छोटे वेतनवाला, कोई अति कम वेतनी, (पेन्शिनपानेवाला) न कोई अनुग्रहसे युद्ध करनेवाला था,न कोई ऐसा था, कि जिसका बल देखा न गया हो। हे राजन्! हे कमलनेत्र! उस समय द्वारिका अनेक कुशल पुरुषोंसे रक्षित हुई।

१५ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजेन्द्र! उस नगरीमें सौभपति शाल्वराजाने हाथी घोड़ेयुक्त महासेना लेकर प्रवेश किया। उस समय हमारे महासमुद्रमें शाल्व राजाकी हाथी, घोड़े, रथ, और पदाति, संयुक्त सेनाने प्रवेश किया। श्मशान, देवतोंके स्थान, वनई, (बिल आदि) और चितासम्बन्धी वृक्ष, इनको छोड़कर और सब

स्थानोंमें सेना पूरो हो गई, सेनाके छोटे छोटे टुकड़ोंसे नगरको खिड़कियां बन्द हो गईं, हे नरनाथ! शाल्वके शिबिर (सेना निवास वा कैंप) में गुप्तरीतिसे प्रवेश करनेकी किसीको सामर्थ न हुई। हे कौरव! हे भरतर्षभ! सब शस्त्रोंसे संयुक्त सब शस्त्रनिपुण, रथ, घोड़े, हाथी, पैदलोंसे पूर्ण पताकायुक्त, सन्तुष्ट, बली, पुरुष-सहित लक्षणयुक्त विचित्र भण्डे और कवचयुक्त विचित्र रथ, विचित्र धनुषयुक्त सेनाको शाल्वने जैसे वेगसे गरुड़ दौड़ता है तैसेही नगरकी ओर चलाया। जब उस शाल्वकी सेनाको नगरकी ओर आता देखा, तो वृष्णिवंशके कुमार निकलकर युद्ध करने लगे; हे कौरव! शाल्व राजाके उस वेगको न सहकर चारुदेष्ण, साम्ब, और महारथ प्रद्युम्न यह लोग सन्नद्ध हो रथोंपर चढ़कर विचित्र आभूषण और ध्वजा धारण करके शाल्वके अनेक योधोंसे युद्ध करने लगे; साम्ब धनुषको धारण करके शाल्वको सेनापति मन्त्रीसे प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! जाम्बवतीके पुत्रने उसपर ऐसी बाण वर्षा करी, जैसे इन्द्र जलवर्षाता है। हे महाराज! उन महा बाणोंकी वर्षाको क्षेम-वृद्धि सेनापति ऐसे निपुणतासे सहने लगा जैसे महावर्षाको हिमाचल सहता है. हे राजेन्द्र! तब क्षेमवृद्धि सेनापतिने साम्बके प्रति मायाके समेत महाशर छोड़ा। अनन्तर शाम्बने उसके मायामय शरजालको मायाहीसे छा लिया। जब क्षेमवृद्धि सेनापति उनके बाणोंसे विद्ध हुआ, तो तेज घोड़ोंके रथसे युद्धको छोड़कर भाग गया। जब शाल्वका क्रूर सेनापति भाग गया, तो बलवान् वेगवान् नामक दैत्य मेरे पुत्र साम्ब-के आगे उपस्थित हुआ। हे राजेन्द्र! जब वृष्णिवंशी साम्बको वेगवानने युद्धमें लक्ष किया, तो वीर साम्ब उसके बाणोंके वेगको धारण कर स्थिर रहा, हे कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर! तब सत्य-पराक्रम, वीर साम्बने शीघ्रतासे वेगवती गदाको घुमाकर वेगवान् को मारा, तब उसके लगनेसे वेगवान मरकर पृथिवीपर ऐसा गिरा जैसे वायुके लगनेसे जड़ उखड़कर वृक्ष गिरता है। उस महाअसुर वीरको भयानक गदासे मार-कर मेरे पुत्रने उस महासेनामें घुसकर महा युद्ध किया। हे राजन्! चारुदेष्णके संग शाल्व-की आज्ञासे महारथ महाधनुधारी, विविंध्य-नामक राक्षस युद्ध करने लगा। उस समय चारुदेष्ण और विविंध्यका ऐसा घोर युद्ध हुआ, जैसा पहले समयमें वृत्रासुर और इन्द्रका हुआ था। वे दोनों परस्पर एक दूसरेको क्रुद्ध होकर बाणोंसे काटने लगे, महा बलवान् सिंहोंके समान दोनों गर्जने लगे; तब रुक्मिणीनन्दन चारुदेष्णने अग्नि और सूर्य्यके समान तेजवाले शत्रुनाशक बाणको महास्त्र मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर चढ़ाया। हे राजन्! महावीर चारुदेष्णने उस बाणको चढ़ाकर क्रोधमें भर विविंध्यको ललकारके उसको मारा। विविंध्य उसके लगनेसे प्राणरहित होकर पृथिवीमें गिर पड़ा। विविंध्यको मरा और सेनाको घबराई हुई देखकर शाल्व मनोगामी सौभपर चढ़कर स्वयंही आया। हे नरनाथ! सौभपर आरूढ़ शाल्वको देखकर द्वारिकाकी जितनी सेना थी, सबही व्याकुल होगयी, हे कौरव्य! हे महाराज! तब प्रद्युम्नने निकलकर और याद-वोंको उस सेनाका स्थिर करके ऐसा कहा। आप सब लाग खड़े रहिये, देखिये मैं राजाके समेत सौभका युद्धमें निवारण करता हूं। हे यादवो! मैं शाल्वको सेनाका सभी धनुषको कुटिलतासे छूटे लोहेके सर्पोंके समान बाणोंसे नाशकर देता हूं। आपलोग स्वस्थ हाजये, डर मतकीजिये; शाल्व अभी मर जाता है, मुझसे लड़कर यह दुष्टात्मा सौभके साहत नष्ट हो जायगा। हे वीर पाण्डुनन्दन! जब प्रद्युम्नने प्रसन्न होकर ऐसा कहा, तो

सब सेना स्थिर हुई और सुखपूर्व्वक युद्ध करने लगी।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे भरतकुलसिंह! रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न यादवोंसे ऐसा कहकर सन्नद्ध घोड़ोंसेयुक्त सुवर्णमय रथपर चढ़कर मूफुलाये यमराजके समान, मत्स्यसहित ध्वजा युक्त, मानो आकाशको जाते हैं, ऐसे घोड़ों सहित रथपर चढ़कर शत्रुकी सेनाके आगे आये। वीर प्रद्युम्न अपनी धनुषको शत्रुओंको दिखाते हुए बलसे टङ्कारध्वनि करते हुए कवच खड्ग हाथ और अङ्गुलियोंमें लोहेके रक्षाजाल धारण किये बिजली समान धनुष दहनी ओर बांई ओर घुमाते हुए समस्त सौभवासी दैत्यगणको मोहित करने लगे। उस समय शत्रुओंको मारते हुए प्रद्युम्न कब धनुष-पर बाण चढ़ाते हैं, कब खींचते हैं, और कब छोड़ते हैं, इन सब बातोंको कोईभी नहीं जान सकता था, न इनके मुखका कुछ रंग बदला और न शरीर चलायमान हुआ, केवल सिंहके समान इनका पराक्रमभरा शब्द सब-लोग सुनते थे। रथके ऊपर सब मकरियोंमें मुख्य मत्स सुखफैलाए हुए ध्वजामें लगा हुआ सोनेके दण्डमें बँधा शाल्वकी सेनाको डराता हुआ शोभादेने लगा; तब युद्धकी इच्छायुक्त प्रद्युम्न वेगसे शाल्वहीके आगे युद्धकरनको उपस्थित हुए। हे कुरुकुलका बढ़ानेवाले नरनाथ! उस महायुद्धमें वीर प्रद्युम्नके सङ्ग क्रोधसेभरा शाल्व युद्धको उपस्थित हुआ। क्रोध मदसे शत्रुजित उन्मत्त शाल्व सौभरथसे उतरकर प्रद्युम्नको वेधित करता हुआ युद्ध करने लगा, उन दोनोका युद्ध बलि और इन्द्रके समान होते सबलोग देखने लगे। हे वीर! हे प्रभो! हे कौरव्य! श्रीमान् बलवान शाल्वराज मायामय, सोनेके, पताका, ध्वजा, और ठाट युक्त रथपर चढ़कर तूण धारणकर प्रद्युम्न पर बाण बरसाने लगा। तब शाल्वको मोहित करते हुए प्रद्युम्नने शीघ्रता सहित बाहुबलसे युद्धमें बाणोंकी वर्षा करी, उन सब बाणोंसे शाल्व महा क्रोध करके मेरे पुत्रपर जलती हुई अग्निके समान बाणोंको छोड़ने लगा, महाबलवान मेरे पुत्रने उसके सब बाणोंको काटकर अपने तीक्ष्णबाणोंको छोड़ा। हे राजेन्द्र! रुक्मिणीनन्दनने शाल्वका बाणोंसे बिद्धकर मर्म्मभेदी एक बाण शीघ्रता सहित युद्धमें छोड़ा। मेरे पुत्रका वह पंखयुक्त बाण उसके मर्म्मस्थानको भेदकर हृदयमें प्रवेशकर गया, उससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। शाल्व राज वीरके चेतनारहित होनेपर दैत्यलोग पृथिवीको धारण करते हुए भागने लगे, हे पृथिवीनाथ! शाल्वकी सेनामें हाहाकार होने लगा। हे कौरव्य! तब चैतन्य होके शाल्व उठा और महाबल शाल्व वेगसे प्रद्युम्नपर बाण छोड़ने लगा, महाबाहु महावीर प्रद्युम्न समरमें उन बाणोंसे सन्धिस्थानोंमें पीड़ित होकर रथपर मूर्च्छित हो गए, उस रुक्मिणी-नन्दनको मूर्च्छित करके शाल्व पृथिवीको शब्दसे पूर्ण करता हुआ महाशब्द करने लगा। हे भारत! जब मेरा पुत्र युद्धमें मूर्च्छित हुआ, तो वह बड़े बड़े और कठिन बाणोंको छोड़ने लगा; हे कौरवश्रेष्ठ! तब युद्धमें उसके अनेक बाणोंसे पीड़ित होकर प्रद्युम्न चेष्टारहित हो गये।

१७ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णजी बोले, जब बलवानोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न शाल्वके बाणोंसे पीड़ित हुए, तब सब वृष्णि-वंशीलोग नष्ट संकल्प होकर सेनामें व्यथित हो गये; उस समय समस्त वृष्णि और अन्धकोंमें हाहाकार होने लगा। परन्तु प्रद्युम्नको मूर्च्छित देखकर शत्रु अति प्रसन्न हुए। उनको

मूर्च्छित देखकर दारुकका पुत्र शिक्षित सारथी वेगवान् घोड़ोंयुक्त रथके समेत युद्धसे शीघ्र बाहर लेगया, जब रथ थोड़ीही दूर गया, तो महारथोंको जीतनेवाले प्रद्युम्न चैतन्य होकर सारथीसे ऐसा कहने लगे, हे सूत! तुमने क्या किया जो युद्धसे मुखफेरे लौटे जाते हो, यह युद्धमें वृष्णिवंशियोंका धर्म्म नहीं है, हे सूतपुत्र! क्या तुमको युद्धमें शाल्वको देख कर कुछ भ्रमहो गया? युद्धको देखकर कुछ दुःख हुआ सो मुझसे सत्य सत्य कहो।

सूत बोला, हे कृष्णपुत्र! मुझे न मोह हुआ, न मुझे भय हुआ, परन्तु मैंने यह समझा कि शाल्व आपसे भारी वीर है, यह पापी बड़ा बलवान् है, इसी लिये मैं धीरे धीरे युद्धमें हटा जाता हूं क्योंकि, यह नियम है कि युद्धमें सारथी रथी (रथमें बैठे योधा) की रक्षा करे। हे आयुष्मन्! मेरा धर्म्म है आपकी रक्षाकरना और आपका धर्म्म मेरी रक्षाकरना है, सारथी रथीकी रक्षा करे यह विचार कर मैं युद्धसे चला हूं। हे रुक्मिणीनन्दन! मैंने विचारा है, कि तुम अकेले और यह दानव अनेक हैं, युद्ध समान नहीं है. अतएव मैं युद्धसे चला जाता हूं।

हे युधिष्ठिर! सूतके ऐसे बचन सुनकर प्रद्युम्नने सूतसे कहा कि हे सूत! तुम रथको पुनः लौटाओ, हे दारुकपुत्र! तुम ऐसा काम फिर कभी मत करना, जीते हुए मुझे युद्धसे पुनः कभी मत हटाकर लेजाना; जो युद्धको त्याग दे उसको, गिरेको, "हम तुम्हारे हैं" ऐसा कहते हुए को स्त्रीको, बालकको, रथहीन, घबरायेको, जिसके शस्त्र टूटे हों, ऐसे पुरुषोंको जो मारे सो वृष्णिकुलमें उत्पन्न नहीं हुआ। हे दारुकपुत्र! तुम सूतवंशमें उत्पन्न हुए हो, सूतकर्म्ममें कुशल हो, और युद्धमें यदुवंशियोंके धर्म्मको जानते हो। हे सूत! तुम सेनाके अग्रभागमें उपस्थित यदुवंशियोंका पूरा धर्म्म जानकर पुनः कभी इस प्रकारसे युद्ध मत छोड़के भागना। मुझे युद्धसे भगा पीठपर घाव खाये, भ्रान्त युद्धसे लौटा हुआ देखकर दुराधर्ष गदाग्रज, कृष्ण क्या कहेंगे। महाबाहु, मदसे भरे नीलवस्त्रधारी कृष्णके बड़े भाई बलदेव आकर मुझे क्या कहेंगे? शिनीके पौत्र पुरुष सिंह महा धनुधारी सात्यकी मुझे क्या कहेंगे? मुझे युद्धसे भगा देख महावीर साम्ब, दुर्धर्ष चारुदेष्ण, गद, सारण, और महाबल अक्रूर मुझे क्या कहेंगे? हे सूत! शूर, मानयुक्त, शान्त; नित्यही पराक्रमके अभिमानी, यदुवंशियोंकी स्त्रियां इकट्ठी होकर मुझे क्या कहेंगी? यह सब यही कहेंगी कि, यह प्रद्युम्न भयसे महायुद्धको त्याग करके भागा आता है, इसे धिक्कार है, मुझे अच्छा कदापि न कहेंगी। हे सूत! मुझे और मेरे समान पुरुषोंको धिक्कार शब्द सुनना मृत्युसेभी अधिक दुःखदाई है; तुम ऐसे युद्धसे कभी मत भागना। श्रीकृष्ण द्वारिकाका भार मेरे ऊपर देकर भरतकुलसिंह युधिष्ठिरको यज्ञमें गए हैं, सो इस समय शत्रुको छोड़ना उचित नहीं है। हे सूत! महावीर कृतवर्म्मा युद्ध करनेको आते थे, सो मैंने उन्हें "आप यहीं रहिये मैं शाल्वको निवारण करूंगा" यह कहकर आनेसे रोक दिया। हृदिकपुत्र कृतवर्म्माभी मुझे समर्थ जानकर लौट गए। सो मैं युद्धसे भागकर उस महारथसे मिलकर क्या कहूंगा? जब दुराधर्ष शङ्खचक्र धारी महाबाहु श्रीकृष्ण आवेंगे, तो मैं उनसे क्या कहूंगा? सात्यकी, बलदेव, तथा और यदुवंशियोंसे जो नित्यही मेरे समान होनेकी इच्छा किया करते हैं, उनसे भला मैं क्या कहूंगा? हे सूत! इस युद्ध से भागकर और पीठपर बाणोंसे आहत होकर विवश होकर तुम मुझे ले आये, अन्यथा मैं कदापि न आता। हे सूतपुत्र! तुम शीघ्र मेरे रथको घुमाओ, और ऐसा

पुनः आपत्तिमें भी मत करना, हे सूत! मैं युद्धसे पीठ पर बाणोंसे आहत भीरु बन जीना उत्तम नहीं समझता। हे सूतपुत्र! तुमने कभी मुझे नपुंसककी रूपसे व्याकुल रणसे भगा हुआ देखा है? हे दारुकात्मज मेरी युद्धकी इच्छा रहने परभी तुमने युद्ध छोड़ दिया, यह बहुत अनुचित किया सो पुनः युद्धको चलो।

१८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे कौन्तेय! जब सूतने प्रद्युम्नके ऐसे वचन सुना, तो बलियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नसे मीठी कोमल बातोंसे ऐसा बोला! हे रुक्मिणीनन्दन! युद्धमें घोड़ोंको हांकनेमें मुझे कुछभी भय नहीं है; और इसमें भी कुछ मिथ्या नहीं है, कि मैं वृष्णिवंशियोंके युद्ध को जानन-वाला हूं; परन्तु हे आयुष्मन्! सारथियोंके लिये, यह उपदेश प्रसिद्ध है, कि सारथिको रथीकी रक्षा करनी चाहिये, और आप अधिक व्यथित होगए थे, हे वीर! आप शाल्वके बाणोंके भारी आघातसे मूर्च्छित हुए थे, तबहीं मैं युद्धसे ले आया था। हे यादवमुख्य केशव-नन्दन! अब आप अपनी इच्छानुसार मूर्च्छासे जागे हैं, सो अब युद्धमें मेरी घोड़े हांकनेकी विधिका देखिये, मैं दारुकका पुत्र हूं, और उन्हींसे मैंने यथायोग्य शिक्षाभी पाई है, सो मैं निर्भय होकर इस विस्तृत शाल्व सेनामें प्रवेश करता हूं।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे वीर! सूतने ऐसा कहकर घोड़ोंकी रश्मि (लगाम) ठीककर युद्धको ओर वेगसे चलाया। उस समय सूतने अपनी ऐसी विद्या प्रगट करी कि विचित्र मण्डलाकार गति, यमक, (सदृश सदृश अनेक मण्डल) अयमक (असदृश मण्डल) विचित्र वामगति, और चित्र दक्षिण गतिसे घोड़ोंको चलाने लगा, हे राजन्! कोड़ा लगने और लगाम उद्यत होनेसे वह उत्तम घोड़े ऐसे चले, मानो आकाशको उड़ जायंगे, हे नरनाथ! उस समय घोड़े सूतका हस्तलाघव जानकर ऐसे वेगसे चले मानो पृथिवी इनके चरणोंसे स्पर्श नहीं होती है। हे भरतकुल सिंह! उस समय सूतने थोड़ेही यत्नसे शाल्वको महा-सेनाको बाई ओर कर दिया, यह देखकर सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। जब प्रद्युम्नका रथ दहिनी ओर आया तो शाल्वको महाक्रोध भया, और तीन बाण सूतको मारा। हे महाबाहो! दारुकके पुत्रने उसके बाणवेगको कुछभी ध्यानमें न लाकर पुनः अपने रथको उसके दहनी ओर पहुंचाया। हे वीर! तब शाल्वने अनेक प्रकारके बाण मेरे पुत्र रुक्मिणी-नन्दनके ऊपर छोड़े, उन बाणोंको दूरहीसे शत्रुनाशक रुक्मिणिपुत्रने हंसते हंसते अपने हस्त लाघवका दिखातेहुए तीक्ष्णबाणोंसे काट दिया, शाल्व अपने बाणोंको प्रद्युम्नके बाणोंसे कटा हुआ देखकर दारुण राक्षसी मायाका आश्रय करके बाण छोड़ने लगा, प्रद्युम्न राक्षसी मायाका प्रयोग जानकर उस दैत्य अस्त्रको ब्रह्मास्त्रसे काटकर और अनेक प्रकारके बाण छोड़ने लगे। वह रुधिर पीनेवाले बाण शाल्वके अस्त्रोंको काटकर उसके शिर, मुख, और हृदयमें प्रवेश कर गए; तब शाल्वको मूर्च्छा होगई और वह गिर पड़ा। जब क्षुद्र शाल्व बाणोंसे पीड़ित होकर गिरा तो रुक्मिणीनन्दनने दूसरा शत्रुनाशन बाण निकाला, वह समस्त यदुवंशियोंसे पूजित सर्पके समान तेज, जलती अग्निके समान प्रकाशित, बाणको धनुषपर चढ़ाते देखकर आकाशमें महा हाहाकार होने लगा, इन्द्र, और कुबेरके समेत सब देवतोंने शीघ्रही वायु और नारदको प्रद्युम्नके समीप भेजा, दोनोंने आकर रुक्मिणीपुत्रसे देवतोंके वचन कहे, हे वीर! यह शाल्वराज तुमसे वध्य नहीं है और इस बाणसे कोईभी

अवध्य नहीं है, अतएव तुम इस बाणको मत छोड़ो, ब्रह्माने इसकी मृत्यु देवकीनन्दनकी बनाया है, सो ब्रह्माकी यह प्रतिज्ञा मिथ्या न हो; अतएव तुम इस बाणको मत चलाओ। यह सुनकर प्रद्युम्न अत्यन्त प्रसन्न हुए और उस बाणको धनुषसे उतारकर तूणीमें रख लिया।

हे राजेन्द्र! इतनेमें शाल्वनेभी संज्ञा प्राप्तकर परम विमन हो प्रद्युम्नके बाणोंसे पीड़ित होकर शीघ्र सेना समेत भागना आरम्भ किया, वह क्रूर यादवोंके बाणोंसे पीड़ित हो द्वारिकाको छोड़ सौभपर बैठकर आकाशको चला।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे नरनाथ! जब आपका राजसूय यज्ञ समाप्त हुआ तो मैंने जाकर देखा, कि द्वारिका उससे मुक्त हुई है। हे महाराज! मैंने जाकर देखा तो द्वारिकाका तेज नष्ट हो गया था, पठन पाठन रहित, कहीं यज्ञ नहीं, स्त्री बिना भूषण, और नगरके चारों ओरके बाग कुरूप हो गये थे, मुझे यह सब देखकर शङ्का उत्पन्न भई तो मैंने हृदिकापुत्र (कृतवर्म्मासे) पूंछा कि हे नरशार्द्दूल इस नगरके वृष्णिवंशी स्त्री पुरुष घबड़ाये क्यों हैं, इसका कारण मुझसे कहो। हे राजसत्तम ऐसा पूंछनेसे कृतवर्म्माने मुझसे विस्तार सहित यह सब कथा जिस प्रकारसे शाल्वने नगरको घेरा था और जैसे छोड़ा था कहो। हे कुरुश्रेष्ठ! मैंने यह सब सुनकर शाल्वके नाश करनेका मनमें विचार किया। हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ! तब मैंने नगर निवासी, राजा उग्रसेन, और वसुदेवको धीरज देकर सब यदुवंशियोंको प्रसन्न करते हुए यह वचन कहा। हे यादवलोगो! आपलोगोंको उचित है, कि सदा नगरमें सावधान रहें और मुझे शाल्वके मारनेको जाने दें, मैं अब बिना उसके मारे द्वारिकापुरीको लौट कर न आऊंगा, मैं सौभ नगरके सहित शाल्वको नष्ट करके आपलोगोंको पुनः देखूंगा, अब शत्रुओंको भय देनेवाली दुंदुभी तीनों स्वरों (नीचे और मध्यम) के सहित बजाई जाय, हे भरतर्षभ! जब मैंने सबको धीरज दिया तो वे सब प्रसन्न होकर कहने लगे कि "आप जाइये और शत्रुवोंको जीतिये"। उन प्रसन्न चित्तवाले वीरोंसे आशीर्वाद लेकर ब्राह्मणश्रेष्ठोंसे स्वस्तिवाचन सुनकर और शिवको शिरसे प्रणाम करके सैव्य, सुग्रीव, घोड़ेसे युक्त रथ पर चढ़कर हे महाराज! सब दिशाओंको प्रसन्न करता पाञ्चजन्य शङ्खको बजाकर हे पुरुषव्याघ्र! जयशील सन्नद्ध चतुरङ्गिणी महा सेनाको लेकर मैं चला। अनेक देश, पर्वत, वन, सर, और नदियोंको पार होकर मार्त्तिकावत देशमें पहुंचा। हे पुरुषव्याघ्र वहां जाकर सुना कि शाल्व सौभ सहित समुद्रके तटको गया है, तब मैं भी उसके पीछे हो वहांको चला गया, हे शत्रुनाशक! तब मैंने महातरङ्ग वाले समुद्र पर प्राप्त करके देखा कि शाल्व सौभके सहित समुद्रके मध्यमें स्थित है। हे युधिष्ठिर! वह दुरात्मा मुझे दूरहीसे देख विस्मयके सहित, युद्धके अर्थ मुझे पुकारने लगा। तब मैंने मर्म्मभेदी अनेक बाण चलाये, परन्तु मेरे तीक्ष्णबाण शार्ङ्गसे छूटकर उसके नगरमें प्राप्त नहीं होते थे, अतएव मुझे महाक्रोध उत्पन्न भया, हे नरनाथ! वहभी पापी, दैत्योंमें नीच दुर्धर्ष, शाल्व सहस्रों बाण मुझपर वर्षण करने लगा, मेरे सैनिक, सूत, घोड़े और रथ को बाणोंसे भर दिया। हे भारत! परन्तु हमलोग उसके बाणोंका विचार न करके युद्ध करतेही रहे, तब हमारे ऊपर शाल्वके सेना पुरुषोंने सहस्रों तीक्ष्णबाण छोड़े, तब उनके उन तीक्ष्ण बाणोंसे मेरे घोड़े रथ दारुक सारथीको राक्षसोंने छालिया। हे वीर! मैं मेरा सारथी, घोड़े रथ, और मेरी सेना, यह बाणोंसे छिपनेके कारण कुछ भी न दीखने लगी; हे कुन्तीपुत्र! तब मैंनेभी सहस्रोंबाण दिव्य-

मंत्रोंसे मन्त्रित करके धनुषपर चढ़ा कर चलाए। हे भारत! उस समय सौभके आकाशमें लीन रहनेके कारण मैं और मेरे सैनिक कोई भी उसे न देख सकते थे, मानों एक कोश पर है। तब शत्रुवोंके देखनेवाले सब लोगोंने मुझे ताली और सिंहके समान शब्दोंसे प्रसन्न किया। वे लोग ऐसे भान होते थे मानो यह सब रङ्गवाटीमें स्थित हैं। मेरे और राक्षसोंके छिचित्रपंखवाले बाण शत्रुओंके शरीरमें ऐसे प्रवेश करने लगे जैसे अग्निमें पतङ्ग। तब मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे मरते हुए और समुद्रमें गिरते हुए राक्षसोंसे सौभमें महाघोर शब्द हुआ। लोग बिना हाथ, बिना कान्ध, कवन्धके समान दीखनेवाले, घोर शब्द करते हुए समुद्रमें गिरने लगे, जो दानव समुद्रमें गिरता था उसको समुद्रके जन्तु खाजातेथे। तब मैंने, गायके दूध कुंदपुष्प, और चन्द्रमा, कमलकी डण्ढी, तथा चांदीके समान स्वेत, पाञ्चजन्य शङ्खको श्वासे बजाया। सौभपति शाल्वने उन राक्षसोंको समुद्रमें गिरता हुआ देखकर, महामायाके युक्त होकर मुझसे युद्ध किया; तब गदा, हल, प्रास, परश्वध, खड्ग, शक्ति, बेत्र पास दण्ड, कनप, बाण, पट्टिश, और भुशुण्डी मेरे ऊपर निरन्तर बरसने लगे, मैंने उसमायाको माया-होसे ग्रहण करके नाश कर दिया, जब वह माया नष्ट होगयो ता पर्व्वतके श्रृङ्गोसे वह युद्ध करने लगे, तब अन्धकार हो गया, पुनः प्रकाश भया, पश्चात् सुदिन (मेघरहित दिन) फिर दुर्दिन (मेघोंसे सूर्य्य छिप गया) क्षणमें शीत, और क्षणमात्रमें उष्ण होने लगा। हे भारत! कभी अङ्गारे कभी शस्त्र बरसने लगते थे, इस प्रकारसे माया करके वह शत्रु मुझसे युद्ध करने लगा, सो सब जानकर मैंने मायाहोसे वह सब नाश कर दिया, तथा समय पाकर सब ओरसे बाणोंसे उसको पूर्ण कर दिया, हे महाराज! उसी समय मैंने आकाशमें सौ सूर्य्यके समान प्रकाश देखा, थोड़ेकालमें देखा कि सौ चन्द्रमा और लाखों तारे निकल रहे हैं। हे कुन्तीपुत्र! उस समयमें दिन है कि रात है, और कौन दिशा किधर है, यह कुछभी नहीं जानपड़ा, हे कुन्तीनन्दन! उस समय मुझे भ्रम हो गया, तब मैंने, प्रज्ञा अस्त्र धनुषपर धारण किया अनन्तर वह अस्त्र वायुसे ऐसे धुना गया जैसे रुई धुनी जाती है, यह युद्ध महाघोर भया, जब मुझे चांदना दीखने लगा, तो मैं पुनः शाल्वसे युद्ध करने लगा।

२० अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे महाराज! वह पुरुषोंमें सिंह महाशत्रु शाल्वराज इस प्रकार मुझसे युद्ध करके पुनः आकाश होको चला गया; तब शतघ्नी महागदा, प्रकाशमान त्रिशूलो मूसल, और खड्ग मेरे ऊपर जयकी इच्छा रखनेवाला वही शाल्व बरषाने लगा, तब मैंने भी शीघ्रता सहित उन सब शस्त्रोंको दूरही आकाशमें निवारण करके दोदो, और तीन तीन, टुकड़े करदिये, तब आकाशमें महा शब्द हुआ। तब उसने तीक्ष्ण धारवाले सहस्र-बाणोंसे मेरे घोड़े सारथी और रथको भर दिया, हे वीर! तब विक्ष होके दारुकने मुझसे कहा कि मेरे अङ्ग शाल्वके बाणोंसे कटे जाते हैं, मैं शाल्वके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुआ हूं, परन्तु युद्धमें स्थिर रहनाही मेरा धर्म्म है, वह जानके स्थिर हूं वास्तवमें स्थिर रहनेकी शक्ति मुझे नहीं है। मैंने उसके यह करुणा, मय बचन सुनकर उसको देखा तो जानपड़ाकि शाल्वके बाणोंसे इसे बहुतही पीड़ा हुई है। उसके न सिरमें न हृदयमें न शरीरमें और न दोनो हाथोमें हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैंने बाणसे बेविंधा शरीर न पाया। उस समय सारथीके शरीरोंमें बाण लगनेसे ऐसी रुधिरकी धारा बहती थी जैसे वर्षा होनेसे पर्व्वतसे गेरुको

मारने भारते हैं। मैंने अपने सारथीको युद्धमें लगाम पकड़े शाल्वके वाणोंसे पीड़ित दुःख सहित देखकर उसको आश्वासन किया; हे महावाहो! हे युधिष्ठिर! इस समय एक महाराज उग्रसेनका सेवक द्वारिकावासी रहनेवाला, शीघ्रतासहित रथ लेकर मेरे पास आया, और आकर दुःखसे भरे मित्रके समान उग्रसेनकी बात मुझसे कहने लगा, कि द्वारिकापति वीर उग्रसेनने आपसे ऐसा कहा है कि हे केशव! तुम्हारे पिताका मित्र उग्रसेन तुमसे जो कहता है, सो मानो, तुम द्वारिकाको लौट आओ हे वृष्णिनन्दन! जब तुम यहांसे चले गए तो हे दुर्धर्ष! यहां शाल्वने आकर वसुदेवको बलसे मारडाला, हे जनार्दन! अतएव युद्ध करना व्यर्थ है, तुम लौट आओ, तुम द्वारिकाही की रक्षा करो, यही तुम्हारा परम कर्त्तव्य है; मैं उसका यह परम अप्रिय वचन सुनकर यह निश्चय न कर सका कि मुझे क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है, मैं मनसे सात्यकी, बलदेव, और महारथ प्रद्युम्न की निन्दा करने लगा, हे कुरुनन्दन! मैंने यह विचार किया कि पूर्वोक्त वीरोंको द्वारिका और पिताकी रक्षा करनेको छोड़कर सौभसे युद्ध करनेको आया हूं। महावाहु शत्रुनाशक बलदेव जीवित हैं, सात्यकी, प्रद्युम्न और वीर्य्यवान् चारुदेष्ण तथा साम्ब प्रभृति वीर जीवित हैं या नहीं? यह सोच कर मेरा मन महादुःखको प्राप्त हुआ, हे नरव्याघ्र मैंने सोचा कि इन सबके जीते साक्षात वज्रधारी इन्द्रकी भी शक्ति नहीं है, कि वसुदेवको मारसके; और वसुदेव मारे गए इससे निश्चय यह सब बलदेव आदि मारे गए, यह मुझे निश्चय होगया। हे महाराज! इस प्रकारसे मैं अपने सब नाशको विचारता हुआ विकल होकर शाल्वसे युद्ध करने लगा। हे महाराज! तब मैंने देखा कि मेरे पिता सौभसे गिरे, उस समय मुझे महामोह उपस्थित हुआ, हे नरनाथ! मेरे पिताके गिरते समय ऐसा रूप प्रकाशित हुआ जैसे पुण्य नाश होने पर ययाति का हुआ था, मैली खुली पगड़ी, फैलेवस्त्र और केशवाले मेरे पिताके गिरते हुए, ऐसा प्रकाश हुआ जैसे पुण्य नाश होनेसे तारा टूट कर गिरता है। तब उत्तम शार्ङ्गधनुष मेरे हाथसे गिर पड़ा, हे कौन्तेय! मैं मोहसे व्याकुल होकर रथको शय्यामें बैठ गया, हे भारत! जब मेरी सेनाने मुझे रथमें प्राण रहितके समान मूर्च्छित पड़ा देखा, तो सब लोग हाहाकार करके रोने लगी, दोनो हाथ, और दोनो पैर फैला कर गिरते हुए मेरे पिताका रूप गिरते हुए शकुनीके समान शोभित हुआ, हे महावाहो! गिरते हुए मेरे पिताको शूल और पट्टिशधारी अनेक योधा मेरे हृदयको कंपाते हुए काटने लगे, हे वीर! तब क्षण भरमें मैंने मोहको त्याग करके उस महायुद्धमें देखा, कि न वहां सौभ, न शत्रु शाल्व, और न वृद्ध पिता हैं, तब मेरे मनमें यह निश्चय हो गया, कि यह मायाही है, तब मैं पुनः बोधित हुआ, और सैकड़ों वाण छोड़ने लगा।

२१ अध्याय समाप्त।

हे भरतश्रेष्ठ! तब मैं उत्तम धनुष ग्रहण करके वाणोंसे राक्षसोंके शिर पृथिवीमें गिराने लगा, मैं सांपके समान, महा तेजस्वी, ऊर्द्धगामी, उत्तम पंखवाले, वाण शार्ङ्गधनुषसे शाल्वको लक्ष करके छोड़ने लगा, हे कुरुकुलोत्पन्न! तब सौभ मायासे ऐसा छिप गया, कि मुझे दिखाई न देने लगा, तब मुझे विस्मय हुआ, हे महाराज! तब कटे शिरकेशवाले राक्षस मुझे गाली देने लगे, तब मैंने स्वस्थतासे स्थिर होकर शब्दवेधी वाण शीघ्रतासहित उनको मारनेको चलाए, तब शब्द बन्द हो गया, तब मैंने प्रकाशमान सूर्य्यके समान तेजवाले,

शब्दवेधी वाणों से उन सब राक्षसोंको मारडाला, जिन्होंने वह शब्द किया था, हे महाराज ! जब वह शब्द बंद हो गया तो पुनः दूसरी ओर शब्द हुआ, मैंने वहांभी वाणोंसे वैसेही राक्षसोंको मारा, हे भारत ! इस प्रकारसे दशोंदिशाओंमें नीचे और ऊपर ऐसाही शब्द हुआ, मैं सब ओर राक्षसोंको ऐसे ही मारता रहा, हे वीर ! तब मैंने प्राग्ज्योतिष पुरमें जाकर पुनः सौभको अपने नेत्रोंको मोहित करते देखा,तब लोकका नाश करनेवाला, दारुण शरीरवाला, दानव महा शिला वर्षण करके मुझसे लड़ने लगा, हे महाराज ! मैं वारवार शिला वर्षणसे पीड़ित होकर ऐसा दीखने लगा, जैसा पहाड़में विल, हे महाराज ! मैं घोड़े और सारथीके समेत पर्व्वतोंके मारे, अदृश्य हो गया, तब वृष्णिवंशी मेरे सैन्यवाले भयसे व्याकुल होकर चारों ओरको भाग गए, हे महाराज ! जब मैं किसीको न दीखने लगा तो स्वर्ग, आकाश, और भूमि सबमें हाहाकार मच गया, हे राजन् ! तब मेरे मित्रलोग दुःख शोकसे भरकर मलीन-मन होकर रोने पीटने लगे, हे अच्युत ! हे वीर ! शत्रुओंमें प्रसन्नता और मेरे मित्रोंमें दुःखने प्रवेश किया, जब मुझे संज्ञाप्राप्त हुई तो यही शब्द सुना कि शाल्वने कृष्णको जीत लिया । तब मैंने इन्द्रके प्यारे शस्त्र पर्व्वतनाशक वज्रका प्रयोग करके उन सब पर्व्वतोंको नाश कर दिया, हे महाराज अनन्तर पर्व्वतको अधिक मारसे दुःखी होकर मेरे घोड़े कांपने लगे, मन्दबल मन्द चेष्टायुक्त हो गए, जैसे मेघ समूहको फाड़कर सूर्य्य उदय होता है वैसेही मुझे पर्व्वत जालसे मुक्त हुआ देखकर मेरेसब वान्धव प्रसन्नहुए, तब पर्व्वतोंके बोझसे व्याकुल अल्पबल मन्द चेष्टावालेघोड़ोंको देखकर सूतने उसके अनुकूल मुझसे कहा, कि वह आप भलीप्रकारसे देखिये वह शाल्वराजा खड़ा है, हे कृष्ण ! अब इसको छोड़ना उचित नहीं है, उत्तम यत्न कीजिये, हे महावाहो ! हे केशव ! अब आप शाल्वसे कोमलता और मित्रताको छोड़ दीजिये, अब इसे जीता मत छोड़िये शीघ्रहो जीत लीजिये, हे वीर ! बलवानकोभी उचित है, कि अपने दुर्ब्बल शत्रुको न छोड़ें, सब यत्नोंसे शत्रु मारनेहीके योग्य है, हे पुरुष शार्दूल ! हे प्रभो ! यदि शत्रु अपने घरभी बैठा हो तो उसे बिना युद्धभी मारडालना चाहिये न कि युद्धमें स्थित को । हे वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! यह मृदु युद्धसे वशमें नहीं आवेगा न यह आपका मित्र है, अतएव आप इस शाल्वकोनाश कीजिये समय नष्टमत कीजिये, इसने आपसे युद्ध किया, द्वारिकामें उपद्रव किया, हे कुन्तीपुत्र ! मैंने सारथीके यह वचन सुनकर जाना कि यह ठीक कहता है, तब मैंने युद्धमें अपने चित्तको लगाया, शाल्वके मारने और सौभके गिरानेकी बुद्धि करी, और सारथीसे कहा कि तुम क्षणमात्र स्थिर रहो, तब मैंने नचूकने योग्य, दिव्य, न भेदने योग्य, महाबलवान, सब सहनेवाला, महा प्रकाशमान, दानवोंका अन्त करनेवाला, अग्नि अस्त्र धनुषपर धारण किया, युद्धमें यक्ष, राक्षस, दानव, और दुष्कर्मी राजोंका भस्म करनेवाला, जैसी छुरीकी धार होती है, वैसा निर्म्मल, काल और यमके समान, शत्रुओंके नाशक चक्रको मैंने अभिमन्त्रित करके उससे कहा कि तुम अपने बलसे मेरे जो यहां शत्रु हैं,उनको और सौभको नष्ट कर दो। ऐसा कहकर मैंने क्रोधसे और हाथके बलसे उसको शाल्वकी ओर छोड़ा, उस समय सुदर्शन चक्रके आकाशसे गिरते ऐसा रूप प्रकाशित हुआ, जैसे प्रलयकालमें दूसरे सूर्य्यका, उसके छूटतेही सौभ तेजहीन हो गया, उसने सौभको बीचसे ऐसा काट दिया, जैसे आरा वृक्षको काटता है, जैसे शिवके वाणसे नष्ट होकर त्रिपुरासुरका नगर पृथिवीपर गिरा था वैसेही मेरे चक्रसे कटकर सौभ पृथिवीमें गिर गया। जब वह

मिलनेकी अग्निहोत्री, निरग्नी, (जो अग्निहोत्र न करें) वेद पढ़ानेवाले, और वनके रहनेवाले भिक्षुक लोग आये। सैकड़ों ब्राह्मण, तपसे सिद्ध व्रतीलोग आये, वे लोग अनेक ब्राह्मणोंके सहित पाण्डवोंसे मिलकर रम्य द्वैतवनसरके समीपको चले गये, पाण्डव लोगोंने उनके सहित पुण्यद्वैतवन तड़ागको वसे, वहां महाबली राजेश्वर युधिष्ठिरने वसन्तमें फूले हुए साल, ताड़ महुवा, नीप (कदम्ब आदि) राल, अर्जुन (वृक्ष विशेष) और कचनारको देखा कि वृक्षोंपर बैठकर मोर चकवा, चकोर, मोरनी, कोकिला मीठे मीठे स्वरोंसे शब्दकर रहे हैं, हस्तिनियोंके यूथके समेत अनेक मतवाले पहाड़के समान शरीरवाले यूथपति हाथियोंकी अनेक मण्डली पड़ी हैं। अनन्तर सुन्दर राजाने सरस्वतीपर जाकर, जटावल्कलधारी, पवित्र, तपस्वी, धर्म्मात्माओंके, निवास वनमें अनेक सिद्ध और ऋषियोंके गणोंको देखा, तब अपने भाई और पुरुषोंके सहित रथोंसे उतरकर जैसे इन्द्र स्वर्गमें प्रवेश करते हैं तैसे ही राजाने वनमें प्रवेश किया। अनन्तर उन धर्म्मज्ञोंमें श्रेष्ठ धर्म्मज्ञकी इच्छा रखनेवाले सिद्ध और चारण, इकट्ठे होकर आए, तथा औरभी वनवासी तपस्वीलोगोंने आकर महाराजको चारों ओरसे घेर लिया, तब महाराजने सब सिद्धोंको प्रणाम किया, उन्होंनेभी इनको देवता और राजाके समान पूजा। तब धर्म्म जाननेवालोंमें उत्तम युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंके सहित वनमें प्रवेश किया, अनन्तर वह धर्म्मज्ञ पुण्यात्मा राजा महा तपस्वियोंसे पिताके समान सत्कार पाकर पूजा ग्रहण करके एक फल भरे भारी वृक्षकी छायामें बैठ गये, उनके बैठनेके पश्चात् भीमसेन, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल, सहदेव, तथा और सब लोग अपने रथोंसे उतर कर उसी वृक्षके नीचे बैठ गये, लताओंसे भरनेके कारण झुकी हुई शाखावाला वह वृक्ष, धनुर्धारी पांच पाण्डवोंसे ऐसा शोभित हुआ, जैसे बड़ापर्व्वत पांच यूथपाल हाथियोंके बैठनेसे शोभित होता है।

२४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, इन्द्रके समान महाराज पाण्डुके योग्य पुत्र होनेपरभी दुःखसे उस वनमें निवास करते हुए, उत्तम सरस्वती नदीके तटपर उस वनमें महानुभाव, कुरुकुलसिंह राजा युधिष्ठिर उत्तम मूल और फलोंसे यति, मुनि, और समस्त ब्राह्मणोंको तृप्त करते थे। उसी वनमें राजपुरोहित महा तेजस्वी धौम्य, पाण्डवोंकी यज्ञ और पैतृक क्रिया पिताके समान कराते थे। राज्यसे नष्ट हुए वनवासी श्रीमान् पाण्डवोंके आश्रममें, महा तेजस्वी, मार्कण्डेय मुनि अतिथि होकर आए, कुरुकुलसिंह सत्यपराक्रम, अनुपम महामनस्वी युधिष्ठिरने जलती अग्निके समान तेजस्वी, ऋषि, देवता, और मनुष्योंसे पूजित ऋषिको आते देखकर पूजा करी। उन सर्व्वज्ञ मुनिने द्रौपदी, युधिष्ठिर भीमसेन, और अर्जुनको देखकर मनसे रामका स्मरण किया और महात्मा महातेजस्वी मार्कण्डेय तपस्वी लोगोंके मध्यमें हंसने लगे। तब धर्म्मराजने कुछ विमन होकर उनसे कहा कि यह सब मुनीश्वर लोग लज्जित, बैठे हैं, आप सब तपस्वियोंके सामने प्रसन्नचित्तसे मुझे देखकर हंसते हैं, इसका कारण क्या?

मार्कण्डेय बोले, हे तात! हे पार्थ! मैं न प्रसन्नतासे हूं, न आश्चर्य करता हूं न मुझे कुछ आनन्दका अभिमान भया है, मैं तुम्हारी इस आपत्तिको देखके सत्यव्रत, दशरथपुत्र, रामका स्मरण करता हूं। वह राजाभी लक्ष्मणके समेत पिताकी आज्ञासे वनमें वसे थे, मैंने उन्हे ऋष्यमूक पर्व्वतके समीप धनुष धारण किये घूमते देखा था, यमके शासक नमुचीके नाशक सहस्र-

नेत्र इन्द्रके समान महात्मा, पापरहित, धर्म्म-पालक, दशरथके पुत्र रामने वनमें वास किया था ; वह इन्द्रके समान प्रभाव युक्त महानुभाव, युद्धमें अजेय, रामभी सब भोगोंको छोड़ कर वनमें बसे थे, इससे क्या बल रहते अधर्म्म करना उचित है? अर्थात् अनुचित है, हे तात! नाभाग और भगीरथादि राजोंने इस पृथिवी-को समुद्र पर्य्यन्त जीतकर सत्यसे परलोकको जीता। अतएव शक्ति होने परभी अधर्म्म न करना चाहिये, हे पुरुषश्रेष्ठ! अलर्क सत्यव्रत काशिराज, करुपदेशके राजा, यह सब लोग राज्य और धनको छोड़कर वनमें रहे थे अतएव शक्ति रहनेपरभी धर्म्मही कर्त्तव्य है, हे कुरुश्रेष्ठ देखो यह सप्त ऋषि ब्रह्माके नियमको पालन करते हुए, आज पर्य्यन्त आकाशमें प्रकाशित हैं, बल रहतेभी क्या अधर्म्म करना योग्य है? हे नरेन्द्र! महाबलयुक्त पर्व्वतके समान शरीर-वाले, दन्तारे हाथियोंको देखिये कि यह ब्रह्माकी आज्ञाहीसे चलते हैं, बल रहनेपर भी धर्म्मही कर्त्तव्य है। हे नरेन्द्र! सब प्राणियोंको देख यह वैसेही स्थिर हैं, जैसे ब्रह्माने योजित किया है। अपनी योग्यताके अनुसार सदाही कर्म्म करते हैं, बल रहनेपरभी अधर्म्म न करना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! सत्य, धर्म्म, उचित वृत्ति और लज्जासे सब प्राणियोंको उलङ्घन करके तुम्हारा यश, तेजयुक्त सूर्य्यके समान प्रकाशित है, हे महानुभाव! तुम प्रतिज्ञाके अनुसार कठिन वनवासको काटकर अपने तेजसे प्रकाशित लक्ष्मीको कौरवोंसे ग्रहण करोगे।

वैशम्पायनजी बोले सुहृद लोगोंके सहित, तपस्वियोंके मध्यमें बैठे हुए युधिष्ठिरसे, मार्क-ण्डेय महर्षि ऐसा कहकर धौम्य सहित पाण्डवों से पूछ कर उत्तर दिशाको चले गए।

२५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, महात्मा पाण्डवोंके बसनेसे, वह महावन ब्राह्मणोंसे पूर्ण हो गया, उस समय वेदशब्दसे पूर्ण द्वैतवन सब ओरसे ब्रह्मलोकके समान भान होता था, वहां चारों ओर ऋग्वेद, यजुर्व्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थहीकी ध्वनि सुन पड़ती थी, वहां पाण्डवोंके धनुषोंका शब्द, और ब्राह्मणोंके वेदपाठका शब्द होनेसे ऐसा भान होता था कि मानो ब्रह्माने ब्राह्मण और क्षत्रियोंको बनाकर पुनः मिलाया है, अनन्तर बकदाल्भ्य मुनि ब्राह्मणोंसे परिवृत संध्यामें बैठे हुए, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे कहने लगे, हे पृथापुत्र! देखो इस द्वैतवनमें तपस्वी ब्राह्मणलोगोंका संध्योपासनका समय है, देखो अग्नि जल रही है, हे महाराज! देखो यह आपसे रक्षित होकर इस पुण्यक्षेत्र वनमें भृगु-वंशी, अङ्गिरावंशी, वशिष्ठवंशोद्भव, काश्यप, महाभाग अगस्त, और उत्तम व्रतधारी अत्रि-वंशोत्पन्न, व्रतधारी जगतके श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग आपके सङ्ग होकर संध्योपासन करते-हैं। हे कौरव! हे कौन्तेय! मैं जो वचन कहता हूं, सो तुम भाइयोंके समेत श्रवण करो, ब्राह्मण, क्षत्रियोंसे और क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे मिले हैं, यह दोनो प्रकाशित होकर शत्रुओंको वैसेही नाश कर सकते हैं, जैसे अग्नि और वायु मिलकर वनको नाश कर देते हैं। हे तात! क्षत्रियोंको उचित है, कि विना ब्राह्मणके ऐश्वर्य्य और इस लोकके जीतनेकी इच्छा न करें। और क्षत्रीय धर्म्म जाननेवाले, द्रोह रहित, ब्राह्मणको प्राप्तकर राजा अपने शत्रुओंको जीतता है! प्रजापालन और उत्तम धर्म्म करता हुआ राजा ब्राह्मणको छोड़कर दूसरे तीर्थको न जाय, देखो राक्षस बलिको कामके अनुसार क्षयहीन लक्ष्मी प्राप्त हुई थी, ब्राह्मणकी आराधना करनेसे उसने पृथिवीको प्राप्त किया था अन्तको जब ब्राह्मणोंसे दुष्टता करी तब नष्ट हो गया। जो ब्राह्मणकी सेवा नहीं करता उसे लक्ष्मी अधिक समयतक